Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Prahladh Patrika

1985

G. K. V.

HARDWAR
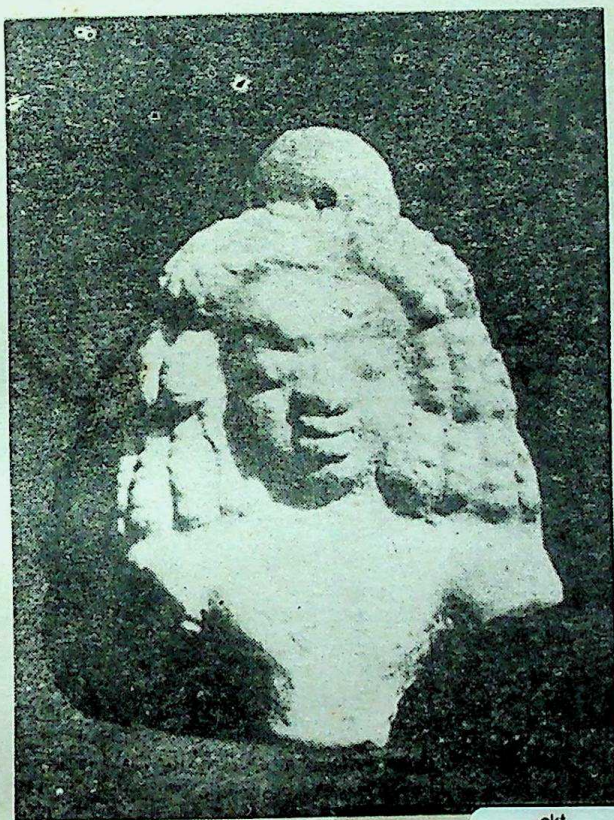
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रह्लाद

(प्राच्यविद्याओं की त्रैमासिक शोध-पत्रिका)

सम्पादक

डॉ० विष्णुदत्त 'राकेश'
पी-एच.डी., डी.लिट्.

संयुक्त-सम्पादक

डॉ० विनोदचन्द्र सिन्हा
एम.ए. पी-एच.डी.

DIGITIZED C-DAC
2005-2006
01 DEC

वर्ष : १९८५] (जनवरी से मार्च तक) [अङ्क : १

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रधान संरक्षक

श्री बलभद्रकुमार हूजा
कुलपति

संरक्षक

श्री रामप्रसाद वेदालंकार
आचार्य एवं उप-कुलपति

प्रबन्ध सम्पादक

डॉ० राधेलाल वार्ष्णेय, जनसम्पर्क अधिकारी

व्यवस्थापक

जगदीश विद्यालंकार

प्रकाशक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वीरेन्द्र अरोड़ा, कुलसचिव

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

DIGITIZED C-DAC
2005-2006
01 OCT 2005

विषय—सूची

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'प्रह्लाद' के मुख-पृष्ठ पर अंकित चित्र का विवरण

गुप्तकालीन मृण्मूर्ति

आवक्ष, पुरुष प्रतिमा

गुरुकुल संग्रहालय नं० २४३/३५ (८×५.५×२ से० मी०) : मथुरा से प्राप्त यह प्रतिमा पाँचवीं शती ई० की है। यह गेहुँए रंग की मिट्टी से निर्मित है। इस प्रतिमा में पुरुष कलापूर्ण ढंग से केश-विन्यास किए हुए है। केशों की रचना अलकावली के रूप में दिखाई गई है जो मस्तक के दोनों ओर पंक्तिरूप से कन्धों पर लहराते हुए भव्य रूप में सज्जित हैं। पुरुष का गोल चेहरा, ओठों पर रहस्यमयी मुस्कान, आँखें उन्मीलित, माँसपेशियों का अभाव और कानों में कुण्डल हैं। प्रतिमा में ऊपर की ओर एक छिद्र है। सम्भवतः इस छिद्र का उपयोग प्रतिमा को दीवार पर टाँगने के लिए किया जाता था।

इस प्रतिमा में सौन्दर्य और रूप-सज्जा की भावना स्पष्ट रूप से दिखलाई देती है। यह प्रतिमा कला की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है।

—सुखवीर सिंह
सहायक क्यूरेटर
पुरातत्व संग्रहालय

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदामृतम्

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं
नानाधर्माणं पृथिवी य थौकसम् ।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां
ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ॥ अथर्व १२-१-४५

भाषा और धर्म-भेद से भेद नहीं

शब्दार्थ—(बहुधा) अनेक प्रकार से, (विवाचसम्) विभिन्न भाषा बोलने वाले, (नानाधर्माणं) विभिन्न धर्मों के मानने वाले (जनम्) लोगों को, (यथा ओकसम्) एक घर में रहने वाले व्यक्तियों की तरह (बिभ्रती) धारण करती हुई (पृथिवी) भूमि (ध्रुवा) स्थिर, निश्चल (अनुपस्फुरन्ती) न बिदकने वाली, (धेनुः इव) गाय की तरह (मे) मुझे, (द्रविणस्य) धन की, ऐश्वर्य की, (सहस्रं-धाराः) सहस्रों धाराएँ (दुहाम्) दूध दें ।

भावार्थ—अनेक प्रकार से विभिन्न भाषा बोलने वाले और विविध धर्मों को मानने वाले लोगों को एक परिवार के तुल्य धारण करने वाली पृथिवी, निश्चल एवं न बिदकने वाली गाय की तरह, मुझे ऐश्वर्य की सहस्रों धाराएँ प्रदान करे ।

अनुशीलन—अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त के इस मन्त्र में अत्युत्तम राष्ट्रीय शिक्षा दी गई है, मन्त्र का कथन है कि इस पृथिवी पर नाना भाषाएँ बोलने वाले लोग रहते हैं । इसी प्रकार विभिन्न धर्मों वाले लोग भी रहते हैं । ये सभी पृथिवी के लिये एक परिवार के व्यक्ति हैं । पृथिवी भाषाभेद और धर्मभेद से किसी प्रकार का कोई अन्तर नहीं करती है, उसी प्रकार पृथिवी पर रहने वाले सभी नागरिकों का कर्तव्य है कि वे भाषा-भेद और धर्म-भेद के आधार पर कोई भेद-भाव न करें । इस दोष को दूर करने का उपाय बताया गया है कि विभिन्न भाषा और धर्म के लोगों को परिवार का एक अंग समझें । सब में पारिवारिक सद्भावना उत्पन्न होने पर किसी प्रकार का कोई वैमनस्य नहीं हो सकेगा ।

मन्त्र में दूसरी बात कही गई है कि यह पृथिवी शांत गाय की तरह हमें ऐश्वर्य दे, शांत गाय जिस प्रकार अधिक से अधिक दूध देती है, उसी प्रकार यह पृथिवी भी प्रसन्न होकर हमें सभी प्रकार का ऐश्वर्य दे । उचित समय पर यदि वर्षा हो, सिंचाई की व्यवस्था ठीक हो तो पृथिवी सुवर्ण उगल सकती है । धन-धान्य आदि के लिए सामूहिक परिश्रम की आवश्यकता है । सामूहिक परिश्रम और सिंचाई आदि की समुचित व्यवस्था होने पर पृथिवी हमारे लिये कामधेनु हो सकती है ।

—डा० कपिलदेव द्विवेदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युवा-क्षमता का सदुपयोग

बलभद्रकुमार हूजा
कुलपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

भारत जैसे महान देश के लिये यह अत्यन्त गम्भीर प्रश्न है कि हम उस के उत्थान हेतु युवाक्षमता का किस प्रकार उपयोग करें। यह निर्विवाद है कि किसी देश का युवा वर्ग ही उसकी रीढ़ की हड्डी के समान होता है, जिस पर राष्ट्र का वर्तमान तथा भविष्य निर्भर होता है। भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में युवा-शक्ति ने जो शानदार भूमिका निभाई, उसका वर्णन सदा स्वर्ण अक्षरों में किया जायेगा। ऐसे महत्वपूर्ण युवा वर्ग को सुदृढ़ एवं उन्नत बनाना राष्ट्र की सर्वप्रथम आवश्यकता है।

पहला प्रश्न यह है कि युवाशक्ति से हम किस प्रकार का सहयोग लें अथवा युवाशक्ति का किस प्रकार सदुपयोग करें ? इस पर विचार करने से पूर्व हमें सोचना होगा कि वे महत्वपूर्ण आवश्यकताएँ क्या हैं, जिनके लिये युवा-शक्ति की सहायता अपेक्षित है ? आवश्यकताओं का समुचित आंकलन करने हेतु हमें युद्ध तथा शान्ति दोनों ही परिस्थितियों पर विचार करना होगा।

जहाँ तक युद्ध की परिस्थितियों का सम्बन्ध है, यह निश्चित है कि वहाँ युवा-शक्ति के बिना काम नहीं चल सकता और युवाशक्ति ही सैनिकों के वेश में देश की सीमाओं की रक्षा करती है।

शान्ति की परिस्थितियों में हमारी सबसे बड़ी आवश्यकताएँ हैं— बेकारी तथा दरिद्रता का उन्मूलन, भ्रष्टाचार निवारण, दहेज-प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध संघर्ष, प्रौढ़-शिक्षा, महिला-उद्धार, हरिजन-उद्धार, प्रदूषण-निवारण, वन-रक्षा, लोकतान्त्रिक अनुशासन की स्थापना तथा देश की एकता एवं अखण्डता की रक्षा।

इनमें सर्वप्रथम बेकारी तथा दरिद्रता उन्मूलन का प्रश्न आता है। इस के साथ ही नैतिकता तथा भ्रष्टाचार निवारण के प्रश्न जुड़े हुए हैं। आज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा युवावर्ग १४-१६ वर्ष तक पठन-पाठन करने के उपरान्त भी अपने आप को उस समय अत्यन्त निस्सहाय, तिरस्कृत और छला हुआ महसूस करता है, जब वह अपनी शिक्षा के अनुरूप व्यवसाय प्राप्त नहीं कर पाता। इससे यह तो स्पष्ट है ही कि हमारी शिक्षापद्धति दोषपूर्ण है। अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम विद्यार्थियों को ब्रह्मचर्य की अवस्था में किसी न किसी क्रिया-कौशल में दक्ष बनायें, जिससे वह स्नातक स्तर पर पहुँचते-पहुँचते स्वावलम्बी बन सकें और बेकारी के भंवर में न फँसें। कहावत है—बुभुक्षितः किं न करोति पापम्.........? अतः युवा वर्ग को भुखमरी से बचाना, उसकी कार्यक्षमता तथा कौशल बढ़ाना हमारा पहला कर्तव्य है। स्वावलम्बी युवावर्ग स्वदेश प्रेमी हो तो सोने में सुहागा है।

प्राकृतिक दृष्टि से भारत एक बहुत समृद्ध देश है, किन्तु बावजूद छः पंचवर्षीय योजनाओं के, भारत की अर्थ-व्यवस्था अभी भी इतनी असन्तुलित है कि इसकी अधिकाँश जनता अभावग्रस्त है। इस असन्तुलन और वैषम्य को मिटाना हमारा परम कर्तव्य है। आज अमीर और गरीब दो परस्पर विरोधी वर्ग बन गये हैं। ऐसी विषद् आर्थिक विषमता के मिटने से ही भ्रष्टाचार दूर होगा, तभी नैतिकता का वातावरण उत्पन्न होगा। और देश से दहेज जैसी कुप्रथाएँ दूर होंगी। सही अर्थों में देखा जाये तो दहेज का दूसरा नाम लड़कों अथवा पतियों की बिक्री ही तो है। एक सुसंस्कृत, समृद्ध समाज में पति बिकेंगे नहीं, किन्तु स्वयं वरे जायेंगे।

इसके साथ ही महिला-उद्धार, प्रौढ़-शिक्षा, हरिजनोद्धार की समस्याएँ जुड़ी हैं। नारी शक्ति देश की आधे से अधिक शक्ति है। आधी तो संख्या के हिसाब से और अधिक इसलिये कि इसमें मातृ-शक्ति, भगिनीशक्ति, पत्नी-शक्ति तथा पुत्रीशक्ति निहित है, जो युवा शक्ति पर अदृष्ट किन्तु असीमित प्रभाव डालती है, इन्हें जागृत करने का भार भी प्रबुद्ध वर्ग पर ही है।

अभाव के अतिरिक्त हमारा समाज अज्ञान के अन्धकार से ग्रसित है। यूँ भी कहा जा सकता है कि अज्ञान के कारण हमारा समाज अभावग्रस्त है। अज्ञान के कारण ही पाखण्ड फलते-फूलते हैं, कुरीतियाँ समाज में घर करती हैं। मानव और प्राकृतिक सम्पत्ति का विकास नहीं होता। राष्ट्रीयता की भावना जातीयता के नीचे दब जाती है। फलस्वरूप देश की अखण्डता खतरे में पड़ जाती है। सारांश में समाज अपंग बनता है।

अज्ञान के निवारण और विज्ञान के प्रसार में प्रबुद्ध और जागृत युवा-शक्ति यथेष्ठ योगदान दे सकती है। अज्ञान और अभाव दूर हुआ तो अन्याय की गुंजायश ही कहाँ रह जायेगी?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः हम लौट-फिर कर वहीं आते हैं कि हम युवावर्ग को ऐसी शिक्षा दें जिसके द्वारा उनमें किसी कार्य-कौशल के अतिरिक्त पौरुष, नैतिकता और देश-भक्ति का विकास हो ।

मनुष्य अपनी जीवन-यात्रा में जगह-जगह पर दो राहों पर आ खड़ा होता है । उसको सोचना होता है कि किधर जाऊँ, किधर न जाऊँ, अब कौन सा रास्ता पकड़ूँ ? सही या गलत रास्ते का ज्ञान करने हेतु उसे विवेक की आवश्यकता होती है । विवेक शक्ति जागृत हो जाये तो मनुष्य सही रास्ता ही पकड़ेगा ।

विवेकशक्ति जागृत करने हेतु हम वैदिक और संस्कृत-साहित्य का आश्रय ले सकते हैं । प्रत्येक साधक या राहगीर के जीवन में वेद और संस्कृत सुभाषित मार्ग-दर्शक के रूप में सिद्ध हो सकते हैं । वेद का वाक्य—
"उत्तिष्ठत् जाग्रत प्राप्य वशन्निबोधत" सुस्त, हतोत्साह, तमस से घिरे हुए मनुष्य को उठने और आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है । "इशावास्यमिदं ...." इत्यादि मनुष्य को ईश्वरीय शक्ति का आभास कराते हुए लालच से बचाता है ।

इसी प्रकार संस्कृत का यह सुभाषित—"मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु-लोष्ठवत्, आतमवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पंडितः ।" भी एक बड़ा भारी पथ-प्रदर्शक है ।

गीता के सोलहवें अध्याय के पहले तीन श्लोकों में उन गुणों का वर्णन है, जिनके विकास से सात्विक प्रवृत्ति जागृत होती है, अर्थात् अभय, सहृदयता, दान, यज्ञ, स्वाध्याय, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, दया, तेज, क्षमा, घृति, शौच, इत्यादि ये गुण केवल अभ्यास से ही प्राप्त किये जा सकते हैं ।

अभ्यास हेतु आधारभूत आश्रम ब्रह्मचर्याश्रम है । धन्य हैं वे बालक बालिकाएँ, जिनको ब्रह्मचर्यावस्था में ऐसे माता-पिता एवं आचार्य मिलते हैं, जो गुणों का स्वयं अभ्यास करते हुए अपने आचार-विचार से उनको प्रेरित करें ।

आज के नवयुवकों के सामने यह प्रश्न उभर कर आ रहा है कि वे २१वीं सदी में क्या भूमिका निभायेंगे । वैदिक आदर्श के अनुसार उन्हें पितृ-ऋण, देव-ऋण तथा ऋषि-ऋण से उऋण होना है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पितृ-ऋण से उऋण होने की खातिर ही तो भगीरथ ने प्रचण्ड तपस्या करके गंगा को शिवजी की जटा से मुक्त कराया था । आज देश को ऐसे ही समर्थ, सशक्त, तपस्वी नवयुवकों की आवश्यकता है । अतः नवयुवकों का पहला कार्य भगीरथ जैसा व्यक्तित्व पैदा करना है । तत्पश्चात् भगीरथ की तरह देश की समस्याओं से जूझने का है । तभी तो देश में सुख, शान्ति की गंगा का अवतरण होगा ।

देव-ऋण से अर्थ है, अपनी शक्तियों का स्वस्थ विकास करना तथा सबके हित में अपना हित समझना । जब यह भावना पैदा हो जाये तो फिर जीवन में लड़ाई-झगड़ा, अन्याय तथा लौलुपता का स्थान रहता ही नहीं । मन, वाणी और कर्म स्वतः संयमित होने लगता है और पारस्परिक सहयोग की भावना का उद्भव होता है ।

ऋषि-ऋण से अर्थ है—वेद-वेदाँग का अध्ययन और ब्रह्माण्ड के रहस्यों का उद्घाटन, प्रहलाद की भाँति सत्य मार्ग का अनुसरण एवं ध्रुव की भाँति शाश्वत दीप्ति की प्राप्ति ।

गांधी जी से किसी ने पूछा था—'आपके जीवन का लक्ष्य क्या है ?' गांधी जी ने उत्तर दिया—'भगवान की प्राप्ति' । प्रश्नकर्ता ने कहा—'तो फिर आप हिमालय की कन्दरा में जाकर क्यों नहीं तपस्या करते ?' गांधी जी ने कहा—'मेरा भगवान दरिद्रों की कुटिया में रहता है । मैं उसकी वहाँ खोज करता हूँ ।'

महात्मा गांधी का विद्यार्थियों के नाम निम्न सन्देश आज भी सामयिक है ।

"विद्यार्थी जगत को आज जो शिक्षा मिल रही है, वह भूखे-नंगे भारत के लिये बेहद मंहगी है । उसे बहुत ही थोड़े लोग प्राप्त करने की आशा रख सकते हैं । इसलिये उनसे यह आशा रखी जाती है कि राष्ट्र के लिये अपना जीवन तक न्योछावर करके अपने को उस शिक्षा के योग्य सिद्ध करें ।"

विद्यार्थियों को समाज की रक्षा करने वाले सुधार-कार्यों में अगुआ बनाना चाहिये । वे राष्ट्र में जो कुछ अच्छा है, उसकी रक्षा करें और जो बेशुमार बुराइयाँ समाज में घुल गई हैं, उनसे निर्भयतापूर्वक समाज को मुक्त करें । सामाजिक और आर्थिक प्रश्नों का अध्ययन और उनकी चर्चा वे कर सकते हैं और उन्हें करनी चाहिये, क्योंकि ये प्रश्न हमारी पीढ़ी के लिये उतने ही महत्व-पूर्ण हैं, जितना कि कोई बड़े से बड़ा राजनीतिक प्रश्न हो सकता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्र-निर्माण के कार्यक्रम में राष्ट्र का कोई भी भाग अछूता नहीं रह सकता। विद्यार्थियों को देश के करोड़ों मूक लोगों पर असर डालना है तो उन्हें किसी प्रान्त, नगर, वर्ग या जाति की दृष्टि से नहीं, बल्कि एक महाद्वीप और करोड़ों की दृष्टि से विचार करना सीखना होगा। इन करोड़ों में अछूत, शराबी, गुण्डे और वेश्याएँ भी शामिल हैं, जिनके अस्तित्व के लिये हम सभी जिम्मेदार हैं।

इसी प्रसंग में विवेकानन्द ने दरिद्रनारायण की सेवा हेतु भारत के नवयुवकों का आह्वान किया था।

आइये! हम दरिद्रनारायण के दर्शन करने हेतु अभावग्रस्त, सन्तप्त देशवासियों की झुग्गी-झोंपड़ियों में चलें तथा उनकी सेवा का व्रत लें।

—o—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० नाथूरामशंकर शर्मा

डा० भवानीलाल भारतीय
अध्यक्ष–दयानन्द अनु० पीठ, चण्डीगढ़

आर्यसमाज ने हिन्दी भाषा और साहित्य को जो इने-गिने रससिद्ध कवि प्रदान किये हैं उनमें ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली में समान रूप से उत्कृष्ट काव्य रचना करने वाले महाकवि नाथूरामशंकर शर्मा 'शंकर' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। शंकर जी का जन्म चैत्र शुक्ला ५, संवत् १६१६ वि० के दिन हरदुआगंज (जिला अलीगढ़) में एक गौड़ ब्राह्मण परिवार में हुआ। इनका नाम कृष्णचन्द्र था। परन्तु इनके जन्म से पूर्व इनके कई भाई-बहन मर चुके थे अतः अन्ध-परम्परानुसार माता-पिता ने इनकी नाक छिदवा कर "नथुआ" (नाथूरामशंकर) नाम प्रदान किया। बड़े होने पर इन्होंने "शंकर" उपनाम धारण किया और ये नाथूरामशंकर शर्मा 'शंकर' के नाम से विख्यात हुए। शंकर जी के पिता का नाम श्री रूपराम शर्मा तथा माता का नाम जीविनीदेवी था। पिता शाक्त मतानुयायी थे। डेढ़ वर्ष की अवस्था में ही माता दिवंगत हो गई, तो बालक का पालन पोषण उनकी नानी और बुआ ने किया।

प्रारम्भ में इनकी शिक्षा हिन्दी और उर्दू की हुई। बाद में फारसी भी पढ़ी। कविता करने का शौक इन्हें बाल्यकाल से ही था। ये इतिहास और भूगोल की बातें भी कविता में लिख कर याद करते थे। १३ वर्ष की आयु में ही इन्होंने काव्य-रचना आरम्भ कर दी। पहले उर्दू में लिखना आरम्भ किया, पुनः हिन्दी में लिखने लगे। अध्ययन समाप्ति के पश्चात् जीविका की खोज में शंकर जी कानपुर पहुँचे। यहाँ नक्शानवीसी और पैमाइश का काम सीख कर नहर के दफ्तर में नौकर हो गये। धीरे-धीरे 'सब-ओवरसियर' के पद पर पहुँच गये। लगभग साढ़े सात वर्ष तक राजकीय सेवा करने के पश्चात् एक दिन स्वाभिमान का प्रश्न उपस्थित होने पर आपने सरकारी सेवा से त्यागपत्र दे दिया। पुनः अनूपशहर आ गये और आयुर्वेद का अध्ययन करने लगे। तत्पश्चात् अपने जन्मस्थान हरदुआगंज आ गये, और चिकित्साकार्य से जीविका-निर्वाह करने लगे। वैद्यक कार्य में आपको इतनी सफलता मिली कि लोग इन्हें "पीयूष पाणि" कहने लगे। अब चिकित्सा करना और कविता लिखना, शंकर जी के दो ही कार्य रह गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषि दयानन्द के दर्शन करने का सौभाग्य शंकर जी को अपने ग्राम हरदुआगंज में ही प्राप्त हुआ था, परन्तु कानपुर में उन्होंने ऋषि के कई व्याख्यान भी सुने। अपने जीवन के दो सौभाग्यों का उल्लेख करते हुए वे प्रायः कहा करते थे कि उनके जीवन के दो ही प्रमुख पल हैं। एक तो ऋषि दयानन्द के दर्शन तथा उनके उपदेश-श्रवण का लाभ तथा द्वितीय कुछ तुकबन्दी कर लेना। ऋषि के व्याख्यानों का कवि पर इतना प्रभाव पड़ा कि वे अविलम्ब आर्यसमाज कानपुर के सभासद बन गये। यहाँ पर ही आपने सुप्रसिद्ध आर्यसमाजी विद्वान पं० देवदत्त शास्त्री से संस्कृत का अध्ययन किया। हिन्दी के प्रसिद्ध निबन्धकार, पत्रकार तथा भारतेन्दुकालीन लेखक पं० प्रतापनारायण मिश्र से आपकी प्रगाढ़ मैत्री कानपुर के निवासकाल में हुई। उनके पत्र 'ब्राह्मण' में प्रायः इनके लेख भी प्रकाशित होते थे। अपने सपय के सभी साहित्यकारों से उनका प्रगाढ़ मैत्री सम्बन्ध था। "सरस्वती" के सम्पादक आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी उनका बड़ा सम्मान करते तथा उनकी रचनाओं को आदरपूर्वक सरस्वती में प्रकाशित करते थे।

हिन्दीप्रेमी सुप्रसिद्ध अंग्रेजो विद्वान डा० जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने सरस्वती में प्रकाशित होने वाली खड़ी बोली की नीरस और शुष्क कविताओं को देखकर आचार्य द्विवेदी जी को लिखा—क्या खड़ी वोली में सरसता नहीं आ सकती ? खड़ी बोली के प्रबल समर्थक द्विवेदी जी को यह बात बहुत खटकी उन्होंने तुरन्त शंकर जी को पत्र लिखा और अनुरोध किया कि वे सरस्वती के लिये खड़ी बोली की कुछ खास रचनायें भेजकर उनकी लाज रक्खें। उस समय तक शंकर जी प्रायः ब्रज भाषा में लिखा करते थे। खड़ी बोली में उनकी बहुत कम रचनायें प्रकाशित हुई थीं। अब द्विवेदी जी के आग्रह को स्वीकार कर, महाकवि ने खड़ी बोली की कुछ महत्वपूर्ण कवितायें लिखकर सरस्वती में भेजीं। इन कविताओं में हमारा अधःपतन, सम्मुखोद्धार, बसन्तसेना, केरल की तारा, अविद्यानन्द का व्याख्यान, पंचपुकार आदि उल्लेखनीय थीं। इन कविताओं को पढ़कर खड़ी बोली कविता के लिये डा० ग्रियर्सन को अप्नी सम्मति बदलनी पड़ी। अब उन्होंने द्विवेदी जी को लिखा— "ये शंकर जी कौन हैं ? इनकी कवितायें पढ़कर मैंने अपनो सम्मति बदल ली है, और अब मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि खड़ी बोली में भी सुन्दर और सरल कवितायें हो सकती हैं।"

सरस्वती के अतिरिक्त फतहगढ़ से प्रकाशित होने वाले "कवि व चित्रकार" नामक लीथो में प्रकाशित होने वाले एक मासिक पत्र में भी उनकी रचनायें छपती थीं। प्रसिद्ध हिन्दीविज्ञ कलक्टर ग्राउस साहब के हेड क्लर्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पं० कुन्दनलाल शर्मा इस पत्र के सम्पादक थे, और यह पत्र भी इन्हीं ग्राउस साहब की प्रेरणा तथा सहायता से प्रकाशित होता था ।

शंकर जी प्रवासभीरू थे । यद्यपि अनेक सत्ता सम्मेलनों तथा उत्सवों के निमन्त्रण उन्हें मिलते रहते थे, तथापि अपने ग्राम को छोड़ कर कहीं जाना उन्हें पसन्द नहीं था । कई नरेशों ने उन्हें बुलवाया, परन्तु वे नहीं गये । केवल एक बार छतरपुर (मध्य प्रदेश) नरेश श्री विश्वनाथसिंह तथा उनके तत्कालीन दीवान हिन्दी के ख्यातनामा साहित्यकार रावराजा पं० श्यामबिहारी मिश्र (मिश्र बन्धुओं में एक) का अनुरोध स्वीकार कर केवल ५ दिन के लिये छतरपुर गये । वहाँ के साहित्य-प्रेमी उनका सत्संग लाभ कर अत्यन्त प्रसन्न हुये । अमेठी के आर्य-राजा रणंजयसिंह जी तथा उनके भाई स्व०रणवीरसिंह जी के आग्रहवश वे दो दिन के लिये अमेठी भी गये थे । हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापतित्व करने के लिये भी उनसे कई बार आग्रह किया गया, परन्तु उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया । बहुत आग्रह करने पर सम्मेलन के दिल्ली अधिवेशन के अवसर पर आयोजित अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता उन्होंने अवश्य की ।

इस समय के दिल्ली प्रवास की एक मनोरंजक घटना अविस्मरणीय है— शंकर की दृष्टि वृद्धावस्था के कारण निर्बल हो गई थी । दिल्ली प्रवास का लाभ उठा कर वे अपने नेत्रों की परीक्षा कराने सिविल अस्पताल के नेत्र विशेषज्ञ के पास गये । डाक्टर ने परीक्षा करने के उपरान्त बताया कि एक नेत्र तो ठीक हो सकता है किन्तु दूसरे की ठीक होने की आशा नहीं हैं । इस कथन पर आशु कवि शंकर जी के मुख से अनायास ही यह कविता निकल गई—

बूढ़े शंकर से कहती है
हाथ जोड़ कविता बाला ।
होकर सूर भजो केशव को ।
ले कर में तुलसी की माला ।।

कहना नहीं होगा कि मुद्रा अलंकारयुक्त कविता की इन पंक्तियों को सुन कर नेत्र विशेषज्ञ डाक्टर भौचक्के से रह गये, तब उन्हें बताया गया कि उनके रोगी और कोई नहीं, हिन्दी के प्रख्यात कवि शंकर जी हैं जो दिल्ली में कवि सम्मेलन की अध्यक्षता करने के लिये आये हैं ।

महाकवि का एक और मनोरंजक संस्मरण यहाँ लिखा जाता है । हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि गयाप्रसाद शुक्ल "सनेही" जी "त्रिशूल" नाम से भी कविताएँ लिखते थे, शंकर जी के ही शिष्य थे । एक बार ५१ रु० का पुरस्कार उक्त त्रिशूल कवि को मिला तो शंकर जी ने विनोदपूर्वक यह दोहा लिखा—

क्या शंकर कविता लिखे,
क्या पावे उपहार ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इक्यावन तो ले गया,
शंकर का हथियार ।।

शंकर के आयुध त्रिशूल को ही जब पुरस्कार मिल गया तो स्वयं शंकर को पुरस्कार प्राप्ति की इच्छा क्यों होने लगी ?

१९२५ ई० में जब महर्षि दयानन्द का जन्म-शताब्दी-उत्सव मथुरा में मनाया गया तो उस समय आयोजित विराट कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता महाकवि शंकर ने ही की थी । कवि की निस्पृहता तथा निर्लोम वृत्ति की अनेक कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। १९१३ में जब उनका काव्यसंग्रह 'अनुरागरत्न' छप रहा था, तो उनके समक्ष एक राजा का प्रस्ताव आया कि यदि वे उक्त काव्यग्रन्थ को राजा साहब को समर्पित कर दें तो ग्रन्थव्यय के अतिरिक्त पाँच हजार रुपया उन्हें भेंटस्वरूप दिया जायेगा । परन्तु शंकर जी ने इन काव्यों को अपने निकटतम सुहृद, हिन्दी के सुप्रसिद्ध समालोचक पं० पद्मसिंह शर्मा को समर्पित करने का निश्चय कर चुके थे । इष्ट मित्रों ने तथा स्वयं शर्मा जी ने श्री महाकवि पर जोर डाला कि वे राजा साहब के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लें, कुछ अर्थलाभ ही हो जायेगा । परन्तु अपनी आन के धनी कवि ने सजल नयन होकर कहा--"मैं तो अपनो किताब सम्पादक जी (पं० पद्मसिंह शर्मा) कूंई समर्पित करेंगो । जो काव्य के मर्मज्ञ हैं । धन पीछो भर्या,मो कूं दबाओं मत, बिचारो राजा कविता कूं का जाने" इतने बड़े अर्थप्रलोभन को लात मार कर शंकर जी ने 'अनुरागरत्न' का समर्पण काव्यमर्मज्ञ पं० पद्मसिंह शर्मा के प्रति ही किया ।

फरवरी १९२३ में काशीनिवासी देशभक्त बाबू शिवप्रसाद गुप्त जब विश्वभ्रमण को प्रस्थान करने लगे तो पं० पद्मसिंह शर्मा की प्रेरणा से उन्होंने शंकर जी के पुत्र पं० हरिशंकर शर्मा को अपने निजी सचिव के रूप में २५०-३०० रु० मासिक वेतन देकर अपने साथ यात्रा पर ले जाने का प्रस्ताव रक्खा । हरिशंकर जी के लिये इस प्रस्ताव का बहुत बड़ा मूल्य था, क्योंकि मुफ्त में संसार-भ्रमण के साथ-साथ अच्छा वेतन मिलने की भी बात थी । परन्तु इस प्रस्ताव के साथ-साथ उत्तर प्रदेश आर्य-प्रतिनिधि सभा के मुखपत्र "आर्यमित्र" का सम्पादक-पद ग्रहण करने के लिये पं० घासीराम जी तथा श्री मदनमोहन सेठ ने हरिशंकर जी से अनुरोध किया । महाकवि से प्रार्थना की गई कि वे अपने सुयोग्य पुत्र को आर्यमित्र का सम्पादक पद स्वीकार करने का आदेश प्रदान करें । महाकवि ने अपने पुत्र को संसार भ्रमण का प्रलोभन छोड़कर आर्यमित्र का सम्पादन करते हुए आर्यसमाज और ऋषि दयानन्द के ऋण से उऋण होने का आदेश दिया । शर्मा जी ने भी तत्काल स्वीकार किया और वह भी केवल ८० रु० मासिक लेकर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खेद है कि महाकवि शंकर के काव्य का उचित मूल्याँकन हिन्दी के पक्षपातग्रस्त समीक्षकों ने नहीं किया। उन्होंने शंकर की कविता को नीरस, शुष्क, सुधार-बहुला तथा आर्यसमाजी ढर्रे की कहकर उसकी अपेक्षा की। वस्तुतः उन समीक्षक नामधारी लोगों में शंकर की कविता को समझने या उसके महत्व का निर्धारण करने की क्षमता का नितान्त अभाव था, तभी तो इस महाकवि की सारस्वत-साधना का यथोचित मूल्याँकन अभी तक नहीं हो सका है। शंकर का समग्र काव्य विविध रसपूर्ण एक महासागर के तुल्य है। उनके तीन काव्यग्रन्थ 'अनुरागरत्न', "शंकर सरोज" तथा "गर्भरण्डा रहस्य" प्रकाशित हुये। सैकड़ों समस्यापूर्तियाँ तथा स्फुट-काव्यरचनायें भी मिलती हैं। "शंकर सर्वस्व" शीर्षक के अन्तर्गत उनके काव्य का महत्वपूर्ण भाग २००८ वि० में पं० हरिशंकर शर्मा द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हुआ था।

समालोचक वर्ग ने चाहे कवि के प्रति उपेक्षा दिखाई हो, परन्तु उसकी कविता के यथार्थ गुणों के पारखी भी कम नहीं थे। राजा लक्ष्मणसिंह जैसे भारतेन्दुकालीन वयोवृद्ध साहित्यकार ने उन्हें "भारतप्रज्ञेन्दु" की उपाधि दी तो जगद्गुरु शंकराचार्य भारती कृष्णतीर्थ जी ने उन्हें "कविशिरोमणि" की उपाधि से अलंकृत किया। ज्वालापुरस्थित गुरुकुल महाविद्यालय की आर्य विद्वत्सभा ने उन्हें "कविता कामिनी कान्त" की उपाधि प्रदान करते हुए एक स्वर्ण पदक प्रदान किया जिस पर निम्न श्लोक अंकित था—

कबिता कामिनी कान्तः,
श्री नाथूराम शंकरः।
ज्वालापुरार्य विदूषां:
सभया मान्यतेतराम्॥

महाविद्यालय के ही गुरुवर पं० काशीनाथ जी शास्त्री ने शंकर को सरस्वती का अवतार बताते हुए निम्न श्लोक कहे—

शंकरं प्रणमन् काशी-
नाथोऽहं द्विजसत्तमः।
काव्य दर्शन संजात
चमत्कारो निवेदये॥
नूनं "सरस्वती" नाथूराम
शंकर पण्डितः।
अन्यथे दृश पद्यानि को
निर्मिमीत मानवाः॥

१२६वीं जन्म-तिथि पर महाकवि को हमारी विनम्र श्रद्धाँजलि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन भारत में मंत्री-परिषद

डा० विनोदचन्द्र सिन्हा
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग

प्राचीन भारत में जिस प्रकार सभा और समिति की सत्ता थी वैसे ही मन्त्री परिषद भी शासन में महत्वपूर्ण स्थान रखती थी। वैदिक युग में 'राजकृतः राजानः' और उत्तर-वैदिक युग में रत्निन् की सहायता से राजा शासन कार्य का सम्पादन करता था। कालान्तर में जब राज्य और भी सुव्यवस्थित दशा में आ गये तो मन्त्री-परिषद का निर्माण हुआ। कौटलीय अर्थशास्त्र, नीति ग्रन्थों और स्मृति ग्रन्थों आदि से मन्त्री-परिषद के विषय में पर्याप्त जानकारी मिलती है।

प्राचीन भारतीय आचार्यों ने मन्त्री-मण्डल को राज्य व्यवस्था का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण अंग स्वीकार किया है। महाभारत[1] में उल्लेख है कि राजा अपने मन्त्रियों पर उतना ही निर्भर है जितना कि प्राणिमात्र पर्जन्य पर, ब्राह्मण वेदों पर और स्त्रियाँ अपने पतियों पर। अर्थशास्त्र[2] का कथन है कि जिस प्रकार एक पहिये से रथ नहीं चल सकता उसी प्रकार बिना मन्त्रियों की सहायता, अकेले राजा से राज्य नहीं चल सकता। आचार्य शुक्र[3] का मत है कि योग्य राजा भी सब बातें नहीं समझ सकता, अतः राज्य की अभिवृद्धि चाहने वाला राजा योग्य मन्त्रियों को नहीं चुने तो राज्य का पतन निश्चित है। उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि प्राचीनकाल के हिन्दु विधिवेत्ता मन्त्री-मण्डल को राज्य का अभिन्न अंग मानते थे।

कौटलीय अर्थशास्त्र[4] में लिखा है—कार्य प्रारम्भ करने के उपाय, मनुष्यों और धन का कार्यों के लिये विनियोग, कार्यों को करने के लिये कौन-सा प्रदेश व कौन-सा समय प्रयुक्त किया जाये, कार्यसिद्धि के मार्ग में आने वाली विपत्तियों का निवारण और कार्य की सिद्धि—मन्त्र (राजकीय परामर्श) के ये पाँच अंग होते हैं। इन्हीं के लिये मन्त्रियों और मन्त्री परिषद की आवश्यकता होती है।

मन्त्री-मण्डल के सदस्यों के सम्बन्ध में मनु का मत है कि मन्त्रियों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

151384
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संख्या ७ या ८ होनी चाहिये। महाभारत ८ के पक्ष में है। अर्थशास्त्र इस सम्बन्ध में विभिन्न मतों का उल्लेख करता है। जिससे विदित होता है कि मानव-सम्प्रदाय वाले १२, बहिस्पत्य सम्प्रदाय वाले १६ और औरानस सम्प्रदाय वाले २० मन्त्रियों के पक्ष में थे। पर आचार्य कौटिल्य के मत में जितनी आवश्यकता समझी जाये उतने ही मन्त्री नियत किये जाने चाहिये। इन्द्र की मन्त्री-परिषद में एक हजार ऋषि थे। इसी कारण यद्यपि उनको अपनी दा ही आँखं थीं, पर उसे 'सहस्राक्ष' कहा जाता था।[5]

राज्य के विविध पदाधिकारियों के लिये अमात्य शब्द प्रयुक्त होता था। देश, काल और धर्म को दृष्टि में रखकर राज्य के विविध अमात्यों की नियुक्ति की जाती थी। पर ये सब अमात्य मन्त्री नहीं होते थे।[6] जो अमात्य 'सर्वोपधाशुद्ध' हों उन्हें हो मन्त्रो पद पर नियुक्त किया जाता था[7]। जो अमात्य पूर्णतया धार्मिक हों, काम, क्रोध, लोभ, मोह से रहित हों उन्हें ही मन्त्रो पद पर नियुक्त किया जाना चाहिये। ऐसे मन्त्रियों से परामर्श करके ही राजा किसी निश्चित परिणाम पर पहुँचता था। परन्तु राजकीय परामर्श को गुप्त रखना भी बहुत आवश्यक था। इसी कारण कौटिल्य ने भारद्वाज का यह मत उद्धृत किया है कि "गुप्त विषयों पर अकेला स्वयं विचार करे।" यदि मन्त्रियों से परामर्श किया जायेगा तो परामर्श गुप्त नहीं रह सकता क्योंकि मन्त्रियों के भो मन्त्री होते हैं और उनके भी अन्य सलाहकार। विशालाक्ष[8] इस मत से असहमत होकर अपना मत इस प्रकार रखते हैं कि अकेले कभी मन्त्र की सिद्धि नहीं हो सकती। राजवृत्ति तीन प्रकार की होती है—प्रत्यक्ष, परोक्ष और अनुमेय। यह मन्त्रियों का ही कार्य है कि जो ज्ञात नहीं है उसका पता लगायें, जो ज्ञात है उसके सम्बन्ध में निश्चय करें। जहाँ संदेह हो, उसका निवारण करें। अतः राजा को चाहिये कि बुद्धिमान लोगों से परामर्श करे।

आचार्य पाराशर[9] का कहना है कि इस ढंग से मन्त्र का ज्ञान तो हो सकता है पर उसकी रक्षा संभव नहीं है। अतः राजा को चाहिये कि उसे जो कार्य अभिप्रेत हो उससे उल्टी बात मन्त्रियों से पूछे। इससे मन्त्र का भी ज्ञान होगा और रक्षा भी। पिशुन इससे सहमत नहीं हैं। उनका कथन है कि जिन कार्यों से मन्त्रियों का सम्बन्ध हो उनसे उनके विषय में ही परामर्श करना चाहिये। ऐसा करने से उचित परामर्श भी मिलता है और मन्त्र भी गुप्त रहता है। कौटिल्य इस विचार से भी सहमत नहीं थे। उनके मतानुसार राजा तीन या चार मन्त्रियों के साथ परामर्श करे। एक ही मन्त्री से परामर्श करने पर वह बेलगाम होगा, यथेष्ट आचरण करने लगेगा। दो मन्त्री होने पर दोनों के आपस में मिल जाने से राजा स्वयं को असहाय महसूस करेगा। तीन या चार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रियों से परामर्श करने पर ये दोष उत्पन्न नहीं होंगे। कौटिल्य अर्थशास्त्र से यह भी विदित होता है कि मन्त्री-परिषद किसी संसद के प्रति उत्तरदायी नहीं थी।

जातक ग्रन्थों और अशोक के शिलालेखों में भी मन्त्रियों की सभा के लिये परिषद शब्द का उल्लेख किया गया है। अशोक के लेखों से सूचित होता है कि परिषद का कार्य केवल राजा को परामर्श देना ही नहीं था अपितु राजकीय नीति को क्रियान्वन करने के सम्बन्ध में आदेश देना भी था।

मन्त्री-परिषद राजा के कार्यों पर नियन्त्रण करने का भी अधिकार रखती थी। यह दिव्यावदान की उस कथा से सूचित होता है जिसके अनुसार अमात्य राधागुप्त ने युवराज सम्पदि की सहायता से अशोक को इस बात से रोक दिया था कि बह राजकोष से बौद्ध विहार के लिये दान दे सके।

मनुस्मृति[10] में लिखा है यदि राजा कोई कार्य सहायकों के बिना करेगा, तो वह मूर्ख ही होगा। क्योंकि ऐसा राजा कदापि न्यायपूर्वक अपना कार्य नहीं कर सकता। जो कार्य सुकर होते हैं, वे भी एक व्यक्ति के लिये दुष्कर होते हैं, जब तक की उसके सहायक न हों। तो फिर राज्य की तो बात ही क्या ? शुक्र-नीति-सार के अनुशीलन से मन्त्री-परिषद को स्थिति पर बहुत उत्तम प्रकाश पड़ता है। शुक्र के अनुसार राजा कभी अपने मत के अनुसार कार्य न करे अपितु कुछ व्यक्तियों के मत में स्थित होकर रहे। शुक्र एकमात्र ऐसे विचारदर्शक हुए हैं जिन्होंने उपाधियाँ भी बतलाई हैं। उनके अनुसार मन्त्री-परिषद में १० मन्त्री होने चाहिये। १-पुरोहित, २-प्रतिनिधि, ३-प्रधान, ४-सचिव, ५-मन्त्री, ६-प्राड्विवाक, ७-पंडित, ८-सुमन्त्र, ९-अमात्य, १०-दूत, । डा० अल्तेकर[12] के अनुसार—"यद्यपि पूर्व आचार्यों ने विभागों का वर्णन नहीं किया है फिर भी हम मान सकते हैं कि विभागों का विभाजन शुक्राचार्य द्वारा वर्णित ढंग पर हा होता था, क्योंकि उत्कीर्ण लेखों में इन मन्त्रियों के उल्लेख इसी या इसके पर्यायवाची नामों में मिलते हैं।

नीति-शास्त्र विषयक अन्य भारतीय ग्रन्थों में भी मन्त्रियों और मन्त्री-परिषद के महत्व के सम्बन्ध में अनेक बातें पायी जाती हैं। नीति वाक्यामृतम्[13] में लिखा है—उसे राजा नहीं कह सकते, जो मन्त्रियों का अतिक्रमण करके रहे। वस्तुतः प्राचीन समय में भारत के राजा मन्त्रियों के अधीन होकर ही काय करते थे। इसीलिये महाभारत के शान्ति पर्व[14] में लिखा है– राजा तो सदा ही परतन्त्र है। सन्धि और विग्रह के कार्य में राजा कहाँ स्वतन्त्र है ? वह तो स्त्रियों और क्रीड़ाविहार तक में स्वतन्त्र नहीं होता। वह तो सब मन्त्र अमात्यों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साथ ही करता है। राजा को स्वतन्त्रता कहाँ है ?

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्राचीन काल में मन्त्री-परिषद का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण था और राजा की स्वेच्छाचारिता पर नियन्त्रण रखने का कार्य मन्त्रियों के ही हाथों में था।

सन्दर्भ :

१- महाभारत : ५.३७.३८
२- अर्थशास्त्र : १.३.१
३- शुक्र : २.८१
४- कौटलीय अर्थशास्त्र १/१५
५- कौटलीय अर्थशास्त्र १/१५
६- ,, ,, १/८
७- ,, ,, १/१०
८- ,, ,, १/१५
९- ,, ,, १/१५
१०- मनुस्मृति, अध्याय ७
११- शुक्रनीति सार ३२/२
१२- डा० अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति ।
१३- नीति वाक्यामृत अ ।। १०
१४- महा० शान्तिपर्व, ३२५/१३९-१४०

—०—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय गणित का सर्वेक्षण

वीरेन्द्र अरोड़ा
कुलसचिव, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

सामान्य रूप से गणित की तीन धाराएँ—अंकगणित, बीजगणित तथा ज्यामिति अधिक प्रसिद्ध हैं। अधिकाँश लोगों की यह धारणा होगी कि अन्य आधुनिक विद्याओं की तरह यह शास्त्र भी भारत में बाहर से आया होगा। पर यदि गम्भीरता से विचार किया जाये और भारतीय विद्वानों के द्वारा किये गये शोधकार्य का अवलोकन किया जाये तो ज्ञात होगा कि गणित का इतिहास भारतीय विद्याओं में प्राचीनतम है। वैदिक युग से लेकर बीसवीं शताब्दी तक के भारतीय विद्वानों ने बार-बार यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि गणित का उद्‌भव और विकास भारत में हुआ। यह ठीक है कि छः वेदाँगों में गणित ज्योतिष का ही अंग होकर विवेचित हुआ, उसे स्वतन्त्र रूप से प्रतिष्ठित होने का कोई परम्परागत आधार नहीं मिला। आइजक राड़ हन्टर, जार्ज जन्सटन, आलविन, हरमान हेन्कल जैसे लन्दन और जर्मन के विद्वानों ने गणित के इतिहास की अनेक पुस्तकें लिखीं हैं, किन्तु उनमें भारतीय योगदान की चर्चा नहीं के बराबर हुई है। भारत के आधुनिक विद्वान् शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने सर्वप्रथम भारतीय गणित पर भारतीय ज्योतिष नामक ग्रन्थ में साधिकार चर्चा की और १८९१ में यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। गायकवाड़ सरकार ने उन्हें १८९६ में १०००/–के पारितोषिक से पुरस्कृत किया था। हिन्दी समिति ग्रन्थ-माला, लखनऊ से यह पुस्तक हिन्दी में अनुदित होकर प्रकाशित हो गई है। इसके बाद १९१०में पंडित सुधाकर द्विवेदी ने बनारस से गणित का इतिहास प्रकाशित कराया। इसमें भास्कर जैसे विद्वानों के अंकगणितीय और बीजगणितीय कार्य का दिग्दर्शन कराते हुए ज्यामिति पर विशेष विचार किया गया था। वराहमिहिर के सूर्य सिद्धान्त, सूर्य सिद्धान्त का स्पष्टाधिकार, ज्यातारिणी और आजकल की रीति से ज्या के मान की तुलना करते हुए भारतीय इतिहासकारों की विशेषता बताई गई थी। आर्यभट्ट ने "ज्या" सारिणी बनाने के प्राचीन नियमों के अतिरिक्त एक नया नियम भी दिया था। जैसे "पहली ज्या से उसको उसी से भाग देकर घटा दो इस प्रकार सारिणी ज्याओं का दूसरा अन्तर प्राप्त होगा। कोई-सा भी अन्तर निकालने के लिये उससे पिछले समस्त अन्तरों के जोड़ को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहलो ज्या से भाग देकर उससे पिछले अन्तर में से घटा दो, इस प्रकार सारे अन्तर प्राप्त हो जायेंगे। यदि आर्यभट्ट की ज्या सारिणी के साथ ज्याओं के आधुनिक मान दिये जायं, तो कोई विशेष अन्तर नहीं आता है । प्रोफेसर ए० एन० सिंह की पुस्तक "हिन्दु ट्रिगनोमैटरी" से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है । आर्यभट्ट नवीं शताब्दी के गणितज्ञ हैं, अलब्यूरीनी ने भ्रम से दो आर्यभट्टों का उल्लेख किया है, पर भारतीय विद्वान एक ही आर्यभट्ट का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। इनके आर्य सिद्धान्त ग्रन्थ में अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति और गोला सभी विषयों का समावेश है। जिस लीलावती की चर्चा आधुनिक विद्वान करते हैं, वह भास्कराचार्य की ज्योतिष सम्बन्धी सिद्धान्त शिरोमणि ग्रन्थ का ही एक खण्ड है। आर्यभट्ट को समझना कठिन हो गया होता यदि उसके टोकाकार परमादीश्वर ने सिद्धान्त दीपिका न लिखी होती । काशी के ही बाबूदेव शास्त्री ने १८६१ में इसका एक खण्ड छपवाया था। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि सारिणी बनाने की भास्कराचार्य ने जो सात विधियाँ दा हैं, उनमें से एक आलेख प्रधान या ग्रेफिकल भी है। Calculation के लिये भारत में कलन शब्द का प्रचलन रहा है। पंडित सुधाकर द्विवेदी ने सर्वप्रथम Calculus के लिये कलन शब्द का प्रचलन किया। वह राजकीय संस्कृत कालेज में पुस्तकालाध्यक्ष थे। अंग्रेज सरकार ने इनके गणित सम्बन्धी कार्य को देखकर महामहोपाध्याय की उपाधि दी थी। इन्होंने Spherical Geometry (गोलीय रेखागणित)नाम से ग्रन्थ की रचना की थी। आज भी Integration के लिये समाकलन, Bounded के लिये परिमित फलन तथा Fundamental theorem of Integral Calculus के लिये चलराशि कलन का मूलभूत प्रमेय तथा Inverse Differention के लिये उत्क्रम अवकलन जैसे शब्दों का प्रयोग भारतीय गणित के इतिहास में ५० वर्ष पहले जो पंडित सुधाकर द्विवेदी ने चलाया, वही आज भी चल रहा है। अंग्रेजी में दो खण्डों में D. E. Smith ने Histroy of Mathematics लिखकर संख्या, प्राकृतिक संख्याओं का गणित, परिकलन यन्त्र, कृत्रिम संख्याएँ, ज्यामिति, बीजगणित, त्रिकोणमिति, नाप-तोल तथा कलन पर जो कुछ लिखा है, वह गणित के पाठक के लिये मार्गदर्शन का काम करते हैं, किन्तु इसमें भारतीय विचारकों पर विचार नहीं किया गया है। १९३२ में B. B. Dutt ने कलकत्ता से Science of Sulba (शुल्ब सूत्र) तथा गणेशप्रसाद ने १९३३ में बनारस से Some Great Mathematicians of the 19th Century लिखकर भारत में गणितीय गवेषणा की परम्परा को स्थापित किया। १९३३ में ही B. B. Dutt और A. N. Singh ने संयुक्त रूप से History of Hindu Mathematics दो खण्डों में लिखकर लाहौर से प्रकाशित कराया। फिर तो भारतोय गणित पर कई विद्वानों ने अलग-अलग पुस्तकें प्रकाशित कराईं, जिनमें डा० वृजमोहन,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० कृपाशंकर शुक्ल तथा डा० गोरखप्रसाद के नाम उल्लेखनीय हैं।

ज्यामिति और बीजगणित पर विचार शुल्ब सूत्रों में यज्ञ वेदी के निर्माण के प्रसंग में हुआ है। किन्तु अंक सिद्धान्त तथा गणना परम्परा भारत में प्राचीन मिलती है। सिकन्दर के आक्रमण के समय तक लोगों का कहना है कि भारत में अंकगणित का विकास नहीं हुआ था। किन्तु हिन्दू संख्या पद्धति ५००० और १००० ई० के बीच की उपज है जिसमें आर्यभट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त तथा महावीर ने क्रमशः आर्य सिद्धान्त, ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त, तथा गणित सार संग्रह लिखकर भारतीय अंकगणित को व्यवस्थित किया। आर्यभट्ट ने वर्गमूल निकालने के रोचक सूत्र दिये हैं, इनके द्वारा दी गई वर्गमूल क्रिया ठीक वैसी ही है, जैसे आधुनिक गणित में। इसमें कई बार जाँच भजनफल लेने की भी व्यवस्था है, यह सूत्र श्लोकों में जैसेः—

"भागं हरेद्वर्गान्नित्यं द्विगुणेन वर्गमूलेन।
वर्गाद्वर्गे शुद्धे लब्धं स्थानान्तरे मूलम्॥

अर्थात्—ईकाई के स्थान से आरम्भ करके प्रत्येक दूसरे अंक के ऊपर एक बिन्दु रखो जितनी बिन्दियाँ लगेंगी उतने ही अंक वर्गमूल में होंगे। इसी प्रकार घनमूल निकालने की विधि इस प्रकार दी गई है :—

"अघनाद् भजेद् द्वितीयात् त्रिगुणेन घनस्य मूलवर्गेण।
वर्गस्त्रिपूर्व गुणितः शोध्यः प्रथमाद् धनश्च धनाद्॥"

अर्थात्—पहले दी गई संख्या पर दाहिने से आरम्भ करके और दो-दो अंक छोड़कर बिन्दियाँ लगा दी जायें, सबसे बायीं ओर जो संख्या बचे, उसे बड़ी से बड़ी संख्या जिसका घन उसमें से घट सकता हो निश्चित कर ली जाये। उसे भजनफल में रख लिया जाये और उसके घन को बांयी वाली संख्या से घटा लिया जाये। महावीर ने तो बड़े रोचक प्रश्न बनाये हैं, भिन्नों पर बड़ी रोचक दृष्टि से विचार भी किया है।

एक उदाहरण देखिये—

"फलभार नम्र कम्रे शालिक्षेत्रे शुका स्समुपाविष्टाः।
सहसोत्थिा मनुष्यैः सर्वे सन्त्रासितास्सन्तः॥
तेषामर्धं प्राचीमाग्नेयीं प्रतिजगाम् षड्भागः।
पूर्वाग्नेयीशेषः स्वदलोनः स्वार्धवर्जितो यामीम्॥
याम्याग्नेयी शेषः स नैऋत्रि स्वद्विपन्चभागोन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याम्नैऋत्यं शक परिशेषो वारुणीमाशाम् ।।
नैऋत्यपर विशेषो वायव्यां सस्वकत्रि सप्तांहशः ।
वायव्यपर विशेषो युतस्व सप्ताष्टमः सौमीम् ।।
वायव्युत्त योर्युतिरैशानीं स्वत्रियागयुग हीनाः ।
दशगुणिताष्टाविंशतिरवशिष्टा व्योम्निकति कोराः ।।

अर्थात्—एक धान के खेत में, जिसका दाना पक चुका था और बालें बोझ से झुकी जा रहीं थीं, तोतों का एक झुण्ड उतरा । रखवालों ने उन्हें डराकर उड़ा दिया । उनमें से आधे पूर्व दिशा को चले गये और १/७ दक्षिण पूर्व की ओर । इन दोनों के अन्तर में से अपना आधा घटा कर जो बच रहे उसमें से फिर उसी का आधा घटाने पर जितने बचे रहे, वे दक्षिण दिशा में गये । जो दक्षिण गये और जो दक्षिण-पूर्व गये उनके अन्तर में से उसी का २/५ घटाने से जितने बच रहे, वे दक्षिण-पश्चिम गये । जितने दक्षिण गये और जितने दक्षिण-पश्चिम गये जितना इन दोनों का अन्तर हो, उतने पश्चिम गये । जितने दक्षिण-पश्चिम गये और जितने पश्चिम गये उनके अन्तर में उसी का ३/७ जोड़ने से जो आये उतने उत्तर-पश्चिम गये । जितने उत्तर पश्चिम गये और जितने पश्चिम गये उनके अन्तर में उसी का ७/८ मिलाने से जो फल आये उतने उत्तर गये । जो उत्तर-पश्चिम गये और जो उत्तर गये, उनके जोड़ में से उसी का २/३ घटाने से जो प्राप्त हो उतने ही उत्तर पूर्व गये । और २८० तोते आकाश में विचरते रह गये । तो कुल मिलाकर झुण्ड में कितने तोते थे ?

प्रोफेसर ए० के० वेग ने Mathematics in Ancient and Medieval India पुस्तक में संख्याओं को और संख्याओं के वर्गीकरण को वैदिक सिद्ध किया है । एक द्वि, त्रि, चतुर्थ, पंच, षट्, सप्त, अष्ट, नव, दश तथा विंशति और शत जैसे संख्याओं का वैदिक साहित्य में उल्लेख मिलता है । यजुर्वेद संहिता के १७ वें अध्याय में तैत्तरीय संहिता, मैत्रायणी संहिता तथा काठक संहिता में संख्याओं और उनके गुणन का उल्लेख किया गया है । अतः यह कहना कि संख्याओं की गणना भारतीय नहीं है, अनुचित प्रतीत होता है । प्रोफेसर वेग, Indian National Science Academy में कार्यरत हैं, जिन्हें अधिक रुचि हो वो उनका ग्रन्थ देख सकते हैं । इधर पुरी के जगत्गुरु स्वामी भारतीकृष्ण तीर्थ जी ने "वैदिक मैथमैटिक्स" पुस्तक में १६ सूत्र देकर समस्त गणित की प्रक्रियाओं को भारतीय दृष्टि से समझाने का प्रयत्न किया है । मैथमैटिक्स की आधुनिक और महत्वपूर्ण शाखा Analysical Conics को भी उन्होंने भारतीय दृष्टि से ही विवेचित किया है । और इसके लिये भी वैदिक प्रक्रिया बतायी है । "उर्ध्वतिर्याभ्याम्" "लोपम्स्थापनाभ्याम्" तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आध्ययआद्येन" सूत्रों से उन्होंने Analystical Conics की समस्याओं का समाधान किया है। Simultaneous Simple Equations के लिये परावर्त सूत्र तथा शून्यमन्यत देकर तथा Miscellaneous Simple Equatiaons की पाँच प्रक्रिया अलग-अलग देकर उन्होंने भारतीय प्रक्रिया की पूर्ण वैज्ञानिकता प्रतिपादित की है।

"अन्त्ययोरेव" सूत्र से आधुनिक Summation of Series को सम्बन्द्ध करते हुए उन्होंने जो प्रक्रिया दी उससे निश्चित होता है कि वैदिक गणित आधुनिक गणित शास्त्रीय प्रक्रिया के बहुत निकट है। अन्त में कहा जा सकता है कि परम्परा से अंकगणित, बीजगणित और ज्यामिति के जो सूत्र और विचार-प्रक्रिया चली आ रही थी, वह रोम, अरब, मिस्र और योरोप के गणित शास्त्रीय विद्वानों से पूर्ववर्ती थी, तथा उसकी वैज्ञानिकता आज भी आधुनिक पद्धति पर खरी उतरती है। यह ठीक है कि योरोप में मध्यकाल में गणित का अधिक विकास हुआ, तथा १९वों तथा २०वीं शताब्दियों में बहुत महत्वपूर्ण शोधकार्य भी हुआ। किन्तु पराधीन भारत में सुधाकर द्विवेदो और बालकृष्ण दीक्षित जैसे विद्वानों ने हमारा ध्यान इस ओर आकृष्ट कर भारतीय विद्वानों की प्रतिभा को पहचानने को प्रेरणा दी। भारतीय गणित का इतिहास सबसे अधिक प्राचीन और गौरवशालो है।

—o—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मथुरा कला में 'केतु'

कृष्णकुमार
रजिस्ट्रीकरण अधिकारी
पुरावशेष एवं बहुमूल्य कलाकृति, गोरखपुर मण्डल, गोरखपुर ।

भारतीय शिल्प के इतिहास में मथुरा कला का एक विशिष्ट स्थान है। यद्यपि मथुरा कला का आविर्भाव बौद्ध प्रतिमाओं से हुआ, किन्तु शीघ्र ही उसमें जैन एवं ब्राह्मणधर्मी मूर्तियों का भी निर्माण होने लगा । सम्प्रदायगत देव विग्रहों के साथ ही मथुरा में कुछ ऐसे भी देवी-देवताओं का अंकन हुआ, जिनकी उपासना किसी धर्म अथवा सम्प्रदाय–विशेष तक सीमित न थी, जैसे अष्ट दिक्पाल "नवग्रह" आदि । मथुरा एवं उसके समीवपर्ती क्षेत्र से अनेक नवग्रह मूर्तियाँ प्रकाश में आई हैं, जो प्रतिमा विज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इन मूर्तियों के अध्ययन से केतु के विकासशील स्वरूप पर विशेष प्रकाश पड़ता है। जहाँ तक मुझे विदित है अभी तक इन मूर्तियों का स्वतन्त्र रूप से मूल्यांकन नहीं हुआ है । प्रस्तुत निबन्ध मथुरा की नवग्रह मूर्तियों के सन्दर्भ में केतु के क्रमिक विकास के निरूपण का एक लघु प्रयास है।

यह सर्वविदित है कि भारत में देवी प्रकोप से सुरक्षा हेतु ग्रहों की पूजा का प्रचलन अत्यन्त प्राचीन है। प्रारम्भ में अर्चना हेतु ग्रहों का रेखाँकन विभिन्न रंगों, अन्नपूण अथवा सुगन्धित लेपों द्वारा किया जाता था, किन्तु बाद में उनकी मूर्तियों का निर्माण अलग-अलग अथवा समूह में काष्ठ, अर्धमूल्यवान पत्थरों, धातु आदि से होने लगा । सामूहिक रूप से ग्रहों का अंकन शेषशायी विष्णु प्रतिमाओं के अतिरिक्त मध्यकालीन देव-मन्दिरों के प्रवेश-द्वारों पर भी प्राय मिलता है। दक्षिण भारत में नवग्रह मूर्तियों का निर्माण न केवल अलग-अलग होता था, वरन् उन्हें भिन्न-भिन्न मण्डपों में स्थापित भी किया जाता था। यद्यपि सूर्य के मानुषो स्वरूप का अंकन शुंग काल में होने लगा था, किन्तु चन्द्र के साथ उसकी युगल प्रतिमा का निर्माण कुषाण काल तक हुआ। अष्ट ग्रहों का सामूहिक रूप से अंकन सर्वप्रथम गुप्तकाल में हुआ । सारनाथ से प्राप्त एक उत्तरगुप्तकालीन खण्डित शिलापट्ट पर अन्तिम चार अष्ट ग्रहों–गुरु, शुक्र, शनि एवं राहु का अंकन है[1]। इससे स्पष्ट है कि लगभग छठी शताब्दी ई० तक केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टग्रहों की पूजा का विधान था। सम्भवतः अशुभसूचक होने के कारण केतु की पूजा वर्जित थी।

प्रथम चरण (केतु का स्त्री स्वरूप)—

नवग्रह मूर्तियों का निर्माण सर्वप्रथम गुप्तोत्तर काल में हुआ। इसका प्राचीनतम उदाहरण मथुरा से प्राप्त है, जो सम्प्रति राज्य संग्रहालय, लखनऊ में सुरक्षित है[2]। इस खण्डित शिलापट्ट पर केवल अन्तिम चार नवग्रहों–शुक्र, शनि, राहु एवं केतु का अंकन है। मूर्ति विज्ञान की दृष्टि से इस शिलापट्ट का विशेष महत्व इसलिये है क्योंकि इसमें सर्वप्रथम केतु के दर्शन होते हैं। यहाँ राहु को तर्पण मुद्रा में तथा उसके बाम भाग में केतु को एक गर्भवती स्त्री के रूप में स्थानक मुद्रा में दर्शाया गया है। यद्यपि प्रतिमा क्षतिग्रस्त होने के कारण केतु के आयुध दृष्टिगोचर नहीं हैं, किन्तु शुक्र एवं शनि की भाँति सम्भवतः उसका दाहिना हाथ अभय मुद्रा में तथा बायें हाथ में कमण्डलु रहा होगा। इस मूर्ति की तिथि लगभग आठवीं शताब्दी ई० है। केतु का स्त्री स्वरूप खजुराहों[3] एवं एटा जनपद के रिजोर नामक ग्राम में भी उपलब्ध है। खजुराहों एवं रिजोर स्थित प्रतिमाओं में केतु को स्त्री रूप में क्रमशः राहु के बाम एवं अधोभाग में दर्शाया गया है। उक्त प्रतिमायें लगभग दसवीं शताब्दी ई० की हैं। उपलब्ध पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि नवग्रह प्रतिमा अथवा केतु का अंकन सर्वप्रथम मथुरा में हुआ।

द्वितीय चरण (केतु का पुरुष स्वरूप)—

विकास क्रम के द्वितीय चरण में केतु का अंकन पुरुष रूप में हुआ। इस प्रकार के दो उदाहरण राजकीय संग्रहालय, मथुरा में हैं। इनमें प्राचीनतम प्रतिमा लगभग दसवीं शती ई० के प्रारम्भ को है। इस खण्डित शिलापट्ट पर केवल अन्तिम तीन ग्रह–शनि, राहु एवं केतु शेष हैं[4]। यद्यपि शनि एवं केतु के मस्तक एवं आयुध नष्ट हो चुके हैं, सम्भवतः उनके दाहिने हाथ अभय मुद्रा में तथा बायें हाथ में कमण्डलु थे। दूसरी प्रतिमा जो परिरक्षित दशा में है, दसवीं शती ई० के अन्त की है। इसमें राहु के नीचे प्रथम बार कुण्ड भी दर्शाया गया है। सर्प फण से युक्त केतु स्थानक मुद्रा में है[5]। उसका दाहिना हाथ अभय मुद्रा में तथा बायें हाथ में कमण्डलु है। केतु का अंकन अपराजितपृच्छा एवं रूप-मण्डन पर आधारित है। सम्भवतः इस प्रकार की मूर्तियाँ अन्य स्थानों में भी हों, किन्तु अभी तक वे प्रकाश में नहीं आई हैं।

तृतीय चरण (केतु का नागी स्वरूप)—

विकास के तृतीय चरण में केतु का अंकन नागी (आवक्ष भाग स्त्री तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधो भाग सर्प) के रूप में हुआ। इस प्रकार की एक नवग्रह प्रतिमा मथुरा जनपद में असाबली नामक स्थान से प्राप्त हुई है, जो राजकीय संग्रहालय, मथुरा में सुरक्षित है[6]। इसमें समस्त ग्रह आसन मुद्रा में प्रदर्शित हैं। सूर्य के अतिरिक्त प्रथम सात ग्रहों के दाहिने हाथ अभय मुद्रा में पद्म धारण किये हैं तथा बायें हाथों में कमण्डलु हैं। राहु के बाम भाग में केतु अर्ध स्त्री एवं अर्ध सर्प के रूप में अंजलि मुद्रा में प्रदर्शित है। राहु एवं केतु का अंकन आँशिक रूप में रूपमण्डल तथा अपराजितपृच्छा से प्रभावित है। शैली की दृष्टि से यह प्रतिमा लगभग नवीं शती के प्रारम्भ की प्रतीत होती है । इस प्रकार की प्रतिमायें अलीगढ़, बटेश्वर, खजुराहों[7], रेह, कड़ा[8], भीटा[9] आदि स्थानों से भी प्रकाश में आई हैं। ऐसा एक उदाहरण राज्य संग्रहालय, लखनऊ में भी है[10]। उक्त सभी प्रतिमायें लगभग नवीं एवं बारहवीं शती ई० के मध्य की हैं । किन्तु रेह (फतेहपुर जनपद) स्थित नवग्रह प्रतिमा (जो लगभग नवीं शती की है) के अतिरिक्त अन्य सभी मूर्तियाँ मथुरा की तुलना में बाद की हैं ।

चतुर्थ चरण (केतु का नाग स्वरूप)—

चतुर्थ चरण में केतु का अंकन नाग (आवक्ष भाग पुरुष एवं अधोभाग सर्प) के रूप में हुआ है। ऐसी एक नवग्रह प्रतिमा मथुरा के निकट परखम से प्राप्त हुई है, जो राजकीय संग्रहालय, मथुरा में है[11]। इसमें समस्त ग्रह आसन मुद्रा में अंकित हैं। सूर्य के अतिरिक्त प्रथम सात ग्रहों के दाहिने हाथों में कमल व बायें हाथ में कमण्डलु सुशोभित है। राहु एवं केतु क्रमशः तर्पण व अंजलि मुद्रा में दर्शाये गये हैं। शैली की दृष्टि से इसे लगभग तेरहवीं शती ई० में रख सकते हैं। इस प्रकार के अनेक उदाहरण उत्तर भारत में आगरा, खजुराहों[12], सारनाथ[13] आदि स्थानों पर उपलब्ध हैं,जो लगभग दसवीं एवं बारहवीं शती ई० के मध्यकाल की हैं। इनके अतिरिक्त पूर्वी भारत में काकनडीधी (बगाल)[14], कोणार्क[15] व भुवनेश्वर (उड़ीसा), तथा दक्षिण में चिदम्बरम (तामिलनाडु)[16] से भी इस प्रकार की प्रतिमायें प्रकाश में आई हैं, जो लगभग बारहवीं-तेहरवीं शती ई० की हैं। किन्तु उनके आयुध भिन्न हैं। उड़ीसा में राहु के बायें व दाहिने हाथों में क्रमशः पुस्तक व चन्द्र दर्शाये गये हैं, जो सम्भवतः विष्णुधर्मोत्तर से प्रभावित हैं। इसी प्रकार केतु के बायें हाथ में दीपक व दाहिने हाथ में खड्ग है, जो स्पष्टतः अग्निपुराण पर आधारित है। लगभग बारहवीं शती ई० में निर्मित चिन्दबरम स्थित राहु एवं केतु की सर्प फण से युक्त आवक्ष युगल प्रतिमायें सम्मिलित रूप से एक कुण्ड के उपर प्रदर्शित हैं।

पंचम चरण (केतु का सर्प स्वरूप)—

विकास के पंचम एवं अंतिम चरण में केतु का अंकन पूर्णरूप से पाँच फण वाले कुण्डली सर्प के रूप में हुआ है । ऐसी एकमात्र प्रतिमा राजकीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संग्रहालय, मथुरा में है।[17] इसमें समस्त ग्रह आसन मुद्रा में चित्रित हैं। सूर्य, राहु एवं केतु के अतिरिक्त शेष सभी ग्रह दाहिने हाथ में कमल व बायें हाथ में कमण्डलु धारण किये हैं। यहाँ केतु को राहु के ठीक ऊपर पाँच फण वाले कुण्डली सर्प के रूप में दर्शाया गया है। इस प्रकार के अन्य उदाहरणों के अभाव में प्रतिमा विज्ञान की दृष्टि से इसे अद्वितीय कहा जा सकता है। मथुरा कला में केतु के क्रमिक विकास को हम संक्षेप में निम्नलिखित ढंग से प्रस्तुत कर सकते हैं :—

चरण	प्रकार	रूप	संग्रहालय	संख्या	काल
प्रथम	मानव	स्त्री	लखनऊ	५८.१३	आठवीं शती ई०
द्वितीय	मानव	पुरुष	मथुरा	३८.२८३६ ८०.२३	दशवीं शती ई०
तृतीय	मानव-सर्प	नागी	मथुरा	५०४.००	नवीं शती ई०
चतुर्थ	मानव-सर्प	नाग	मथुरा	१७.१३५	तेरहवीं शती ई०
पंचम	सर्प	सर्प	मथुरा	७३ २२	बारहवीं शती ई०

इस सन्दर्भ में सिकन्दरा राऊ (अलीगढ़ जनपद) से प्राप्त एक खण्डित शिलापट्ट भी उल्लेखनीय है। लगभग दसवीं शती ई० की यह नवग्रह प्रतिमा संप्रति राजकीय संग्रहालय, मथुरा में सुरक्षित है। प्रतिमा विज्ञान की दृष्टि से से यह प्रतिमा इसलिये महत्वपूर्ण है कि इसमें नवग्रहों का प्रारम्भ कुबेर से दर्शाया गया है। किन्तु आगरा एवं सारनाथ स्थित उदाहरणों में नवग्रहों का प्रारम्भ गणेश से हुआ है। इसके विपरीत महाराष्ट्र में माण्डक नामक स्थान से प्राप्त एक प्रतिमा में गणेश का अंकन नवग्रहों के अन्त में हुआ है।[18] जो सम्भवत: नवग्रह पूजा के शुभ समापन का द्योतक है।

उक्त विवेचन के आधार पर हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं—

१--नवग्रह मूर्तियों में केतु का स्त्री रूप में अंकन सर्वप्रथम मथुरा में लगभग आठवीं शताब्दी ई० में प्रारम्भ हुआ, यह मथुरा कला की ब्राह्मण धर्म को एक महत्वपूर्ण देन है।

२—नवग्रह मूर्तियों के विकास-क्रम में केतु एकमात्र ऐसा ग्रह है जिसका अंकन सबसे अन्त में प्रारम्भ हुआ, किन्तु जिसके स्वरूप में सबसे अधिक परिवर्तन हुये। मानव स्वरूप से प्रारम्भ कर केतु मानव-सर्प स्थिति पार कर अन्त में पूर्ण-रूप से सर्प रूप को प्राप्त हुआ। इससे स्पष्ट है कि केतु की स्थिति में निरन्तर ह्रास होता रहा। अन्य ग्रहों की तुलना में शास्त्रकारों ने राहु की भाँति केतु को हेय दृष्टि से देखा, ज़ो सम्भवत: उनकी अनार्य (नाग) उत्पत्ति के कारण था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उक्त विकासक्रम के बावजूद केतु के पुराने स्वरूप पूर्ण रूप से समाप्त नहीं हुये। उनका प्रचलन बाद में उसके नवीन स्वरूपों के साथ भी होता रहा है।

३—नवग्रह प्रतिमाओं में केतु एवं सर्प का घनिष्ट सम्बन्ध दर्शाया गया है। ब्राह्मण नवग्रह मूर्तियों के अतिरिक्त जैन व बौद्ध धर्म में भी सर्प का अंकन प्राय: केतु के आयुध अथवा वाहन के रूप में हुआ है। दक्षिण भारत में सर्प फण का प्रयोग राहु एवं केतु दोनों के साथ हुआ है। सम्भवत: सर्प, राहु एवं केतु के नाग उत्पत्ति का द्योतक होने के साथ ही भय, कष्ट एवं मृत्यु का भी प्रतीक है। इस प्रकार नवग्रह मूर्तियों में राहु एवं केतु का अंकन आर्य एवं अनार्य (नाग) संस्कृतियों के समन्वय का प्रयास है। विकासक्रम के अन्तिम चरण में केतु का स्वरूप पाँच फण वाला कुण्डली सर्प है, जिसका एकमात्र उदाहरण मथुरा संग्रहालय में उपलब्ध है। प्रतिमा शास्त्रीय दृष्टि से यह अद्वितीय है।

४—नवग्रह मूर्तियों के अंकन में शिल्पियों ने प्राय: क्षेत्रीय आधार पर विभिन्न मूर्तिशास्त्रीय ग्रन्थों का उपयोग किया है। उदाहरणस्वरूप जहाँ एक ओर उत्तर भारत में अपराजित पृच्छा एवं रूपमण्डन का उपयोग हुआ है, वहाँ दूसरी ओर पूर्वी भारत में विष्णु धर्मोत्तर तथा अग्निपुराण का। किन्तु कलाकारों ने मूर्तिशास्त्रीय नियमों का निर्वाह करने के साथ-साथ अपनी कल्पनाशक्ति का भी यथासम्भव प्रयोग किया है।

६—उत्तर भारत में नवग्रह मूर्तियों का प्रारम्भ प्राय: गणेश से होता है, किन्तु राजकीय संग्रहालय, मथुरा में उपलब्ध एकमात्र उदाहरण से नवग्रहों का प्रारम्भ कुबेर से हुआ है।

अन्त में यह उल्लेखनीय है कि उक्त निष्कर्ष सीमित पुरातात्विक साक्ष्यों पर आधारित होने के कारण पूर्णरूप से तदर्थ हैं। वास्तव में इस निबन्ध का उद्देश्य विद्वानों का ध्यान मथुरा की नवग्रह प्रतिमाओं की ओर आकृष्ट करना मात्र है। आशा है विद्वतजन उनके महत्व पर विस्तृत पुरातात्विक एवं साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर नवीन प्रकाश डालेंगे।

सन्दर्भ एवं टिप्पणी :—

१- जे० एन० बनर्जी, द डेवलपमेन्ट आफ हिन्दू आइकनोग्रैफी (नई दिल्ली, १९७४) पृष्ठ ४४४, चित्र ३१.१
२- एन०पी० जोशी, भारत मूर्तिकला (नागपुर, १९७९) पृ० २९९, संग्रहालय सं० ५८.१३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३- रामाश्रय अवस्थी, खजुराहों की देवप्रतिमायें (आगरा, १९६७) पृ० १९४, चित्र ८४, संग्रहालय सं० ६.१८६ एवं १४५५
४- एन०पी० जोशी, मथुरा स्कल्पचर्स (मथुरा, १९६६) पृ० ८७, चित्र ९१, संग्रहालय सं० ३८.२८३६
५- संग्रहालय सं० ८०.२३
६- संग्रहालय सं० ५०४
७- प्रमोद चन्द्र, स्टोन स्कल्पचर इन द अलाहाबाद म्यूजियम (बम्बई, १९७०) पृ० १५२
८- वही, पृ० १३६
९- वही, पृ० १५२
१०- संग्रहालय सं०, एच-९९
११- संग्रहालय सं०, १७.१३५
१२- अवस्थी, पृ० १९४-१९६, चित्र ८३
१३- दयाराम साहनी, कैटलाग म्यूजियम आफ आरक्यालाजी एट सारनाथ (कलकत्ता, १९१४) पृ०३२३
१४- बनर्जी, पृ० ४४५, चित्र २१.१
१५- देबला मित्रा, कोणार्क (नई दिल्ली, १९६१) पृ० २३, चित्र १२ व १३
१६- एच० कृष्णा शास्त्री, साउथ इण्डियन इमेजेज आफ गाडस एण्ड गाडेसेज (मद्रास, १९१६) चित्र १४५
१७- संग्रहालय सं० ७३.२२
१८- जोशी (१९७९) संग्रहालय सं० एन-७४

(मथुरा संग्रहालय के सौजन्य से)

---

* यह लेख भारतीय कला के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में कलात्मक अंकन के मूल्याँकन का प्रयास है, देवपूजा से इसका कोई सम्बन्ध नहीं।

—०—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य शुक्ल और लोकमंगल

डा० राममूर्ति त्रिपाठी
आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
विक्रम विश्वविद्यालय

शुक्लजी का समस्त चिन्तन चाहे परमार्थ चिन्तन हो, व्यवहार चिन्तन हो या काव्य चिन्तन–मानवभाव की लोकमंगल पर्यवसायीचरितार्थता से सम्बद्ध है। इसीलिये वे मानते हैं कि कविता मनुष्य के साथ शेष सृष्टि के प्रकृत रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह करती हैं, इसी में लोकमंगल निहित है। पारम्परिक काव्य चिन्तन भी औसत रूप में 'रस' को ही काव्य की आत्मा मानता है और रसोपयोगी घटकों के संयोजन में ही कवि-कर्म की मुख्यता स्वीकार करता है और स्वीकार करता है कि कविता का सर्जन और ग्रहण समष्टि विरोधी अहत्ता के विसर्जन में सम्भव है । कविता की उद्भववादी भूमि और फलन भूमि–दोनों ही समष्टिचित्त हैं–इसोलिए कविता का आस्वाद "सामाजिक" ही करता है, अ-सामाजिक नहीं। यह सब तभी सम्भव है जब काव्य की सारी सामग्री समाजानुमोदित अर्थात् उचित हो । औचित्य ही रस की परा उपनिषद् है। पारम्परिक काव्य चिन्तन भी मानव-भाव (स्व-भाव) की चरितार्थता पर बल देता है–पर उसकी व्याख्या आत्मवादी दृष्टि से करता है जबकि शुक्लजी भी मानव-भाव पर बल देते हैं–पर व्याख्या बदल देते हैं, व्यक्त जगत के अनुरूप करते हैं। पारम्परिक चिन्तन "स्वभाव को अतिप्राकृत रस या आनन्दमय मानता है जबकि शुक्लजी उसे "परार्थता" "परहित प्रवृत्ति" "लोकहितकारिता" या "इन्सानियत" समझते हैं। इसलिए ऊपर की तमाम बातों में एकरूप रहते हुए "स्वभाव" की व्याखया के भेद के कारण गहरा अन्तर या प्रस्थान पार्थक्य हो जाता है। दोनों की काव्य-दृष्टि, रस विषयक अवधारणा आदि सभी अलग हो जाते हैं। शुक्लजी का काव्य-चिन्तन'लोकमंगल' में ही विसर्जित हो जाता है–पारम्परिक काव्य-चिन्तन "लोकमंगल" को आत्मसात् करता हुआ "आत्ममंगल" में पर्यवसित होता है। पारम्परिक चिन्तन आत्मा से आत्मा की ओर ले जाता है—शुक्लजी का काव्य-चिन्तन आत्मा या अव्यक्त से आरम्भ अवश्य होता है-पर पर्यवसित "व्यक्त–सौन्दर्य" में ही होता है–यह युगचेतना का तकाजा है। इसमें हम उनकी व्यक्तवादिता की परिणति कह सकते हैं-जिसमें दार्शनिक असंगति उभर सकती है । पर यही तो उनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्थान-पार्थक्य है–इसी में तो उनका आचार्यत्व निहित है–वह विवादास्पद बन जाय–यह बात भिन्न है ।

पारम्परिक काव्य चिन्तन और शुक्लसम्मत काव्य-चिन्तन के मूल में निहित "अव्यक्तवादी" और "व्यक्तवादी" जीवन दृष्टि के भेद के कारण अन्तर ही अन्तर उमड़ पड़ते हैं । रस को काव्य की आत्मा दोनों मानते हैं–पर जहाँ पारम्परिक काव्य-चिन्तन उसे अनिवार्यतः आनन्दमय और केवल काव्य तथा नाट्य आदि में ही समर्थित करता है–लोकजीवन की वास्तविक अनुभूति से उसे भिन्न ठहराता है–वहाँ शुक्लजी उसे "आनन्द" का पर्याय नहीं मानते–उसे काव्य और नाट्य से खींचकर लोकजीवन तक व्याप्त मानते हैं और मानते हैं कि रसानुभूति लोकजीवन में भी होती है–उसके लिये कल्पित रूप-विधान हो नहीं, स्मृत और प्रत्यक्ष रूप विधान भी उपादेय हैं । यदि रसानुभूति हृदय की मुक्त दशा है और है–तो वह लोक-जीवन में भी अनुभूत होती है । पारम्परिक काव्य-चिन्तन जहाँ रस के मूल 'भाव' का विचार वासना-वासित-हृदय सुहृदय के पक्ष से पर्यवसित रसात्मक प्रभाव की दृष्टि से करता है वहाँ शुक्लजी विषयबद्ध लौकिक पात्र की ओर से करते हैं । मनोविज्ञान भाव या मनोविकार का लौकिक पात्र में ही विचार करता है–इसलिए जहाँ पारम्परिक काव्य चिन्तन में 'भाव', 'भावन' 'यावासन' का पर्याय है वहाँ शुक्लजी की दृष्टि में मनोविज्ञान के अनुसार प्रत्ययबोध अनुभूति और वे युक्त प्रवृत्तिका संश्लिष्ट रूप है । इसीलिए जहाँ एकत्र रसानुभूति संविद् "विश्रान्ति" है वहीं अन्यत्र लोकमंगलोपयोगी कर्म में "प्रवृत्ति" है–एकत्र रस साध्य है–अन्यत्र माध्यम है । शुक्लसमस्त रस दशा और कुछ नहीं हृदय की उदात्त, अवदात या सात्विक दशा ही है–जिसे हम इन्सानियत कह सकते हैं । एकत्र अनिवार्यतः रस आनन्दमय है जबकि अन्यत्र सुख-दुःखोभयात्मक–फिर भी रसात्मक इसलिए कि मुक्त हृदय से अनूभूत होने के कारणबद्ध हृदय की अनुभूति की अपेक्षा अनुद्वेजक या अ-विक्षोभकारी होता है । पारम्परिक काव्य-चिन्तन में आत्मपाद की भूमिका गृहीत है–इसलिए यहाँ रस अखण्ड और कोटिविहीन होता है जबकि शुक्लजी की रसानुभूति उत्तम और मध्यम कोटि की होती है और यदि चामत्कारिक उक्ति को भी काव्य कहें–तब तो तीन कोटियों की होगी–उत्तम और मध्यम के साथ निकृष्ट भी । शुक्लजी रस की उत्तम स्थिति वहीं मानते हैं जहाँ आश्रय, ग्राहक और कवि तीनों का तादात्म्य हो और मध्यम वहाँ, जहाँ आश्रय से ग्राहक तटस्थ रह कर अतिरिक्त भावात्मक प्रतिक्रिया दे । पहली परितुष्ट भूमि है–दूसरी अपरितुष्ट । इसीलिए शुक्लजी पारम्परिक काव्य-चिन्तन से हटकर भाव और स्थायीभाव का लक्षण भिन्न कर लेते हैं–भाव के लिये आलम्बन का निर्दिष्ट होना आवश्यक है–पारम्परिक काव्य-चिन्तन में 'उत्साह' पर यह लक्षण घटित नहीं होता–फिर भी उसे रस-पारिपाक की दृष्टि से भाव ही नहीं "स्थायीभाव"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक कहा गया है। शुक्लजी की दृष्टि में स्थायी होने की सम्भावना उसी भाव में होती है–जिसमें आश्रय के साथ ग्राहक का तादात्म्य हो-साथ ही अवसर-विशेष पर जिसके आधिपत्य में अन्य भाव भी अनुकूल होकर संचरित हो रहे हों। एक स्थायी-भाव और है–जिसे भावपद्धति या भावकोश कहना चाहिये। यह मानव हृदय में काफी लम्बे समय के लिये स्थिर हो जाता है–जैसे रति की स्थिरता "प्रीति" में और क्रोध की 'बैर' में परिणत हो जाती है–इसीलिये इनका साथ-साथ उल्लेख होता है।

रसानुभूति के लिये दो शर्तें हैं–व्यक्तित्व का विलयन और सामग्री का साधारण्य। पारम्परिक चिन्तन में जहाँ साधारणीकरण विभावादि के साथ प्रमाता का भी होता है वहाँ शुक्लजी व्यक्तवादी होने के कारण विभाव और उसमें आलम्बन पर ही बल देते हैं। उनकी दृष्टि में कवि की कल्पना-शक्ति आलम्बन में ऐसी सामान्य विशेषताओं को–जब सहृदय पात्र में समान भावात्मक प्रभाव पैदा कर सके–अर्थात् जहाँ परम्परा स्पष्ट ही विभावादि के मध्य आलम्बन व्यक्ति के साधारणीकरण की बात करती है–वहाँ शुक्लजी आलम्बन को तो विशेष या व्यक्ति ही रहने देते हैं–पर उसमें निहित विशेषताओं–अर्थात् आलम्बनत्व धर्म का साधारणीकरण या सामान्यीकरण स्वीकार करते हैं। निष्कर्ष यह कि 'मानव-स्वभाव' को परिकल्पना भेद से 'रस' की अवधारणा भिन्न हो जाती है और प्रस्थान पार्थक्य स्पष्ट उभर आता है। लोकमगल पर्यवसायी मानव स्वभाव की युगानुरूप अवधारणा 'रस' की अवधारणा में भेद पैदा करती है। इसीलिए परम्परा से हटकर शुक्लजी काव्य लक्ष्य 'आनन्द' 'सौन्दर्य' या 'चमत्कार'—तीनों नहीं मानते उन्हें इनमें विकृतिग्रस्त होने की सम्भावना दिखाई देती है। जो व्यक्ति यह मानता है कि कविता मानवभाव को रक्षा और निर्वाह करती है अथवा मानव के साथ शेष जगत् के प्रकृत रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा करती है–अथवा भावसंचार करके दूसरों के सुख-दुःख से सुखी और दुःखी करके हृदय का परिष्कार करती है–वह विलास की ओर घसीट ले जाने वाले 'आनन्द' के साथ क्यों मुँह मिलाएगा? कला की पच्चीकारी से जुड़ने वाले "सौन्दर्य" के साथ काव्य का सम्बन्ध कैसे मानेगा? उसकी आँखों में तो लोकमंगल झूठा रहा है–फलतः उसकी रस सम्बन्धी परिकल्पना कुछ और ही होगी–जो मानवता या हृदय की उदात्त दशा के ही रूप में रेखाँकित होगी।

शुक्लजी का समस्त चिन्तन लोकमंगल केन्द्रित है–अतः काव्यचिन्तन भी उसी से जुड़ा हुआ है। यही कारण है कि उन्होंने काव्य की आत्मा 'रस' की व्याख्या उसी के मेल में की। इनके अनुसार काव्य अभिव्यक्ति है–अतः उसका सम्बन्ध "अव्यक्त" से हो ही नहीं सकता–"व्यक्त" से ही होगा—वह बाहर का हो या आभ्यन्तर का। व्यक्त जगत् की अभिव्यक्ति तो कविता या काव्य है ही—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आभ्यन्तर की ओर मुड़ें तो वहाँ भी उसका सम्बन्ध "अव्यक्त राग-द्वेषमयी **वासना** से नहीं, अपितु उनके **व्यक्त** रूप–प्रेम-करुणा तथा क्रोध भाव से है।

यों चाहे **व्यक्त** जगत हो या **अभिव्यक्ति**–कविता दोनों को किसी न किसी प्रकार वे मूल सत्ता से सम्बद्ध अवश्य करते हैं। उन्होंने कहा ही है कि व्यक्त जगत् में साधना के सर्वोच्च रूप--**भक्ति और काव्य**–दोनों सच्चिदानन्दमय मूल सत्ता के "आनन्द" पक्ष से जुड़ते हैं--पर कठिनाई यह है कि अभिव्यक्ति या विकास के क्षेत्र में इसका आभास निरन्तर नहीं रहता--उसका आविर्भाव और तिरोभाव होता रहता है। आविर्भाव में तो "सौन्दर्य" और "आनन्द" होता ही है--तिरोभाव काल में आवरण असत् को हटाने में जो व्यापार होता है--वह भी "सुन्दर" और प्रशस्त माना जाता है। सच्चा कवि और भक्त--दोनों रूपों पर मुग्ध होता है और दोनों रूपों का गान करता है--एक में "भक्ति रस" होता है और दूसरे में "काव्य-रस"। दोनों के आस्वाद की प्रक्रिया एक ही है--उभयत्र अर्थ का ज्ञान, ज्ञात का भावन या कल्पना से बिम्बन और बिम्ब से भाव का संचार या आस्वाद। भाव का संचार ज्ञात की ही सीमा में होता है--अतः भारतीय पद्धति में अज्ञात के प्रति लालसा या अभिलाषा का प्रश्न ही नहीं उठता--हाँ जिज्ञासा हो सकती है।

"आनन्द" के आविर्भाव और तिरोभाव के कारण काव्य दो प्रकार के हो जाते हैं—

(१) प्रयत्न-पक्षीय सौन्दर्य की अभिव्यक्ति

(२) आनन्द की सिद्धावस्था की अभिव्यक्ति

उत्तम वह है--जहाँ दोनों का समन्वय या सामंजस्य हो। आवरण या असत् की वृद्धि होने पर आनन्द-ज्योति ही शक्तिमय होकर विशिष्ट विभूति के माध्यम से भीषण रूप ग्रहण करती है और उसे ध्वस्त कर आत्मप्रकाश करती है--लोकमंगल या लोकरंजन के रूप में परिणत होती है। सच्चा कवि या भक्त उसके इसी रूप पर रीझता है और स्वयं भींग कर दूसरों को भी भिगोता है। शुक्लजी का कवि (वाल्मीकि, व्यास और तुलसी) भी भक्त ही है–कारण, दोनों जिस सौन्दर्य से भीगते हैं—वह यही प्रयत्नावस्था या सिद्धावस्था से सम्बद्ध होता है। जिस विशिष्ट विभूति के माध्यम से विशिष्ट कर्म सौन्दर्य सम्पादित किया जाता है–वह जिसके हृदय को आकृष्ट करेगा—उसका हृदय भी तो लोक-मंगलकारी के कर्म सौन्दर्य और समंजस रूप सौन्दर्य पर रीझने वाला हो। बात यह है कि भक्ति का घटक है श्रद्धा और श्रद्धा के लिये अपेक्षित हैं दो तत्व—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) समष्टि रूप से लोक-लक्ष्य का बोध तथा तदनुरूप सामान्य आदर्शों का वोध, और

(२) कृतज्ञता का भाव ।

ये दो तत्व जिस हृदय में होंगे-वहों श्रद्धा होगी और श्रद्धा ही श्रद्धेय-लोकमंगलोपयोगी असामान्य गुणसम्पन्न व्यक्ति की ओर मुड़ेगी । श्रद्धावान् आनन्दमग्न होकर-यदि कवित्व शक्ति सम्पन्न है- तो श्रद्धाभारित हृदय को काव्यात्मक अभिव्यक्ति दे सकता है-और एक सोपान और आगे का हो--तो भक्ति (श्रद्धा + प्रेम) भारित हृदय को । दोनों काव्य ही हैं-एक सामान्य किन्तु रसात्मक काव्य-इन्सानियत से आपूरित और दूसरा भक्ति काव्य । दोनों के आलम्बन और रूप सौन्दर्य तथा कर्म सौन्दर्य व्यक्त जगत् का है और उससे पैदा होने वाली पूज्यत्व बुद्धि और आनन्द संचार मनोमय कोश की-फलतः रहस्यमयता कहीं है ही नहीं ।

"यह सूधो सनेह को मारग है जहां नेक सयानय बांक नहीं ।"

कहने का आशय यह कि मूलभूत आनन्दमयी ज्योति के लोकमंगल रूप में आत्मप्रसार का जो प्रयत्नपक्षीय और सिद्धिपक्षीय स्वरूप है-उस पर रीझने वालाहृदय-कवि-हृदय है । इस हृदय में जो लोकमंगल-विधायी संस्कार या सम्भावना विश्वात्मा की इच्छा ने भर दी है-कवि हृदय इसे चरितार्थ करने में ही तुष्टि अनुभव करता है और सुहृदय ग्राहकों को भी उसी भूमिका पर उठा ले जाता है ।

शुक्लजी लिखते हैं—"काव्य-दृष्टि से जब हम जगत् को देखते हैं-तभी, जीवन का स्वरूप और सौन्दर्य प्रत्यक्ष होता है । इस दृष्टि का उन्मेष व्यक्तिगत सम्बन्ध के संकुचित मण्डल से ऊपर लोक-सामान्य भावभूमि पर आरूढ़ होने पर होता है-जहाँ जगत् के नाना रूपों और व्यापारों के साथ मनुष्य के प्रकृत संबंध का सौन्दर्य दिखाई पड़ता है । इस सौन्दर्य के अभ्यास से हमारे मनोविकारों का परिष्कार और जगत् के साथ हमारे सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है ।" मतलब आनन्द ज्योति के आत्मप्रकाश के निमित्त होने वाले प्रयत्न और तज्जन्य सिद्धि में स्फुरित सौन्दर्य सुहृदय को काव्य-दृष्टि देता है और काव्य-दृष्टि हो तो यह सौन्दर्य लक्षित होता है ।

इस सन्दर्भ में दो बातें शुक्लजी और कहते हैं—पहली यह कि हमारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदय की न जाने यह कौन-सी रहस्यमय वृत्ति है जो तमोविदारक परमविभूति में बहिरंतर के सामंजस्य में ही सौन्दर्य देखना चाहती है । इसीलिए हमारे अवतार अपनी आकृति में भी और अपने हृदय-वृत्ति में भी-चरम सुन्दर चित्रित हुए हैं-उनके रूप में भी सौन्दर्य है और व्यापार में भी आकर्षण । इसीलिए यहाँ प्रसिद्धि है-"यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति" राक्षसों में इसका वैपरीत्य है । इसी के साथ आचार्य शुक्ल यह भी कहते हैं कि प्रयत्न में भी विरुद्धों का सामजस्य ही सौन्दर्यमय होता है । प्रयत्न में करुणा का ही प्रेरकत्व एकांगी है-करुणा के साथ क्रोध का सामंजस्य ही परिपूर्ण सुन्दरता प्रदान करता है । रावण के दमन में लोक पर करुणा और उसे चरितार्थता प्रदान करने वाले रावण विषयक क्रोध-जब तक दोनों भाव कर्म-व्यापार के प्रेरक नहीं होते-तब तक उसमें पूर्ण सौन्दर्य का दर्शन नहीं होता । बाल्मीकि के शाप को करुणा और क्रोध का ही सामंजस्य अपूर्व सौन्दर्य प्रदान करता है । लोकमंगल के सन्दर्भ में यही "सौन्दर्य" कवि हृदय और भक्त हृदय को आकृष्ट करता है-"आनन्द" मग्न करता है-काव्य में यदि "सौन्दर्य" और "आनन्द" को लेना है-तो इसी आशय से लेना चाहिये-अन्यथा उनमें अतियों और विकृतियों के आने की सम्भावना है ।

लोकमंगल के सन्दर्भ में 'भाव' पर विचार करने के कारण 'संचारी' और 'स्थायी' से आगे बढ़कर आचार्य शुक्ल ने 'बीजभाव' की बात की है । उनका कहना है—'भाव की प्रक्रिया की समीक्षा से पता चलता है कि उदय से अस्त तक भावमण्डल का कुछ भाग तो आश्रय की चेतना के प्रकाश (कांशस) में रहता है और कुछ अंतःसंज्ञा के क्षेत्र (सब-कांशस रीजन) में छिपा रहता है । संचारी भावों के संचरण काल में कभी-कभी उनके स्थायी भाव कारण रूप में अंतःसंज्ञा के भीतर पड़ जाते हैं । जिस प्रकार किसी आश्रय के भीतर कोई एक भाव स्थायी रहता है और अनेक भाव तथा अंतर्दशाएँ उसके संचारी के रूप में आती हैं उसी प्रकार किसी प्रबन्ध काव्य के प्रधान पात्र कोई **मूलप्रेरक भाव** या **बीजभाव** रहता है-जिसकी प्रेरणा से घटनाचक्र चलता है और अनेक भावों के प्रस्फुटन के लिए जगह निकलती चलती है । इस **बीजभाव** को साहित्यग्रन्थों में निरुपित स्थायी भाव और अंगीभाव—दोनों से भिन्न समझना चाहिए । बीजभाव निरुपण के बाद 'लोकमंगल' से जोड़ते हुए आगे वे कहते हैं—'बीजभाव द्वारा स्फुरित भावों में कोमल और मधुर, कठोर और तीक्ष्ण-दोनों प्रकार के भाव रहते हैं । यदि बीजभाव की प्रकृति 'मंगल-विधायिनी' होती है तो उसकी व्यापकता और निर्विशेषता के अनुसार सारे प्रेरित भाव तीक्षण और कठोर होने पर भी सुन्दर होते हैं । भावों को छानबीन करने पर मंगल का विधान करने वाले दो ही भाव ठहरते हैं—करुणा और प्रेम । करुणा की गति रक्षा की ओर होती है और प्रेम की रंजन की ओर । लोक में प्रथम साध्य रक्षा है-रंजन का अवसर उसके पीछे आता है । अतः साधनावस्था या प्रयत्न पक्ष को लेकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलने वाले काव्यों का बीजभाव करुणा ही ठहरता है। और सिद्धावस्था या आन्तर-पक्ष को लेकर चलने वाले काव्यों का बीजभाव—प्रेम। काव्य का उत्कर्ष केवल प्रेम भाव की कोमल व्यंजना ही में नहीं माना जा सकता-जैसा कि टालस्टाय के अनुयायी मानते हैं। वे इस साधुवृत्ति को आध्यात्मिक शक्ति मानते हैं। यह वस्तुतः सात्विक वृत्ति है-जो प्रकृति का सर्वोच्च गुण है-इस विदेशी अर्थ में 'अध्यात्म' शब्द का काव्य-कला के क्षेत्र में कोई अर्थ नहीं है। सात्विक वृत्ति को काव्य का उत्कर्षाधायक तत्व शुक्लजी भी मानते हैं-पर दोनों रूपों में-अन्तः-संज्ञा में स्थित अव्यक्त बीज रूप में भी और प्रकाश रूप में भी । उच्च दशा का प्रेम और करुणा दोनों ही सत्वगुण प्रधान हैं—इनके वक्षस् पर जब कठोर वृत्तियाँ आती हैं-तब वे भी मंगल विधायनी हो जाती हैं-क्योंकि वे सात्विक के शासन में हैं। व्यक्त जगत् की तह में ताने-बाने की तरह विद्यमान सत्व, रजस् तथा तमस् अथवा सत् और असत् सतत बने रहने वाले हैं-उनमें से किसी के विनाश की तो सम्भावना नहीं है-अतः लोकमंगल दोनों के सामंजस्य में ही होगा-उसका अर्थ यही होगा कि सत्व का प्राधान्य हो जाए और रजस्-तसस् उसके निर्देशन में चलें ।

एक बात और। वासना के रूप में दो ही वृत्तियाँ अव्यक्त रूप से हृदय में पड़ी रहती हैं-राग और प्रेम। पहली मिलाती है और दूसरी अलगाती है। रासायनिक मूल द्रव्यों के राग से ही सृष्टि का विकास होता है । रागमयी बासना का ही व्यक्त रूप है-प्रेम और करुणा। काव्य अभिव्यक्ति है अतः उसका सम्बन्ध अव्यक्त राग से नहीं, व्यक्त प्रेम और करुणा से है। ये ही व्यापक और निर्विशेष होकर सात्विक होते हैं और उन्हीं के प्रभाव में जब उग्र वृत्तियाँ आवरण हटाती हैं-तब पूर्ण सौन्दर्य का प्रकाश होता है।

शुक्लजी ने बीजभाव को स्थायी और अंगी-दोनों से भिन्न कहा है और पारम्परिक काव्य-चिन्तन में उसका अभाव कहते हुए भी पारम्परिक काव्यों को उदाहरण रूप में रखा है। रक्षाभाव को प्राथमिकता देने वाले रामकाव्य के निर्माता भवभूति के सम्बन्ध में प्रसिद्ध उक्ति "एको रसः करुण एव" में उन्हें करुणा बीजभाव का समर्थन मिलता है और रंजन को प्रामुख्य देने वाले वल्लभ द्वारा प्रतिपादित प्रेम की साध्यता में प्रेम बीजभाव का । अथवा शृंगार को रसराज या 'शृंगार एव रसनाद् रसयामनन्ति' जैसी उक्ति से भी उक्त तथ्य की संपुष्टि की जा सकती है। अभिनव गुप्त ने "अभिनव भारती" में एकमात्र भाव के नाम पर "राग" को ही माना है और बताया है कि एक ही राग निमित्त भेद से अन्य भावों में बदल जाता है। शुक्लजी 'राग' के 'प्रेम' वाले रूप से 'करुणा' वाले रूप को ज्यादा महत्वपूर्ण और व्यापक मानते हैं। शुक्लजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न तो एकान्ततः 'करुणा' के पक्षधर हैं और न ही 'शृंगार या 'प्रेम' के । वे तो अनुभूति द्वन्द्व-सुख तथा दुःख से विकास मानते हैं। हाँ, यह अवश्य है कि सुख को वे आत्मपरक ज्यादा मानते हैं और करुणा को लोकपरक । व्यक्ति के करुणा में जितना आत्मविस्तार होता है-प्रेम में नहीं । वे मानते हैं-व्यक्त जगत् में दोनों की स्थिति-पर यह भी खुलकर कहते हैं कि—करुणा में जो सार्वभौमि स्थिति है-वह आनन्दवादी धारणा में नहीं। पर स्मरणीय है कि यह मान्यता उनको व्यक्तवादिता का परिणाम है--व्यक्त जगत् में ही मानव प्रकृतिगत लोकमंगल विधायिनी सम्भावना की पूर्ण चरितार्थता मानने के कारण हैं ।

—०—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बसै बुराई जासु तन"

डा० विजयपाल शास्त्री
प्रवक्ता, दर्शन-विभाग
गुरुकुल कांगड़ी, विश्वविद्यालय

आज से बहुत वर्ष पहले जीवन की अपरिपक्व आयु में एक पद्य पढ़ा था—

बसै बुराई जासु तन ताही को सन्मान ।
भलो भलो कह छाँड़िये, खोटे ग्रह जपदान ।।

बालमतित्वबश इसकी अन्यर्थता उस समय ज्ञात नहीं थो । 'जहाँ सुमति तहं सम्पति नाना' के संस्कार बद्धमूल थे । अतः सोच लिया था कि शायद कवि उस समय हास्य के मूड में होगा या राजा के दरबार में किसी दुष्ट चापलूस की उन्नति देख कर मन खट्टा हो गया होगा इसीलिये यह पद्य मुँह से निकल गया होगा । कभी-कभी कवि-जन अपने निरंकुश स्वभाव के कारण निर्दोष को भी चपत लगा जाते हैं । जैसे डा० हजारीप्रसाद के शब्दों में कवि-वर रहीम ने सेहुंड और करीर के साथ कुटज को भी एक चपत लगा दी । जैसे-

अब रहीम वे बिरछ कँह
जिन कर छाँह गँभोर ।
बागन बिच बिच देखियत
सेहुंड कुटज करीर ।।

लेकिन ऐसा सोचना तब था । अब विचार बदल गये हैं । अब उपरि-लिखित पद्य की सार्थकता अनुभूत होने लगी है । सोचता हूँ वह कवि कितना अनुभवी होगा जिसने इस तथ्य को संसार की चिन्ता न करते हुए और शास्त्रों के धर्मवचनों की अवहेलना का भी भय न मानते हुए, डंके की चोट पर कह गया कि संसार में दुष्ट का सम्मान होता है । सीधे और सादे, धर्मपरायण तथा कर्तव्यनिष्ठ लोगों का यहाँ धरती पर सम्मान नहीं होता । उनका सम्मान किसी और लोक में होता हो तो ज्ञात नहीं ।

सज्जनता और संसार की अनुकूलता सचमुच साथ-साथ नहीं चल सकते । आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले रहीम कह गये हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब रहीम मुश्किल पड़ी गाढ़े दोऊ काम ।
साँचे से तो जग नहीं झूँठे मिलै न राम ॥

ये विचार कवि के चिरकाल के चिन्तन-मन्थन से प्रसूत प्रतीत होते हैं। कविवर रहीम राजा के आश्रय में पलने वाली खलमण्डली के बीच रहते थे। ऐसे में अपना दामन बचाने में सचमुच कवि ने स्वयं को असमर्थ महसूस किया होगा। सत्य बोलने से जीविका छिनती थी और ठकुरसुहाती असत्य वाणी बोलने में परलोक बिगड़ता था। ऐसी विविध विषम परिस्थिति में विवेक की परीक्षा होती है। ऐसे संकटकाल में ही नीतिशास्त्र के सिद्धान्तों का निर्माण होता है। अब आप ही बताइये कि एक सीधा-सच्चा व्यक्ति क्या करे? एक नीति-शास्त्री कहता है—नात्यन्तं सरलै—र्भाव्यम्—अर्थात् बहुत सरल नहीं होना चाहिये। क्योंकि सीधे-सीधे पेड़ ही काटे जाते हैं। तिरछे पेड़ बड़े आनन्द के साथ झूमते रहते हैं। एक अन्य विचारक की मान्यता है—

जानन्नपि हि मेधावी ।
जड वल्लोक आचरेत् ॥

अर्थात् सब कुछ जानकर भी इस लोक में स्वयं को मूर्ख के समान प्रकट करना चाहिये। इसी में कल्याण है। यह जानते हुए भी कि यह व्यक्ति गुण्डा है, झूठा है, वंचक है, मिथ्या प्रेम प्रकट कर रहा है, फिर भी चुप ही रहना चाहिये। यह सोच लेना चाहिये कि हिंसक स्वयं अपने कर्मों से ही विनष्ट हो जायेगा। बुरे को बुरा कहने में हानि हो सकती है। सत्पुरुष को चाहे सत्पुरुष न कहो, भले ही उसे प्रणाम न करो, भले ही उसके मुख पर अपशब्द कह दो, तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ेगा। किन्तु दुष्ट को दुष्ट कहोगे तो मार खाओगे। इसीलिये—"दुर्जनं प्रथमं वन्दे सज्जनं तदनन्तरम्" इस नीति का निर्धारण करना पड़ा। यह सत्पुरुषों की चाहे विवशता कहो या करामात कहो या उनकी समझदारी कहो कि वे वंचक की वंचकता को जानते हुए भी उसका प्रतिवाद नहीं कर पाते। ऐसी ही मनःस्थिति में शायद कवि के मुख से यह वाक्य निकला होगा :

यद् वंचना हितमति र्बहु चाटुगर्भं
कार्योन्मुखः खल जनः कृतकं ब्रवीति ।
त त्साधवो न न विदन्ति विदन्ति किन्तु
कर्तुं वृथा प्रणयमस्य न पारयन्ति ॥

अर्थात् एक वंचनापूर्ण दुष्ट पुरुष अपना कार्य सिद्ध करने के लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चापलूसी से पूर्ण बनावटी वचन बोलता है। सत्पुरुष उसकी इस वंचना को न समझते हों, ऐसी बात नहीं। समझते तो हैं। किन्तु उसके मिथ्या प्रेम को भी ठुकराने में समर्थ नहीं हो पाते।

यहाँ पर प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इस सदाचार और सन्मार्ग पर प्रत्येक परिस्थिति में सदा सर्वथा आरूढ़ रहा जाये या किसी कारणवश समयानुसार उस मार्ग से हटकर बुराई को बुराई से काटा जाये। नीतिशास्त्र के बहुविध न्यायों से तो मतिभ्रम होता है। यह एक ऐसा प्रश्न है जिसने महान् कवियों, शास्त्रकारों और चिन्तकों को भी उलझन में डाल रखा है—किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः। जो पर्वतसम दृढ़वादी हैं वे तो 'न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः' की उक्ति के अनुसार प्रत्येक स्थिति में सन्मार्ग पर ही चलते हैं। कुछ लोगों ने खलों की खलता से हार मानकर उनसे समझौता कर लिया है। महाकवि वाण भट्ट भी दुष्टों से भय मानते हैं। उन्होंने कहा—

अकारणा विष्कृत वैर दारुणा—
दसज्जनात् कस्य भयं न जायते।
विषं महाहेरिव यस्य दुर्वचः
सुदुस्सहं सन्निहितं सदा मुखे॥

जो बिना कारण ही वैर करे, भला उससे किसको भय नहीं होता है। दुर्जन के मुख में दुर्वचन रूपी विष सदैव विद्यमान रहता है।

कुछ दूरदर्शी लोग दुर्जनों से प्रेम न करने का उपदेश देते हैं तो दूसरी ओर उनसे वैर न करने की भी सलाह देते हैं :

दुर्जनेन समं वैरं प्रीतिं चापि न चाचरेत्।
उष्णोदहति चाङ्गारः शीतः कृष्णायते करम्॥

खल की यह पहचान है कि वह दूसरों के दोष ही देखता है,अपने दोषों को नहीं देखता है। सत्पुरुष दूसरों के छोटे से गुण को भी पर्वतीकृत्य देखता है। दोषदृष्टा खलों से सम्पर्क न किया जाये, ऐसा कुछ लोग कहते हैं तो कुछ 'निन्दक नियरै राखिये आँगन कुटी छवाय' की उक्ति से अनुसार उनसे परहेज नहीं करते।

उपर्युक्त उपदेश-प्रपञ्च से यदि निष्कर्ष निकालें तो एक सार्वकालिक और सार्वत्रिक तथ्य यही सामने आता है कि खलों का महत्व प्रत्येक युग और प्रत्येक देश में रहा है। खलों का सम्मान कुछ लोग स्वेच्छा से और कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनिच्छा से करते ही हैं। इस तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता। धार्मिकों का धर्म इनके सामने डिग जाता है। सत्यवादियों का सत्य इनके सामने मुख से बाहर आने का साहस नहीं करता। लक्ष्मी इनकी पूजा करती है। विद्यावान् लोग इनके सामने मूक हो जाते हैं। ये चाहें तो हवा का रुख भी मोड़ दें, ये चाहें तो समय की धारा को बदल दें। समाज में ये सीना तान कर चलते हैं। राजनीति में इनकी वन्दना होती है। साहित्य इनकी महिमा से भरे पड़े हैं। किसी आफिस में आपका काम नहीं होता, तो इनकी सेवाएँ प्राप्त कीजिए। कहीं सर्विस में आपकी नियुक्ति नहीं होती तो इनके चरणों में जाइये, ये सब काम कुछ ही क्षणों में करा देंगे। आपका आफिसर आपको परेशान करता है तो इनका एक ही इशारा पर्याप्त है। आप चुनाव जीतना चाहते हैं तो आपको कुछ करने की आवश्यकता नहीं है, खलमण्डली को साथ रखिये, आप चुनाव जीत जायेंगे। आप प्राध्यापक हैं और अध्यापन की योग्यता आपमें नहीं है तो आपको घबराने की आवश्यकता नहीं है कोई भी आपका बाल बाँका नहीं कर सकता। बस इन भद्र लोगों को साथ रखिये।

इनकी महिमा का कहाँ तक वर्णन करें। घरों में ताला लगाना इन्होंने सिखाया। धर्म में प्रीति इनकी वजह से है। लोगों को सावधान रहने की आदत इन्हीं के कारण पड़ी है। वाणी पर संयम रखना इन्होंने सिखाया। सत्पुरुषों को उनके समक्ष आप भले ही भला न कहें, दुष्टों को तो आप भला कहकर ही पिण्ड छुड़ा सकते हैं। यह सुवचन की आदत भी इन्हीं की वजह से पड़ी है। हर जगह इनका वजूद है। हर जगह इनका सम्मान है। सज्जनों को कोई जानता भी नहीं। अपराध न करके भी सत्पुरुष बिलों में छुपे रहते हैं। धन्य है इन खलों का साहस कि अपराध करके भी खुले आम दनदनाते फिरते हैं। पुलिस इन्सपेक्टर इनके आते ही कुर्सी छोड़कर खड़ा हो जाता है। धन्य है इनकी महिमा। द्वापर में मैथिलीशरण गुप्त ने इस तथ्य को स्वीकार किया है--

अटल एक ही न्याय जगत् में
वह है मत्स्य न्याय।
और एक ही असमर्थों का
है बस मरण उपाय॥

मैंने देखा है कि जिस प्रकार भय के बिना प्रीति नहीं होती, उसी प्रकार उद्दण्डता एवं उच्छृंखलता के बिना भी सम्मान नहीं मिलता। श्वसुर-मन्दिर में वक्र-जामाता का ही अधिक सम्मान होता है। मित्र-मण्डली में खल ही बोस कहलाता है। दुष्ट ग्रहों की शान्ति के लिये ही पूजा पाठ किया जाता है। शुभ ग्रहों में ईश्वर का कोई नाम नहीं लेता। ऐसी वस्तुस्थिति में "बसै बुराई जासु तन ताही को सन्मान" कवि की इस उक्ति को शतशः सत्य कैसे न स्वीकार करूँ।

—०—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव-जीवन के लिये घातक

रासायनिक युद्धकर्मक

डा० ए० के० इन्द्रायन
रीडर, रसायन विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

क्या कभी हमने सोचा है कि बमों व गोलों से लड़े जाने वाले युद्ध के अतिरिक्त रसायनों से लड़ा जाने वाला युद्ध कितना घातक है?आधुनिक काल में, विशेषतया पिछले कुछ वर्षों से रासायनिक युद्ध चर्चा का विषय बना हुआ है। इसके कुप्रभाव को देखते हुए, इस पर पूरी तरह से रोक लगाने के लिए विभिन्न राष्ट्र समय-समय पर अपील करते रहे हैं। आखिर यह रासायनिक युद्ध है क्या ? रसायनों के द्वारा लड़ा जाने वाला युद्ध जिसमें हथियारों आदि के बिना ही दुश्मन-सेना को हानि पहुँचायी जा सके, रासायनिक युद्ध कहलाता है। हथियारों की लड़ाई में व्यक्ति मारा जाता है जबकि रसायनों की लड़ाई में व्यक्ति जीवनपर्यन्त विभिन्न प्रकार की गंभीर यातनाओं से पीड़ित रहता है। विएतनाम में कितने ही व्यक्ति रसायनों के दुष्प्रभाव से आज भी पीड़ित हैं। कहा जाता है कि अमेरिका, रूस व फ्राँस के पास इस प्रकार के युद्धकर्मकों का विशाल भण्डार है।

आधुनिक काल में इस प्रकार की युद्ध पद्धति का प्रयोग प्रथम विश्व युद्ध में उस समय आरम्भ हुआ जब विपक्षी सेनाओं ने अपनी सुरक्षा हेतु खाइयाँ खोदकर उनमें छिप जाने का तरीका अपनाना आरम्भ कर दिया। इस तरीके से युद्ध विराम न होते हुए भी युद्ध विराम की सी स्थिति बन जाती थी। प्रचलित गोले व बम शत्रु सैनिकों को खाइयों से निकालने में समर्थ नहीं हो पाते थे। ऐसे समय में किसी ऐसे पदार्थ की आवश्यकता महसूस होना स्वाभाविक ही था जो दुश्मन के सैनिकों को खाइयों से निकालकर भगा सके। ऐसे पदार्थों की खोज करके उन्हें सर्वप्रथम २२ अप्रैल, १९१५ को प्रयुक्त करने का श्रेय जर्मनी को जाता है। इस दिन जर्मन सेनाओं ने खाइयों में छिपे फ्राँस के सैनिकों को बाहर निकालने के लिये क्लोरीन गैस के सिलिंडर खोल दिए थे। इन सिलिंडरों से निकलने वाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहरीली क्लोरीन गैस को फ्रेंच सैनिकों तक पहुँचाने के लिये वायु के बहने की दिशा का उपयोग किया गया था। जैसा कि अनुमान था, इससे फ्रेंच सेना में भगदड़ मच गयी थी। किन्तु फ्राँस भी इस बारे में बहुत पीछे नहीं रहा, शीघ्र उसने भी जर्मन सेनाओं के ठिकानों पर विषैली गैस फॉसजीन से भरे गोलों की बौछार करके बदला लेना आरम्भ कर दिया था। बस, यहीं से अधिकाधिक घातक रासायनिक पदार्थों की खोज निकालने की जो होड़ आरम्भ हुई वह आज भी पूरे तौर पर जारी है।

शत्रु सेनाओं पर बौछार किए जाने वाले इन रासायनिक पदार्थों की विस्तृत जानकारी यद्यपि अभी भी बहुत कुछ रहस्य से घिरी हुई है, फिर भी शरीर पर होने वाले प्रभावों की दृष्टि से उन्हें पाँच वर्गों में बाँटा जा सकता है :

१—ऐसे पदार्थ जो फेफड़ों को संदुषित करते हैं तथा उनमें शोथ अर्थात् पल्मोनरी ईडिमा उत्पन्न करते हैं।

२—आँखों को प्रभावित करके अश्रु लाने वाले पदार्थ अर्थात् अश्रुकारी।

३—त्वचा पर फफोले डालने वाले पदार्थ अर्थात् फफोलाकारी एवं ऊतनाशक।

४—श्वश्नेन्द्रियों को प्रकोपित कर छींक व वमन की स्थिति उत्पन्न करने वाले पदार्थ अर्थात् छिक्कायक।

५—तंत्रिका तंत्र को प्रकोपित कर पक्षाघात की स्थिति उत्पन्न करने वाले पदार्थ अर्थात् तंत्रिका कर्मक (नर्व एजेन्ट्स)।

इनमें सबसे अधिक घातक तंत्रिका कर्मक है। तंत्रिका कर्मक अत्यन्त विषैले रासायनिक पदार्थ होते हैं। इनका विकास मुख्य रूप से द्वितीय विश्व-युद्ध काल में जर्मनी द्वारा किया गया था। ये रसायन माँसपेशियों को नियंत्रित करने वाली तंत्रिकाओं के कार्यों में बाधा उत्पन्न करते हैं। इनमें सामान्य वस्त्रों के प्रति बेधन क्षमता होती है तथा उन्हें बेधकर ये सीधे त्वचा में प्रविष्ट हो जाते हैं। इनसे त्वचा पर पहिले उत्तेजना का आभास होता है, उसके बाद दृष्टि में विषमता उत्पन्न हो जाती है, सीने में कसावट का अनुभव होता है और नाक से पानी बहना आरम्भ हो जाता है। शीघ्र ही साँस लेने में कठिनाई होने लगती है तथा वमन प्रारम्भ हो जाता है। अन्तिम चरण में व्याक्षोभ अर्थात् कन्वलशन होने के साथ-साथ श्वासारोध से मृत्यु हो जाती है। तंत्रिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मक सामान्यतः गन्धहीन वाष्पशील द्रव होते हैं। सोमान अर्थात् GD, सारिन अर्थात् GB, ताबुन अर्थात् GA एवं VX, ये चार प्रमुख तंत्रिका कर्मक हैं। इनमें VX सर्वाधिक शक्तिशाली है। यह फॉसजीन की तुलना में तीन सौ गुना अधिक विषाक्त होता है। इसकी एक मिलीग्राम मात्रा ही मनुष्य को मार सकती है।

रासायनिक कर्मकों के प्रतिविष (ऐसा पदार्थ जो इनके प्रभाव को नष्ट करता है) का आविष्कार भी हो चुका है। तंत्रिका कर्मकों के लिये एट्रोपिन सल्फेट एक प्रभावकारी प्रतिविष है। तंत्रिका-गैसों के प्रभाव को नष्ट करने के लिये सैनिक एट्रोपिन सल्फेट ही प्रयुक्त करते हैं।

रासायनिक युद्ध कर्मकों में मस्टर्ड गैस का प्रयोग भी बहुत होता है। जर्मन इसे 'लॉस्ट' के नाम से पुकारते हैं क्योंकि इसका आविष्कार लॉमले एवं स्टीनकॉफ नामक वैज्ञानिकों ने किया था। त्वचा के सम्पर्क में आने पर यह तेजी से फफोले डाल देती है। सैनिकों को इससे बहुत बेचैनी का सामना करना पड़ता है तथा उनकी कार्यक्षमता बहुत कम हो जाती है।

कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि विएतनाम की लड़ाई में १९६१ से १९७१ के बीच एक लाख टन से भी अधिक जहरीले रसायनों का प्रयोग किया गया जिनमें VX जैसे अत्यन्त विषैले पदार्थ भी हैं। साथ ही साथ लगभग पाँच करोड़ लीटर 'ऑरेंज' मिश्रण का भी प्रयोग किगा गया। इससे लगभग सोलह लाख विएतनामी प्रभावित हुए। इन रसायनों से वहाँ के वातावरण पर भी गहरा प्रभाव पड़ा। विशाल खेती, हरी भूमि इसके कारण से बंजर हो गयी है। 'ऑरेंज' मिश्रण का प्रयोग भी किया गया। इसमें लगभग सोलह लाख विएत-नामी प्रभावित हुए। इन रसायनों से वहाँ के वातावरण पर भी गहरा प्रभाव पड़ा। विशाल खेती हरी भूमि इसके कारण से बंजर हो गयी है। 'ऑरेंज' मिश्रण जिसमें डाएआक्जीन होती है, आज भी वहाँ की मिट्टी में मौजूद है। वहाँ के व्यक्तियों में तंत्रिका-विक्षोभ, चर्मरोग तथा कैंसर व जने-न्द्रियों को हानि के कितने ही उदाहरण हैं। वहाँ की बहुत सी महिलाएँ जनन-शक्ति विहीन हो गयी हैं या गर्भावस्था के काल में हुए प्रभाव के कारण विकृत पैदायश हुई है। यही नहीं, इनको प्रयुक्त करते समय स्वयं बहुत से अमेरिकी सैनिक भी प्रभावित हुए हैं।

रासायनिक युद्ध कर्मकों के प्रयोग पर १९२५ की जेनेवा प्रोटोकॉल व फिर १९७२ की बायोलौजिकल एवं टॉक्सिन वैपन्स कनवेन्शन में रोक लगाने का अन्तर्राष्ट्रीय कानून पास कर दिया था। १९७२ की संधि के अनुसार तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रासायनिक युद्ध कर्मकों का उत्पादन ही नहीं, वरन् जमा करना या एक देश से दूसरे देश में भेजना भी अवैध माना गया है। किन्तु फिर भी कभी-कभी इनका प्रयोग कुछ देश करते रहे हैं, चाहे वे इसे स्वीकार नहीं करते। इस प्रकार के हथियारों पर कठोर प्रतिबन्ध लगाने के लिये संयुक्त-राष्ट्र संघ में भी समय-समय पर प्रस्ताव आते रहे हैं, परन्तु अमेरिका इनके विरुद्ध मत देता रहा है। उसने वीटो का इस्तेमाल भी किया है ।

ईरान व ईराक के मध्य हो रहे खाड़ी के युद्ध में ईराक द्वारा रासायनिक युद्धकर्मकों के प्रयुक्त किये जाने का सन्देह है । पिछले वर्ष मार्च में ईरान में बहुत से सैनिक इससे प्रभावित पाए गए । पहिले अनुमान था कि इन पर ईराक द्वारा इस्तेमाल की गई जहरीली मस्टर्ड गैस का प्रभाव है। मस्टर्ड गैस के लिये सल्फर का एक यौगिक प्रतिविष का कार्य करता है। परन्तु इन व्यक्तियों में यह प्रतिविष प्रभावकारी नहीं हुआ। मस्टर्ड गैस का प्रभाव केवल त्वचा, आँखों व फेफड़ों पर पड़ता है, परन्तु इन सैनिकों में इन लक्षणों के अतिरिक्त कुछ अन्य लक्षण, जैसे अत्याधिक आंतर रक्तस्राव का होना तथा रक्त की सफेद कौशिकानिर्माण का बन्द होना भी पाया गया । अतः इन सैनिकों को उपचार के लिये आस्ट्रीया व स्वीडन भेजा गया । इनमें कुछ की मृत्यु भी हो गयी। प्रभावित व्यक्तियों का खून व मल-मूत्र आदि का परीक्षण करने पर ज्ञात हुआ कि इन पर मस्टर्ड गैस व माइकोटॉक्सिन के मिश्रण का प्रभाव है। इन दोनों के मिश्रण का प्रभाव अत्यन्त घातक होता है तथा न ही इसके लिये कोई प्रतिविष ही है। माइकोटॉक्सिन को ही 'पीत वर्षा' यानी 'yellow rain' के नाम से जाना जाता है। इसका नाम 'पीत वर्षा' पड़ने का कारण यह है कि जब इसे वायुयानों द्वारा दुश्मन देश के क्षेत्र में छोड़ा जाता है तो यह पीले या धीरे-धीरे नारंगी बादल के रूप में वायुयान से निकलता है। यह बादल धीरे-धीरे जमीन के निकट आता जाता है। इस बादल में छोटे-छोटे कण होते हैं जो छत या पेड़ों पर गिरने से ऐसी आवाज करते हैं जैसे कि वर्षा हो रही हो। जो व्यक्ति इस वर्षा के सीधे सम्पर्क में आते हैं उन पर अतिशीघ्र इसका प्रभाव होता है। पहिले त्वचा पर खुजली का आभास होता है, उल्टियाँ आने लगती हैं तथा दृष्टि में विषमता आ जाती है। शीघ्र ही ख़ून की उल्टी होती है तथा उसके पश्चात् मृत्यु हो जाती है। इतनी अधिक खतरनाक व घातक होती है यह 'पीत वर्षा'।

अनुमान है कि पाकिस्तान भी रासायनिक युद्ध कर्मकों को प्राप्त करके इनका भण्डार बना रहा है। यह भी अनुमान है कि पाकिस्तानी सेनायें अमेरिका के फोर्ट डेट्रिक नामक स्थान पर रासायनिक युद्ध का प्रशिक्षण प्राप्त कर रही हैं। परन्तु इनको किस समय व किस प्रकार प्रयुक्त किया जायेगा, इस विषय में केवल अटकलें ही लगायी जा सकती हैं । एक सम्भावना यह है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें बमों के साथ ही उनकी आड़ में प्रयुक्त किया जायेगा जिससे दूसरी सेना को इनका पूर्वाभास न हो तथा वे इनसे सुरक्षा के उपाय (जैसे गैस मास्क अथवा रक्षक सूट आदि का पहिनना) न कर पाएं।

मानव-जीवन पर रासायनिक युद्ध कर्मकों के प्रभाव की लम्बी व असह्य पीड़ा को देखते हुए मानवता में विश्वास रखने वाला कौन यह नहीं कहेगा कि इन पर कठोर प्रतिबन्ध लगाना नितान्त आवश्यक है।

अन्त में रसायनों की एक अन्य श्रेणी की चर्चा करना भी यहाँ उचित होगा जो युद्ध में शत्रु सैनिकों को सीधे हानि नहीं पहुँचाते किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से आक्रमणकारी सेना को बहुत सहायता प्रदान करते हैं। ये रसायन जंगलों में लड़े जाने वाले युद्ध में विशेषतः उपयोगी सिद्ध हुए हैं। रसायनों की इस श्रेणी को निष्पत्र कहा जाता है। विएतनाम युद्ध में इनका प्रयोग बहुत किया गया था। ये अकार्बनिक व कार्बनिक रसायन होते हैं जो वृक्षों पर से पत्तियों व छोटी शाखाओं का सफाया कर देते हैं। इससे बम वर्षा के दौरान न तो सैनिक छिप सकते हैं और न हो छिपकर घात लगा सकते हैं। कैल्शियम साइनेमाइड तथा मैग्नेशियम परक्लोरेट दो प्रमुख निष्पत्रक हैं।

स्पष्ट है कि युद्ध में प्रयुक्त किये जाने वाला रसायन चाहे निष्पत्र जैसा कम हानिकारक हो या VX जैसा घातक, है यह पूर्णतया अमानवीय। शायद आज का मानव एक दूसरे की जान लेने में ही विश्वास रखता है अन्यथा रासायनिक युद्धकर्मकों की एक श्रेणी और भो है जिसे वह प्रयुक्त करना नहीं चाहता। यह श्रेणी उन रसायनों को है जिन्हें 'अयोग्यता कर्मकों' के नाम से जाना जाता है। इन रसायनों से कुछ समय के लिये व्यक्ति कार्य करने के अयोग्य हो जाता है। ये रसायन मस्तिष्क को प्रभावित कर सैनिकों में मानसिक शिथिलता उत्पन्न कर देते हैं। ऐसे भी रसायन हैं जिनसे कि शत्रु-सैनिकों को कुछ निश्चित समय के लिये मूर्छित किया जा सकता है ताकि उस दौरान इनके ठिकानों पर कब्जा आदि किया जा सके। इस प्रकार के रसायनों के प्रयोग से की गई सैनिक कार्यवाही अनोखी अवश्य होगी, पर होगी पूर्णतया मानवीय।

—o—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल संग्रहालय में सुरक्षित गुप्तकालीन महत्वपूर्ण मृष्मूर्तियां

सुखवीरसिंह
(सहा० क्यूरेटर)

किसी भी सभ्यता की स्थाई सफलताओं की संरक्षिका कला ही रही है। सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था, धर्म के रूप और साम्राज्य सभी बदल जाते हैं, पर कला में हम उस सभ्यता की असूल्य निधियों का संचय और सांस्कृतिक तत्त्व पाते हैं। कला मानव-जीवन के विशिष्ट भावों और समकालीन सामाजिक वातावरण को प्रकाश में लाती है और उनके अभिप्राय के अर्थ को समझाती है। कला हृदय और चक्षु दोनों को आकर्षित करती है । विद्या और कला के विषय में शुक्राचार्य ने कहा है कि वाणी के द्वारा जो व्यक्त होती है वही विद्या है और गूँगा भी जिसे व्यक्त कर सकता है वह कला है । कला मनोमय जगत् और भूतमय जगत् के मध्य में एक सेतु है। इस पुल पर चढ़कर हम जान सकते हैं कि मनुष्यों ने राष्ट्रीय संस्कृति के निर्माण में एक ओर कितना सोचा था और दूसरी ओर कितना निर्माण किया था ।

भारतीय कला के माध्यमों में मृष्कला का श्रेष्ठ स्थान रहा है । सभी युगों में मृष्मूर्तियाँ बनती रही हैं किन्तु गुप्त-काल में यह कला मानों अपने सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गई थी। यह काल कला की दृष्टि से स्वर्ण काल माना जाता है। इस स्वर्ण युग में भारतीय कलाओं ने गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था। गुप्तकालीन कलाकारों ने कुषाण काल के शारीरिक सौन्दर्य को ही नहीं अपनाया, वरन् स्थूल सौन्दर्य और भाव सौन्दर्य का सुन्दर योग भी स्थापित किया। इस काल में विवस्त्र या नग्न चित्रण को कोई स्थान नहीं है, जबकि कुषाण कला की वह एक अपनी विशेषता थी ।

गुप्तों के समय कला को एक नया मोड़ मिला और साथ ही साथ अब भाव सौन्दर्य की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा । इस समय मूर्तियों में अपनी पूर्ववर्ती मूर्तियों की अपेक्षा माधुर्य, ओज और सजीवता में कहीं उत्कृष्ट हैं। सौन्दर्य के मापदण्ड का यह परिवतन तत्कालीन जीवन के सभी क्षेत्रों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झलकता हुआ दिखलाई पड़ता है। डा० कुमार स्वामी के शब्दों में गुप्त-काल की कला जो मथुरा की कुषाण कला से उद्भूत है,स्वतः एकरूप एवम् स्वाभाविक है।

इस काल में मथुरा, कौशाम्बी, अहिच्छत्रा, बक्सर, पटना, चन्द्रकेतुगढ़, तामलुक, राजाघाट, पहाड़पुर, भीतरगांव, अक्खनूर, मीरपुरखास, रंगमहल, झूसी आदि मृण्कला के प्रमुख केन्द्र थे। इन स्थानों से विविध शैली तथा विविध विषयक मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। कला और सौन्दर्य का सन्देश मृण्मूर्तियों के माध्यम से जनता में प्रचारित किया गया, क्योंकि खिलौने मूल्य में बहुत सस्ते और अधिक संख्या में शीघ्रता से तैयार किये जा सकते थे। धार्मिक आवश्यकता और मनोरंजन दोनों की पूर्ति उनसे होती थी। छोटी मूर्तियों के अतिरिक्त मिट्टी के बड़े फलक भी मन्दिरों और घरों में लगाने की प्रथा प्रारम्भ हो गई थी जिनमें भाँति-भाँति के धार्मिक और सामाजिक दृश्य ढाले जाते थे। कभी-कभी कायपरिमाण की मृण्मूर्तियाँ बनाई जाती थी, जैसे अहिच्छत्रा से प्राप्त मकरवाहिनी गंगा और कच्छपवाहिनी यमुना की मूर्तियाँ, जो इस समय राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में सुरक्षित हैं।

मिट्टी के बड़े फलक और मूर्तियाँ पाषाण शिल्प के समान काम में लाई जाती थीं। गुप्तकाल के कितने ही मन्दिर नीचे से ऊपर तक अलंकृत ईंटों और मृण्मय फलक-पंक्तियों से निर्मित किये गये थे। उनमें से कुछ अभी तक सुरक्षित हैं जैसे कानपुर जिले में भीतरगांव का मन्दिर कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस काल की सबसे सुन्दर मृण्मूर्तियाँ अहिच्छत्रा में बनीं। सम्भवतः इन्हीं को देखकर रायकृष्णदास जैसे कला-समीक्षक को यह लिखना पड़ा कि—"गुप्त-काल में बड़ी-बड़ी मृण्मूर्तियाँ और पकाई मिट्टी के फलक भी बनते थे, जिनका सौन्दर्य और सजीवता पत्थर या धातु की मूर्तियों से भी इक्कीस है।"

वर्गीकरण की दृष्टिसे गुप्तकालीन मृणमय मूर्तियाँ तीन प्रकार की हैं— १-धार्मिक—ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित देव-देवियों की मूर्तियाँ जैसे विष्णु, सूर्य, ब्रह्मा, शिव, कार्तिकेय, पार्वती, गणेश, महिषासुरमर्दिनी, गंगा, यमुना आदि। २--स्त्री और पुरुष मूर्तियाँ, जो साँचों से बनी हैं। उनकी शैली गुप्तकालीन उत्कृष्ट कला का नमूना है। इनका सौन्दर्ययुक्त मुख, तीखे नाक-नक्श, बड़ी-बड़ी आँखे, कानों में कुण्डल, कर्णफूल, गले में नाभि तक लटकती हुई माला, मुक्ताहार दिखाई पड़ता है। किसी-किसो स्त्री के सिर पर मुकुट और उषणीश भी मिलता है। ये आभूषण प्राचीन काल की रमणियाँ बड़े चाव से पहनती थीं। इन मूर्तियों का गोल चेहरा, गोल-गोल बांहें, माँसपेशियों का अभाव, ओठों पर रहस्यमयी मुस्कान, ऊपर का ओंठ निचले ओंठ पर इषत् गड़ा हुआ दिखाई पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस काल की मूर्तियों में केश-विन्यास सादृश्य है, जैसे अलकावली, जिसमें बीच की केश-बीथी के दोनों ओर छल्लेदार लटें पंक्तिबद्ध रूप से संवारी हुई दिखाई पड़ती हैं। अलकावली को कालिदास ने स्त्री-सौन्दर्य का सुन्दर लक्षण कहा है। पुरुष-मस्तकों में भी केश-रचना अलकावली के रूप में दिखाई गई है जो मस्तक के दोनों ओर बड़े भव्य रूप में सज्जित है। मार्शल का कहना है कि जो पुरुष इस प्रकार अपने केशों को सजाते थे, वे बहुत ही छैल रहे होंगे। केश रचना की दूसरी शैली मोर के फैलाए हुए पंखों जैसी थो जिसे साहित्य में लीलामयूर बर्हभंगी केशपाश कहा है। बीच को मांग के दोनों ओर फैले हुए केश इसको विशेषता है। केश रचना को तीसरी शैली मधुमक्षिका के छत्ते जैसी है। इसमें मांग के दोनों ओर केशों को क्षौद-पटल या छत्तों के आकार में सजाया जाता था। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के कथनानुसार रोम देश की कुलीन स्त्रियाँ भी केश रचना की इस शैली को पसन्द करती थीं। इस प्रकार इस केश-विधि ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर ली थी।

गुप्तकालीन पार्थिव मूर्तियों का तीसरा वर्ग उस प्रकार के फलक हैं जो वस्तु-शिल्प में प्रयुक्त होते थे। इनमें पौराणिक आख्यानों और अलंकरण के विषय हैं। राजघाट से प्राप्त पार्थिव मूर्तियाँ गुप्त कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं जो भारत कला भवन में सुरक्षित हैं।

निःसन्देह गुप्तकाल में मृण्कला अपने विकास के चर्मोत्कर्ष पर पहुंच गई थी। अतः भारतीय कला में गुप्तकालीन मृण्कला अपना विशेष स्थान रखती है।

दम्पत्ति—गुरुकुल संग्रहालय नं० २२१/१३ (१५.५×१४.५×५ से०मी०)कौशाम्बी से प्राप्त यह प्रतिमा पाँचवी शती ई० की है। यह गेहुँए रंग की मिट्टी से निर्मित है। इस प्रतिमा में स्त्री-पुरुष दाम्पत्य भाव में बैठे हुए हैं। पुरुष का शिरोभाग खण्डित है। यह धोती पहिने हुए है। धोती शरीर से चिपके हुए दिखलाई पड़ती है। बांया हाथ स्त्री को पीठ पर रखे हुए है। स्त्री क़ानों में बड़े कुण्डल, गले में कंठहार, सिर पर जूड़ा और हाथों में कड़े पहने हुए है। स्त्री धोती पहने हुए है और कटिप्रदेश पर मेखला बांधे हुए है। यह कटिप्रदेश पर धोती के ऊपर बंधी हुई है। स्त्री, पुरुष की वाम जंघा पर अपने दांये पैर का घुटना रखे हुए है।

इस प्रतिमा में पुरुष अपने बांये हाथ से स्त्री का आलिंगन कर रहा है और स्त्री, पुरुष की वाम जंघा पर अपने दांये पैर का घुटना रखे हुये है। इससे स्पष्ट है कि इस प्रतिमा में प्रेमासक्ति का भाव है। इसमें सौन्दर्य, रूपसज्जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और दाम्पत्य भाव स्पष्ट रूप से दिखलाई देता है, प्रतिमा कुछ खण्डित है। इसके लामच्छन भी कुछ स्पष्ट नहीं हैं, फिर भी प्रतिमा की शैली से स्पष्ट है कि स्त्री-पुरुष दाम्पत्य भाव में बैठे हुए हैं ।

स्त्री का शिरो भाग—गुरुकुल संग्रहालय नं० २२७/१६ (१८×१५×१३ से०मी०) कौशाम्बी से प्राप्त यह प्रतिमा चौथी-पाँचवी शती ई० की है । यह लाल रंग की मिट्टी से निर्मित है । स्त्री का गोल चेहरा, ओठों पर मुस्कान, बड़ी आँखे, कलापूर्ण ढंग से केशों की सीधी मांग मस्तक के पीछे की ओर भव्य रूप में सज्जित है । स्त्री कानों में बड़े कुण्डल धारण किये हुये है । इसके कपोल कुछ चिकने, ओंठ मोटे दिखलाई पड़ते हैं । स्त्री के शिरो भाग के चारों ओर गोल अलंकृत चौड़ी पट्टी का घेरा बना है । यह सौन्दर्य और रूप-सज्जा की दृष्टि से बहुत ही कलापूर्ण है ।

इस प्रतिमा में सौन्दर्य और रूप-सज्जा स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है । गुप्तकाल में केश-सज्जा, वस्त्र-भूषण और धर्म तथा समाज के विभिन्न पहलुओं को प्रतिबिम्बित करती हुई यह कृति, कला और इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है ।

स्त्री का शिरो भाग—गुरुकुल संग्रहालय नं० १३३२/२६७ (७×४.५×३.५ से०मी०) कौशाम्बी से प्राप्त यह प्रतिमा पांचवी-छठी शती ई० की है । यह गेहुँए रंग की मिट्टी से निर्मित है । कला-दृष्टि से यह प्रतिमा बहुत ही महत्वपूर्ण है । स्त्री कलापूर्ण ढंग से केश विन्यास किये हुये है । मस्तक के दोनों ओर केशों को सीधी मांग द्वारा संवार कर जूड़ा बनाया गया है और सिर पर ओढ़नी दिखलाई गई है । इसके केश पूर्णतः ढके नहीं हैं बल्कि आगे केश विन्यास का कुछ भाग मस्तक के दोनों ओर दिखाई दे रहा है । इसका गोल चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखे, कपोल कुछ चिकने, कानों में कर्णफूल और ओठों पर रहस्यमयी मुस्कान है ।

यह प्रतिमा सौन्दर्य और रूप-सज्जा की दृष्टि से बहुत कलापूर्ण है । रंगों की पुताई इसकी सुन्दरता को और बढ़ा रही है ।

आवक्ष, पुरुष प्रतिमा—गुरुकुल संग्रहालय नं० २४३/३५ (८×५.५×२ से०मी०) मथुरा से प्राप्त यह प्रतिमा पाँचवी शती ई० की है । यह गेहुँए रंग की मिट्टी से निर्मित है । इस प्रतिमा में पुरुष कलापूर्ण ढंग से केश विन्यास किये हुए है, केशों की रचना अलकावली के रूप में दिखलाई गई है जो मस्तक के दोनों ओर पंक्ति रूप से कन्धों पर लहराते हुये भव्य रूप में सज्जित है । पुरुष का गोल चेहरा, ओठों पर रहस्यमयी मुस्कान, आँखे बड़ी, मांसपेशियों का अभाव और कानों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुण्डल हैं। प्रतिमा में ऊपर की ओर एक छिद्र है जिससे प्रतिमा को दीवार पर टाँगने के लिये इसका उपयोग किया जाता था।

इस प्रतिमा में सौन्दर्य और रूप-सज्जा की भावना स्पष्ट रूप से दिखलाई देती है। यह प्रतिमा कला की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है। संग्रहालय में इस प्रतिमा के समान ही कौशाम्बी से प्राप्त गुप्तकालीन मृण्मूर्तियाँ नं० ३९८/१३३ और नं० १४३४/३१९ पर अंकित एवम् प्रदर्शित हैं।

स्त्री का शिरो भाग—गुरुकुल संग्रहालय नं० ३०७७/३७० (५.५×५×२.५ से० मी० विदिशा से प्राप्त यह प्रतिमा पांचवी शती ई० की है। यह गेहुँए रंग की मिट्टी से निर्मित है। स्त्री कलापूर्ण ढंग से केश विन्यास किये हुए है। यह मस्तक के दोनों ओर के केशों को सीधी मांग द्वारा और इनको लहरियेदार बनाकर संवारे गये हैं। शिरो भाग के बोच में केशों का जूड़ा है जो सम्भवत: मोतियों की लड़ियों द्वारा सज्जित है। स्त्री का मस्तक केशों के साथ दोहरी मोतियों की लड़ियों द्वारा सुशोभित है। इसका गोल चेहरा, नाक सीधो और ओठों पर रहस्यमयी मुस्कान है। प्रतिमा में मुख का नीचे का ओंठ कुछ मोटा है।

इस प्रतिमा में ऊपर को ओर एक छिद्र बना हुआ है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि दीवारों पर टांगने के लिये इसका उपयोग किया जाता था। इस में सौन्दर्य और रूप-सज्जा की भावना स्पष्ट रूप से दिखलाई देती है। इसकी शैली गुप्तकालीन कला का उत्कृष्ट नमूना है।

स्त्री का शिरो भाग—गुरुकुल संग्रहालय नं० ३५३३/४०३ (७.५×४.५×३ से० मी०) शाहबाद (आगनखेड़ा–हरदोई) से प्राप्त यह प्रतिमा पांचवो-छठी शती ई० की है। यह गेहुँए रंग की मिट्टी से निर्मित है। स्त्री कलापूर्ण ढंग से केश विन्यास किये हुये है। मस्तक के दोनों ओर केश लहरियेदार, लटें संवारी हुई हैं जो कन्धों पर लहराते हुए भव्य रूप में सज्जित हैं। स्त्री का गोल चेहरा, उन्मीलित आंखे और कानों में कुण्डल हैं। स्त्री के मुख को देखने से स्पष्ट होता है कि इसका नीचे का ओंठ कुछ मोटा है।

कला-दृष्टि से यह प्रतिमा महत्वपूर्ण है। इसके केश-विन्यास तथा सौन्दर्य-युक्त मुख, कला और इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

—०—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपाध्याय का स्वरूप

आचार्य वेदप्रकाश शास्त्री
संस्कृत विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

उपाध्याय शब्द श्रूयमाण होता हुआ किसी भव्य एवं दिव्य व्यक्तित्व की ओर इंगित करता हुआ, मानव परम्परा में परिगणनीय शब्द-श्रृंखला में अपना विशिष्ट स्थान रखता हुआ, विद्वत् समुदाय के मानस-सरोवर में विविध तरङ्ग-रिङ्गण के साथ क्रीडा में तत्पर, हंस सदृश शोभमान होता रहा है। यद्यपि उपाध्याय शब्द किसी वृत्तिविशेष की ओर ध्यान आकृष्ट करता है किन्तु वह वृत्ति ब्राह्मण वर्ण की व्यापक एवं शाश्वत ज्ञान वृत्ति का एक उज्ज्वल अंश है जो कि ब्राह्मणों के एक विशिष्ट वर्ग के लिये रूढ़ होकर संसार में कीर्तिमान हो गया है। प्रश्न उपस्थित होता है कि ब्राह्मण के साथ उपाध्याय शब्द का विनियोजन कब और कैसे सम्भव हुआ ? क्योंकि दो प्रकार के शब्द व्यूह दृष्टि में आते हैं। प्रथम शब्द व्यूह वैदिक शब्दों का है तथा द्वितीय शब्द व्यूह लौकिक शब्दों का है। वैदिक शब्द वेदों में हैं जिनका कर्ता स्वयं परमात्मा है, लौकिक शब्द लोक-निर्मित हैं जिनके कर्ता ऋषि, मुनि, देव, विद्वान आदि हैं। यद्यपि यह सत्य है कि लौकिक शब्दों का मूल भी बीज-रूप में कहीं न कहीं वेदों में अवश्य द्रष्टव्य है, क्योंकि समग्र शब्द सृष्टि का मूल वेद को ही स्वीकार किया गया है। मनु महाराज ने मनु-स्मृति में स्पष्ट रूप से वेदों के महत्त्व को स्वीकार करते हुये उद्घोष किया है कि—

सर्वेषां तुसनामानि कर्माणि च पृथक्पृथक्।
वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे।। मनु/१/२१

शब्दार्थ के सत्यस्वरूप का दर्शन करने वाले, भारती के समुपासकवृन्द से वन्दनीय ऋषिवर वेदव्यास जी महाराज ने भी जगत् प्रपञ्च की समस्त प्रवृत्तियों का मूल वेदों को ही स्वीकार किया है। जैसे—

अनादि निधनानित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः।। महा०भा०शांति/२३२/२४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार सभी मनीषियों ने वेद में ही समस्त सद्वृत्तियों का दर्शन करते हुए सांसारिक जन-समूह के कल्याणार्थं विविध प्रकार से उपदेश प्रक्रिया को संजीवन दिया। उपाध्याय की मौलिक प्रवृत्तियों का वर्णन भी हमें वेद में प्राप्त होता है। यद्यपि वेद मन्त्रों में कहीं भी उपाध्याय शब्द का प्रयोग तो नहीं हुआ है किन्तु जो वर्णन उपलब्ध है उसके अनुसार प्रयुक्त विशेषण उपाध्याय की वृत्ति की ओर ही इंगित करते हैं। वेदों के प्रख्यात विद्वान श्री दामोदर जी सातवलेकर ने दैवत संहिता में एक मन्त्र का उपाध्याय देवता के सम्बन्ध में उल्लेख किया है। उस मन्त्र का देवता—विश्वामित्रोपाध्याय है। इससे प्रतीत होता है कि मन्त्र उपाध्याय को समस्त प्रवृत्तियों का परिचायक है। मन्त्र इस प्रकार है—

शतधारमुत्समक्षीयमाणं विपश्चितं पितरं वक्त्वानाम्।
मेलिं मदन्तं पित्रोरूपस्थे तं रोदसी पिपृतं सत्यवाचम्।। ऋ.३/२६/९

प्रस्तुत मन्त्र में प्रयुक्त विशेषण परम्परा उपाध्याय की वाग्वृत्ति की सतत प्रगतिमयता की स्पष्टतया द्योतन कर रही है। उपाध्याय का शतधार रूप—मन्त्र में उपाध्याय के लिये शतधार शब्द का प्रयोग किया गया है। शतधार शब्द उपाध्याय की अद्भुत वाग्मिता की ओर संकेत कर रहा है, क्योंकि यास्काचार्य ने धारा शब्द का प्रयोग निघण्टु के अन्दर वाग् रूप में प्रस्तुत किया है। (धारा इति वाङ्नामसुपठितम्) इस प्रकार शतधार का अर्थ "शतधा धारा सुशिक्षिता वाग् यस्यासौ शतधारः" किया जा सकता है। वस्तुतः उपाध्याय किसी एक तथ्य का प्रकटन अनेकधा करता हुआ शतधार ही होता है। उपाध्याय के समक्ष सहस्रों की संख्या में बैठा हुआ छात्रसमुदाय जब उसकी वाणी का श्रवण करता है तो उस समय एक काल में अविच्छिन्न रूप में एकरूपा वाक् रश्मि का विकिरण वह अनेकधा ही करता है। जिस प्रकार व्योमस्थ मेघ सहस्र धाराओं के साथ पृथिवी पर वर्षण करता है, वही स्वरूप उपाध्याय का भी है। पुनश्च यह ज्ञातव्य है कि उपाध्याय के समक्ष जिज्ञासु शिष्य-मण्डल बौद्धिक दृष्टि से समान क्षमता का नहीं है, अतः कुशाग्र बुद्धि जिस निदर्शन से वस्तुतत्व का अवगम करता है, मन्द बुद्धि के लिये भिन्न निदर्शन के माध्यम से ही पदार्थ का बोध कराना उपाध्याय का परम कर्त्तव्य है। यह तभी सम्भव है जब कि उपाध्याय का बौद्धिक अभ्युदय शतधार की स्थिति को प्राप्त कर चुका हो। साङ्गोपाङ्ग शास्त्रों का ज्ञाता, शास्त्रानुशीलन में तत्पर तथा सहज प्रतिभा का धनी उपाध्याय ही शतधार की संज्ञा को प्राप्त कर सकता है।

अक्षीयमाण उत्स के रूप में उपाध्याय—उपाध्याय को अक्षीयमाण उत्स अर्थात् कभी भी क्षीण न होने वाले कूप के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की विशेषता यही होती है कि वह इधर-उधर से आकर संचित जल का दाता नहीं होता है अपितु वह स्वतः स्रवणशील स्रोतों से निःसृत जल को प्रतिक्षण नव-नव रूप में स्वादु पेय बनाता हुआ जन-जन की जलाभिलाषा को पूर्ण करता है। उसी प्रकार उपाध्याय भी वह ज्ञानकूप है कि जिसके समीप आकर कोटिशः पुरुष प्रायशः ज्ञानपिपासु होकर अपनी तृषा को शाँत करते हैं। कूप की सार्थकता इसी में है कि निरन्तर उसमें से जल निकलता रहे। उपाध्याय की सार्थकता इसी में है कि उसका ज्ञान-जल सतत् रूप में निःसृत होता रहे, क्योंकि ज्ञान कूप की अक्षयता इसी में निहित है। उपाध्याय का चिन्तन सहज होता है तथा उसमें सातत्य रहता है। यह चिन्तन सातत्य ही उसके अक्षीयमाण रूप का हेतु है। सातत्य के अभाव में पूर्वार्जित ज्ञानजल के कारण उपाध्याय का कूप-रूप तो रह सकता है परन्तु उसकी अक्षीयमाणता क्षण-क्षण में क्षीण होती रहती है। सम्भवतः इसीलिये कहा गया है—

अपूर्वः कोऽपि कोषोऽयं दृश्यते तव भारती ।
व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायाति सञ्चयात् ॥

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा उत्स शब्दार्थ इस प्रकार किया गया है "उन्दन्ति येन तं कूपम्, उत्समिति कूप नाम् निरु० ३/२३। कूपमिव जलेन क्लिन्नम्, कूप इव तृप्तिकरः, उन्दन्ति यस्मात् स कूप इव(पुरुषः)। अर्थात् कूप की क्लिन्नता यहाँ स्नेह का द्योतन करती है। स्नेह तृप्तिकर स्वयमेव होता है अतः उपाध्याय ज्ञान कोष होते हुए स्नेह की जीवित मूर्ति के रूप में भी स्वयं को प्रस्तुत करे। कूप शब्द से उपाध्याय की स्वस्थानाधिष्ठातृता निश्चय ही अभि-व्यञ्चित हो रही है। जिस प्रकार कूप एक स्थानस्थ रह कर आने वालों की जलदान द्वारा तृप्ति करता है उसी प्रकार उपाध्याय भी अपनी पीठ पर अधि-ष्ठित होता हुआ अक्षय ज्ञान निधि का निरन्तर वितरण करता रहता है। यदि उपाध्याय की व्युत्पत्ति करें तो इस प्रकार होगी "उपेत्यअधीयतेऽस्मादित्युपा-ध्यायः" अर्थात् जिसके समीप जाकर अध्ययन किया जाता है वह उपाध्याय संज्ञा को प्राप्त करता है। समग्र उपनिषत् साहित्य इस दृष्टि से औपाध्यायिक प्रवृत्ति का द्योतक है। यद्यपि अधुनातन जगत में चिन्तन परम्परा भिन्न है, अद्यतनीन विचार से तो "शिष्यमुपेत्य योऽध्यापयाति स उपाध्यायः" यह अर्थ किया जाता है, परन्तु यह अर्थ प्राक्काल में अभीष्ट नहीं था, क्योंकि सभी प्राचीन ग्रन्थों के शिक्षा प्रसंगों में शिक्षक को पूर्वारणि तथा शिष्य को उत्तरारणि के रूप में स्वीकृत किया गया है, पूर्वारणि के समीप उत्तरारणि को ही आना होता है। पूर्वारणि जहाँ उसका स्थान है वहीं प्रतिष्ठित रहती है। गुरुकुलों अथवा शिक्षण संस्थानों में आज भी विद्यार्थियों का प्रविष्ट होना इसका प्रमाण है। उपाध्याय की इस गौरवमयी स्थिति को ध्यान में रखते हुए आचार्य पाणिनी के "आख्यातो-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पयोगे" १/४/२९ सूत्र का उदाहरण नियमपूर्वक विद्यास्वीकरण में "उपाध्यायादधीते" दिया है जिससे शिष्य का शिक्षक के समीप गमन सिद्ध हो रहा है ।

उपाध्याय का विपश्चित् रूप—उपाध्याय को वैदुष्य से परिपूर्ण होना चाहिये। क्योंकि उसका प्रमुख कार्य अध्यापन है अतः विद्यार्थी की समस्त शंकाओं का निवारण करना उपाध्याय का प्रमुख कर्त्तव्य है। यह तभी सम्भव हो सकता है जब कि उपाध्याय का विशद अध्ययन एवं मनन होगा। कोई भी विद्या चार प्रकार से फलवती मानी गयी है, अर्थात् अधीति, बोध, आचरण एवं प्रचारण के द्वारा विद्या का पूर्ण विकास होता है। यह विकास उपाध्यायश्रित ही स्वीकरणीय है तथा उक्त परम्परा के निर्वाहार्थ उपाध्याय का विद्वानों की श्रेणी को निजाभिख्या से अलंकृत करना परम कर्त्तव्य है ।

उपाध्याय वाणी का पिता है - उपाध्याय को "पितर वक्वानाम्" कह कर वाणी के पिता के रूप में स्वीकार किया गया है। स्वामी दयानन्द जी ने वक्वा के विद्वज्जन, वक्ता, भाषण वा उपदेश परम्परा आदि अनेक अर्थ किए हैं। इसी प्रकार पिता के भी पालक, जनक, विद्वान्, सूर्य, पालयिता वा अध्यापक आदि अनेक अर्थ किए हैं (वैदिक कोष)। इस प्रकार यह तो निश्चित ही है कि समस्त वाक् प्रसर उपाध्याय का निर्देशन प्राप्त करता हुआ ही गति में आता है। इसीलिए उपाध्याय को वाणी का पिता कहा गया है। यहाँ यह चिन्तना अवश्य करणोय है कि जिस प्रकार एक पिता अपनी पुत्री को गुणकर्मानुसार ही उसके योग्य पति को देता है, उसी प्रकार उपाध्याय का भी यह कर्त्तव्य है कि वह पात्र का गुण-कर्म एवं स्वभाव देखकर ही विद्या के विभिन्न रूपों का सूक्ष्म निरीक्षण करके प्रदान करे। इसके लिए उपाध्याय को मनोवैज्ञानिक होना चाहिये क्योंकि छात्र की मनःस्थिति का यथारूप जब तक स्पष्ट नहीं होगा तब तक प्रदत्त विद्या फलवती नहीं होगी। जब-जब उपाध्याय ने किसी भय अथवा प्रलोभनवश वाणी का असत्यपात्र में आधान किया है, तभी वाक् सरिता की पावनता कुछ मलीमस हुई है। अतएव निरुक्तकार ने इन पंक्तियों का उल्लेख कर दिया--

विद्या ह्वै ब्राह्मणमाजगाम, गोपाय माशेवधिष्टेऽहमस्मि ।
असूयकायानृजवेऽयताय न मा ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम् ॥१॥

य आतृणत्त्यवितथेन कर्णावदुःखं कुर्वन्नमृतं संप्रयच्छन् ।
तं मन्येत पितरं मातरं च तस्मै न द्रुह्येत्कतमच्चनाह ॥२॥

अध्यापिता ये गुरुं नाद्रियन्ते विप्रा वाचा मनसा कर्मणा वा ।
यथैव ते न गुरुर्भोजनीया स्तथैव तान्न मुनक्तिश्रुतं तत् ॥३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपाध्याय का स्वरूप

आचार्य वेदप्रकाश शास्त्री
संस्कृत विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

उपाध्याय शब्द श्रूयमाण होता हुआ किसी भव्य एवं दिव्य व्यक्तित्व की ओर इंगित करता हुआ, मानव परम्परा में परिगणनीय शब्द-श्रृंखला में अपना विशिष्ट स्थान रखता हुआ, विद्वत् समुदाय के मानस-सरोवर में विविध तरङ्ग-रिङ्गण के साथ क्रीडा में तत्पर, हंस सदृश शोभमान होता रहा है। यद्यपि उपाध्याय शब्द किसी वृत्तिविशेष की ओर ध्यान आकृष्ट करता है किन्तु वह वृत्ति ब्राह्मण वर्ण की व्यापक एवं शाश्वत ज्ञान वृत्ति का एक उज्ज्वल अंश है जो कि ब्राह्मणों के एक विशिष्ट वर्ग के लिये रूढ़ होकर संसार में कीर्तिमान हो गया है। प्रश्न उपस्थित होता है कि ब्राह्मण के साथ उपाध्याय शब्द का विनियोजन कब और कैसे सम्भव हुआ ? क्योंकि दो प्रकार के शब्द व्यूह दृष्टि में आते हैं। प्रथम शब्द व्यूह वैदिक शब्दों का है तथा द्वितीय शब्द व्यूह लौकिक शब्दों का है। वैदिक शब्द वेदों में हैं जिनका कर्ता स्वयं परमात्मा है, लौकिक शब्द लोक-निर्मित हैं जिनके कर्ता ऋषि, मुनि, देव, विद्वान आदि हैं। यद्यपि यह सत्य है कि लौकिक शब्दों का मूल भी बीज-रूप में कहीं न कहीं वेदों में अवश्य द्रष्टव्य है, क्योंकि समग्र शब्द सृष्टि का मूल वेद को ही स्वीकार किया गया है। मनु महाराज ने मनु-स्मृति में स्पष्ट रूप से वेदों के महत्त्व को स्वीकार करते हुये उद्घोष किया है कि—

सर्वेषां तुसनामानि कर्माणि च पृथक्पृथक्।
वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥ मनु/१/२१

शब्दार्थ के सत्यस्वरूप का दर्शन करने वाले, भारती के समुपासकवृन्द से वन्दनीय ऋषिवर वेदव्यास जी महाराज ने भी जगत् प्रपञ्च की समस्त प्रवृत्तियों का मूल वेदों को ही स्वीकार किया है। जैसे—

अनादि निधनानित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ॥ महा०भा०शांति/२३२/२४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार सभी मनीषियों ने वेद में ही समस्त सद्वृत्तियों का दर्शन करते हुए सांसारिक जन-समूह के कल्याणार्थ विविध प्रकार से उपदेश प्रक्रिया को संजीवन दिया। उपाध्याय की मौलिक प्रवृत्तियों का वर्णन भी हमें वेद में प्राप्त होता है। यद्यपि वेद मन्त्रों में कहीं भी उपाध्याय शब्द का प्रयोग तो नहीं हुआ है किन्तु जो वर्णन उपलब्ध है उसके अनुसार प्रयुक्त विशेषण उपाध्याय की वृत्ति की ओर ही इंगित करते हैं। वेदों के प्रख्यात विद्वान श्री दामोदर जी सातवलेकर ने दैवत संहिता में एक मन्त्र का उपाध्याय देवता के सम्बन्ध में उल्लेख किया है। उस मन्त्र का देवता—विश्वामित्रोपाध्याय है। इससे प्रतीत होता है कि मन्त्र उपाध्याय को समस्त प्रवृत्तियों का परिचायक है। मन्त्र इस प्रकार है—

शतधारमुत्समक्षीयमाणं विपश्चितं पितरं वक्त्वानाम्।
मेळिं मदन्तं पित्रोरुपस्थे तं रोदसी पिपृतं सत्यवाचम्।। ऋ. ३/२६/९

प्रस्तुत मन्त्र में प्रयुक्त विशेषण परम्परा उपाध्याय की वाग्वृत्ति की सतत प्रगतिमयता की स्पष्टतया द्योतन कर रही है। उपाध्याय का शतधार रूप— मन्त्र में उपाध्याय के लिये शतधार शब्द का प्रयोग किया गया है। शतधार शब्द उपाध्याय की अद्भुत वाग्मिता की ओर संकेत कर रहा है, क्योंकि यास्काचार्य ने धारा शब्द का प्रयोग निघण्टु के अन्दर वाग् रूप में प्रस्तुत किया है। (धारा इति वाङ्नामसुपठितम्) इस प्रकार शतधार का अर्थ "शतधा धारा सुशिक्षिता वाग् यस्यासौ शतधारः" किया जा सकता है। वस्तुतः उपाध्याय किसी एक तथ्य का प्रकटन अनेकधा करता हुआ शतधार ही होता है। उपाध्याय के समक्ष सहस्रों की संख्या में बैठा हुआ छात्रसमुदाय जब उसकी वाणी का श्रवण करता है तो उस समय एक काल में अविच्छिन्न रूप में एकरूपा वाक् रश्मि का विकिरण वह अनेकधा ही करता है। जिस प्रकार व्योमस्थ मेघ सहस्र धाराओं के साथ पृथिवी पर वर्षण करता है, वही स्वरूप उपाध्याय का भी है। पुनश्च यह ज्ञातव्य है कि उपाध्याय के समक्ष जिज्ञासु शिष्य-मण्डल बौद्धिक दृष्टि से समान क्षमता का नहीं है, अतः कुशाग्र बुद्धि जिस निदर्शन से वस्तुतत्व का अवगम करता है, मन्द बुद्धि के लिये भिन्न निदर्शन के माध्यम से ही पदार्थ का बोध कराना उपाध्याय का परम कर्त्तव्य है। यह तभी सम्भव है जब कि उपाध्याय का बौद्धिक अभ्युदय शतधार की स्थिति को प्राप्त कर चुका हो। साङ्गोपाङ्ग शास्त्रों का ज्ञाता, शास्त्रानुशीलन में तत्पर तथा सहज प्रतिभा का धनी उपाध्याय ही शतधार की संज्ञा को प्राप्त कर सकता है।

अक्षीयमाण उत्स के रूप में उपाध्याय—उपाध्याय को अक्षीयमाण उत्स अर्थात् कभी भी क्षीण न होने वाले कूप के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की विशेषता यही होती है कि वह इधर-उधर से आकर संचित जल का दाता नहीं होता है अपितु वह स्वतः स्रवणशील स्रोतों से निःसृत जल को प्रतिक्षण नव-नव रूप में स्वादु पेय बनाता हुआ जन-जन की जलाभिलाषा को पूर्ण करता है। उसी प्रकार उपाध्याय भी वह ज्ञानकूप है कि जिसके समीप आकर कोटिशः पुरुष प्रायशः ज्ञानपिपासु होकर अपनी तृषा को शाँत करते हैं। कूप की सार्थकता इसी में है कि निरन्तर उसमें से जल निकलता रहे। उपाध्याय की सार्थकता इसी में है कि उसका ज्ञान-जल सतत् रूप में निःसृत होता रहे, क्योंकि ज्ञान कूप की अक्षयता इसी में निहित है। उपाध्याय का चिन्तन सहज होता है तथा उसमें सातत्य रहता है। यह चिन्तन सातत्य ही उसके अक्षीयमाण रूप का हेतु है। सातत्य के अभाव में पूर्वाजित ज्ञानजल के कारण उपाध्याय का कूप-रूप तो रह सकता है परन्तु उसकी अक्षीयमाणता क्षण-क्षण में क्षीण होती रहती है। सम्भवतः इसीलिये कहा गया है—

अपूर्वः कोऽपि कोषोऽयं दृश्यते तव भारती ।
व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायाति सञ्चयात् ॥

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा उत्स शब्दार्थ इस प्रकार किया गया है "उन्दन्ति येन तं कूपम्, उत्समिति कूप नामृ निरु० ३/२३। कूपमिव जलेन क्लिन्नम्, कूप इव तृप्तिकरः,उन्दन्ति यस्मात् स कूप इव(पुरुषः)। अर्थात् कूप की क्लिन्नता यहाँ स्नेह का द्योतन करती है। स्नेह तृप्तिकर स्वयमेव होता है अतः उपाध्याय ज्ञान कोष होते हुए स्नेह की जीवित मूर्ति के रूप में भी स्वयं को प्रस्तुत करे। कूप शब्द से उपाध्याय की स्वस्थानाधिष्ठातृता निश्चय ही अभि-व्यञ्चित हो रही है। जिस प्रकार कूप एक स्थानस्थ रह कर आने वालों की जलदान द्वारा तृप्ति करता है उसी प्रकार उपाध्याय भी अपनी पीठ पर अधि-ष्ठित होता हुआ अक्षय ज्ञान निधि का निरन्तर वितरण करता रहता है। यदि उपाध्याय की व्युत्पत्ति करें तो इस प्रकार होगी "उपेत्यअधीयतेऽस्मादित्युपा-ध्यायः" अर्थात् जिसके समीप जाकर अध्ययन किया जाता है वह उपाध्याय संज्ञा को प्राप्त करता है। समग्र उपनिषत् साहित्य इस दृष्टि से औपाध्यायिक प्रवृत्ति का द्योतक है। यद्यपि अधुनातन जगत में चिन्तन परम्परा भिन्न है, अद्यतनीन विचार से तो "शिष्यमुपेत्य योऽध्यापयाति स उपाध्यायः" यह अर्थ किया जाता है, परन्तु यह अर्थ प्राक्काल में अभीष्ट नहीं था, क्योंकि सभी प्राचीन ग्रन्थों के शिक्षा प्रसंगों में शिक्षक को पूर्वारणि तथा शिष्य को उत्तरारणि के रूप में स्वीकृत किया गया है, पूर्वारणि के समीप उत्तरारणि को ही आना होता है। पूर्वारणि जहाँ उसका स्थान है वहीं प्रतिष्ठित रहती है। गुरुकुलों अथवा शिक्षण संस्थानों में आज भी विद्यार्थियों का प्रविष्ट होना इसका प्रमाण है। उपाध्याय की इस गौरवमयी स्थिति को ध्यान में रखते हुए आचार्य पाणिनी के "आख्यातो-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पयोगे" १/४/२८ सूत्र का उदाहरण नियमपूर्वक विद्यास्वीकरण में "उपाध्याया-दधीते" दिया है जिससे शिष्य का शिक्षक के समीप गमन सिद्ध हो रहा है ।

उपाध्याय का विपश्चित् रूप—उपाध्याय को वैदुष्य से परिपूर्ण होना चाहिये । क्योंकि उसका प्रमुख कार्य अध्यापन है अतः विद्यार्थी की समस्त शंकाओं का निवारण करना उपाध्याय का प्रमुख कर्त्तव्य है । यह तभी सम्भव हो सकता है जब कि उपाध्याय का विशद अध्ययन एवं मनन होगा । कोई भी विद्या चार प्रकार से फलवती मानी गयी है, अर्थात् अधीति, बोध, आचरण एवं प्रचारण के द्वारा विद्या का पूर्ण विकास होता है । यह विकास उपाध्यायश्रित ही स्वीकरणीय है तथा उक्त परम्परा के निर्वाहार्थ उपाध्याय का विद्वानों की श्रेणी को निजाभिख्या से अलंकृत करना परम कर्त्तव्य है ।

उपाध्याय वाणी का पिता है - उपाध्याय को "पितर वक्वानाम्" कह कर वाणी के पिता के रूप में स्वीकार किया गया है । स्वामी दयानन्द जी ने वक्वा के विद्वज्जन, वक्ता, भाषण वा उपदेश परम्परा आदि अनेक अर्थ किए हैं । इसी प्रकार पिता के भी पालक, जनक, विद्वान्, सूर्य, पालयिता वा अध्यापक आदि अनेक अर्थ किए हैं (वैदिक कोष) । इस प्रकार यह तो निश्चित ही है कि समस्त वाक् प्रसर उपाध्याय का निर्देशन प्राप्त करता हुआ ही गति में आता है । इसीलिए उपाध्याय को वाणी का पिता कहा गया है । यहाँ यह चिन्तना अवश्य करणीय है कि जिस प्रकार एक पिता अपनी पुत्री को गुणकर्मानुसार ही उसके योग्य पति को देता है, उसी प्रकार उपाध्याय का भी यह कर्त्तव्य है कि वह पात्र का गुण-कर्म एवं स्वभाव देखकर ही विद्या के विभिन्न रूपों का सूक्ष्म निरीक्षण करके प्रदान करे । इसके लिए उपाध्याय को मनोवैज्ञानिक होना चाहिये क्योंकि छात्र की मनःस्थिति का यथारूप जब तक स्पष्ट नहीं होगा तब तक प्रदत्त विद्या फलवती नहीं होगी । जब-जब उपाध्याय ने किसी भय अथवा प्रलोभनवश वाणी का असत्यपात्र में आधान किया है, तभी वाक् सरिता की पावनता कुछ मलीमस हुई है । अतएव निरुक्तकार ने इन पंक्तियों का उल्लेख कर दिया--

विद्या हवै ब्राह्मणमाजगाम, गोपाय माशेवधिष्टेऽहमस्मि ।
असूयकायानृजवेऽयताय न मा ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम् ।।१।।

य आतृणत्त्यवितथेन कर्णावदुःखं कुर्वन्नमृतं संप्रयच्छन् ।
तं मन्येत पितरं मातरं च तस्मै न द्रुह्येत्कतमच्चनाह ।।२।।

अध्यापिता ये गुरुं नाद्रियन्ते विप्रा वाचा मनसा कर्मणा वा ।
यथैव ते न गुरोर्भोजनीयास्तथैव तान्न भुनक्ति श्रुतं तत् ।।३।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यमेव विद्या शुचिमप्रमत्तं मेधाविनं ब्रह्मचर्योपपन्नम् ।
यस्ते न द्रुध्येत् कतमच्चनाह तस्मै मा ब्रूया निधिपाय ब्रह्मन् ।।४।।

निरुक्त अ० २ ।

वाणी का पिता कहलाने का अधिकारी उपाध्याय तभी है जब कि वह वाणी की आवाज को सुनता है। जिस प्रकार लोक में नपुंसक को दी गई कन्या पुत्रवती नहीं होती है उसी प्रकार अपात्र प्रदत्त बिद्या फलवती नहीं होती है । यहाँ एक शंका हो सकती है कि विद्या का क्षेत्र सभी के लिए है फिर पात्र-अपात्र का प्रश्न कैसा ? वास्तविकता यह है कि अपात्र से अभिप्राय यह नहीं है कि वह सर्वथा अपात्र है अपितु उसकी बौद्धिक एवं चारित्रिक क्षमता के आधार पर यहाँ पात्र-अपात्र का भाव है। जिस समय छात्र की जितनी तथा रुचि के अनुसार जैसी बौद्धिक क्षमता है वही उसकी पात्रता है और उसी के अनुसार उसे विद्यादान होना चाहिये। यह कार्य कुशल उपाध्याय का है कि वह देखे कौन छात्र किस-किस योग्यता का है, उसको उस समय, उसी स्तर की विद्या का दान अपेक्षित है। अतएव ऐसे कुशल उपाध्याय को पितरं वक्वानम् कहा गया है।

उपाध्याय का सत्यवाक् रूप—उपाध्याय को सत्यवाक् होना प्रार्थित है, क्योंकि सत्यता के अभाव में उपाध्याय प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं कर सकता। यह सत्यवाक् होना उसके चारित्रिक पक्ष की ओर संकेत करता है। उपाध्याय का जहाँ विद्वान्,चिन्तक,गवेषक,कुशलवक्ता होना अपेक्षित है, वहीं उसका 'सत्यवाक्' होना भी अपेक्षित है। यहाँ सत्यवाक् का एक अभिप्राय यह भी है कि उपाध्याय सत्योपदेष्टा, आप्त पुरुषों के वाक्यों को ही अपनी वाणी का विषय बनाकर अध्ययन-अध्यापन में प्रवृत्त रहे।

इस प्रकार वेद-मन्त्र में हमें उपाध्याय का स्वरूप दृष्टिगत होता है। स्मृति-ग्रन्थों में भी उपाध्याय की प्रवृत्ति को वर्ण्य विषय बनाया गया है। मनुस्मृति में उपाध्याय के स्वरूप को उस अध्यापक के साथ समन्वित किया है जो जीविका हेतु अध्यापनादि में प्रवृत्त होता है, जैसे—

एक देशं तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः ।
योऽध्यापयति वृत्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते ।। मनु० २/१४१

मनु जी ने वृत्ति हेतु अध्ययन एवं अध्यापन में रत ब्राह्मण को उपाध्याय की संज्ञा दी तथा उसको आचार्य की प्रतिष्ठा की अपेक्षा कम प्रतिष्ठा प्रदान की। मनु जी "उपाध्यायान्दश आचार्य" मनु० २/१४५ कह कर स्पष्टतया दश उपाध्यायों की अपेक्षा एक आचार्य को गुरुता प्रदान करते हैं। क्योंकि वृत्ति हेतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपाध्याय का जीवन एक वणिक् व्यक्ति के समान ही स्वीकार किया गया है। जैसे कि—"यस्यागम: केवलं जीविकायै तं ज्ञान पण्यं वणिजं वदन्ति" अर्थात् केवलमात्र धनार्जन के लिये शास्त्राभ्यास करने वाला ब्राह्मण एक व्यावसायिक का दृष्टिकोण अपना कर हो चलता है ।

याज्ञवल्क्य जी ने अपनी स्मृति में उपाध्याय के स्वरूप का वर्णन करते हुए मनु-स्मृति का पूर्णरूप से अनुकरण किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि याज्ञवल्क्य के समक्ष समाज में व्यवहारिक रूप में मनु द्वारा निर्दिष्ट उपाध्याय का स्वरूप प्रचलित था अतएव उन्होंने भी –"एक देशमुपाध्याय:" या० स्मृति १/३५ कहकर संक्षेप में उपाध्याय का स्वरूप वर्णित किया है । यहाँ यह द्रष्टव्य है कि याज्ञवल्क्य यह तो स्वीकार करते हैं कि वेद के एक देश को पढ़ाने वाला उपाध्याय है किन्तु वह वृत्यर्थ पढ़ाता है इसीलिए उपाध्याय है, इसका कोई निर्देश स्पष्टतया नहीं किया है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में भी उपाध्याय को अध्यापक के रूप में स्वीकार करते हुए पूर्ण प्रतिष्ठा प्रदान की गयी है, वहीं आचार्य के समान ही उपाध्याय का सम्मान किया गया है जैसे कि—"तथा समादिष्टेऽध्यापयति" (आप० धर्म० सू० १/२/७/२८)। अर्थात् ब्रह्मचारी को गुरु अथवा आचार्य के समान हो, आचार्य के आदेश से अध्यापन करने वाले उपाध्याय के (अध्यापक) प्रति भी सत्कार करना चाहिये । यहाँ आचार्यवत् उपाध्याय का सम्मान करणीय है।

महाभाष्यकार ने भी अपने भाष्य में अध्यापक के लिये उपाध्याय शब्द का ही प्रयोग किया है। जैसे कि—"एवमुक्त उपाध्यायेनोपाध्यायानीमपृच्छत्" म० भा० १/८/८६। यहाँ उपाध्याय की पत्नी को उपाध्यायानी शब्द से कहा गया है। कहीं तो उपाध्यायी शब्द का भी प्रयोग हुआ है, किन्तु अध्यापन कर्म में प्रवृत्त महिला के लिये तो उपाध्याया शब्द का प्रयोग होता है। उपर्युक्त कथन से इतना तो स्पष्ट है कि उपाध्याय का सीधा सम्बन्ध अध्यापन कर्म से है ।

मानव-समाज में ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में यदा-यदा प्रगति हुई है, उस प्रगति का श्रेय उपाध्याय वर्ग को ही रहा है । सामाजिक-चेतना को उजागर करने का उत्तरदायित्व उपाध्याय पर ही है किन्तु इसके साथ-साथ समाज के द्वारा उपाध्याय को पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त होनी चाहिये । हम देखते हैं कि विदेशों में आज भी उपाध्याय का जो सम्मान है वह सम्मान यहाँ नहीं है । अतः यदि मानव समाज की संचरना में चारूता का आधान करना है तो ब्राह्मण वर्ग के प्रतिष्ठित संभाग उपाध्याय को उचित सम्मान देना ही होगा ।

—०—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान परिस्थितियों में युवाओं की भूमिका

देव आशीष भट्टाचार्य
एम० एस-सी०, एम० ए० (प्रथम वर्ष)

आज मैं एक ऐसे विषय को छू रहा हूँ जिसका सीधा सम्बन्ध हम युवाओं एवं छात्रों से है। आज दुनियाँ में छात्र आन्दोलन हिचकोले खा रहा है, उसका भविष्य अनिश्चय की ओर है। आज जब हम अन्तर्राष्ट्रीय युवा वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं तो हमारा नैतिक दायित्व बनता है कि हम स्थिति पर गम्भीरता-पूर्वक विचार करें और युवाओं एवं छात्रों के भविष्य का उचित समाधान ढूंढें ताकि युवा एवं छात्र, जो भविष्य का प्रकाशपुंज है तथा भावी विश्व का निर्माता है, कहीं वह एक ऐसे मार्ग को न अपना ले जहाँ उसका पतन अवश्य-म्भावी हो जाए, बल्कि वह एक ऐसे मार्ग को चुने जिससे वह पूरी दुनियाँ में समता और समृद्धि की प्रतिधारा बहाए।

यदि हम पूरी दुनियाँ के छात्र एवं युवा-समुदायों पर दृष्टि डालें तो पायेंगे कि दुनियाँ का युवा एवं छात्र कम से कम तीन या उससे अधिक भागों में बंटा है, इन तीनों ग्रुपों के कार्यरूप तथा व्यवहार में कहीं भी समानता नहीं। आखिर ऐसा क्यों? यह ठीक है और हम मानते हैं कि दुनियाँ का युवा कार्यरूप तथा व्यवहार में एक जैसा नहीं हो सकता क्योंकि वह अधिक आत्मिक विचारों, आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टिकोणों से काफी भिन्न है। फिर भी दुनियाँ में कुछ ऐसे ज्वलन्त प्रश्न हैं जिनपर दुनियाँ भर के सभी युवाओं का रुख एक जैसा होना चाहिए। आज विश्व एक ऐसे कगार पर पहुँचा हुआ है कि वह (विश्व) कब समाप्त हो जाये यह किसी को पता नहीं। दुनियाँ परमाणुवीय हथियारों की दौड़ मे इस प्रकार सम्मिलत हो गई है कि अनजाने में की गई एक छोटी भूल सम्पूर्ण मानवता के लिये अभिशाप बन सकती है। स्टार वार के रूप में एक ऐसी खतर-नाक वैज्ञानिक प्रणाली का उदय हो रहा है जो सम्पूर्ण दुनियाँ को तबाह कर सकती है, मानवता को सड़ा-सड़ा कर मार सकती है। इतना सब कुछ हो जाने के बावजूद वह युवा एवं छात्र समुदाय जो दुनियाँ में सबसे अधिक प्रगतिशील एवं जागरूक व मानववादी होने का दम्भ भरता है, वह चरस, हैरोइन, स्मैक व कोकीन के नशे में धुत इन साम्राज्यवादी व सामान्ती शक्तियों से लड़ने के बजाय एक ऐसी हिप्पी व पलायनवादी संस्कृति का उदय कर रहा है जो स्वयं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके लिये तो घातक है ही, साथ ही में उनका यह विकृत रूप दुनियाँ के तीनों किस्म के देशों तथा विकासशील देशों के युवकों की मनःस्थिति को भी छल रहा है ।

यह थी उस युवा एवं छात्रसमुदाय की कहानी जिन्हें आर्थिक सम्पन्नता व अति सामाजिक जागरूकता खाए जा रही हैं । अब मुड़ते हैं अपने देश के युवा एवं छात्र समुदाय पर । अपने देश के युवा एवं छात्रसमुदाय को अपनी पुरातन पीढ़ी से मिली है साम्प्रदायिकता की आग, भाई-भतीजावाद का तूफान, भ्रष्टाचार का तूफान और बेरोजगारी का सैलाब और इन सबसे बच जाता है तो उस पर असहनीय चोट करती है मैकाले की वह शिक्षा पद्धति जिसे उसने एक साम्राज्यवादी षड्यन्त्र के तहत भारत के लिए, भारत को हमेशा ब्रिटिश उपनिवेश बनाये रखने के लिये तैयार किया था । और इस षड्यन्त्र को जारी रखे है हमारी यह वर्तमान समाजवादी लेबल वाली सरकार । आज की शिक्षा पद्धति कितनी उपहासपूर्ण है इस बात का अन्दाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि इस शिक्षा पद्धति को भारत के राष्ट्रपति से लेकर आम नागरिक तक दोष देता है और उसमें आमूल परिवर्तन की बात करता है । पर इस परिवर्तन की हिम्मत नहीं जुटा पाता । शिक्षा के आमूल परिवर्तन से निहित स्वार्थों पर चोट पहुँचेगी । जिस दिन शिक्षा का कलेवर बदल जायेगा उसी दिन देश की शिक्षा बदल जाएगी, राजनीति की दिशा बदल जाएगी । साम्प्रदायिकता की आबोहवा में परिवर्तन आ जायेगा, आज युवकों को एकता कितनी भावात्मक व जज्बाती है इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि छोटा-मोटा भी शारीरिक संघर्ष साम्प्रदायिकता का स्वरूप ग्रहण कर लेता है और युवक इनका विरोध करने के बजाय जातीय, क्षेत्रीय व धार्मिक आधारों में बँट जाता है जिसके कारण इन ताकतों को, जो देश को एकता व अखण्डता को तोड़ना चाहते हैं, बल मिलता है । आज जरूरत है युवक व छात्र ऐसे मंच से जुड़ें जिनकी सोच समाजवादी व मानववादी है । अगर युवक ऐसे संघों से जुड़ता है तो निश्चय ही वह उन ताकतों से लड़ने के लिये स्वतः आगे आएगा जो देश को एकता के लिए खतरा पैदा कर रहे हैं । आज मुझे खुशी इस बात को है कि देश की जनता ने एक ऐसे व्यक्ति को चुना है जो स्वच्छ व ईमानदार है । और जैसा माननीय प्रधानमन्त्री खुद अपने प्रसारणों में यह बार-बार आश्वासन दे भी रहे हैं कि जीवन के हर क्षेत्रों में आमूल परिवर्तन किया जाएगा, खासतौर से शिक्षा, आर्थिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में, स्तुत्य है ।

—०—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिसर-परिक्रमा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द ने हिन्दी पत्रकारिता को नई चेतना दी !

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में दयानन्द निर्वाण शताब्दी व्याख्यान-माला के अन्तर्गत दयानन्द और हिन्दी पत्रकारिता पर पद्मश्री पण्डित क्षेमचन्द्र सुमन तथा दयानन्द और प्रेमचन्द पर ट्रिब्यून तथा स्टेट्समैन के पूर्व-सम्पादक तथा अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध हिन्दी लेखक जीवनीकार श्री मदनगोपाल के व्याख्यानों का आनन्द नगर के प्रबुद्ध नागरिकों, पत्रकारों तथा साहित्यकारों ने लिया। विश्वविद्यालय के कुलपति बलभद्रकुमार हूजा ने कहा कि दयानन्द यों तो बीसवीं शती के पूर्व नवचेतना तथा राष्ट्रीय जागरण का संदेश लेकर आए थे पर आज के मानवधर्म, लोकतन्त्र, सामाजिक समानता, नैतिक तथा राष्ट्रवादी भावना और भारत की अखण्डता की रक्षा के माहौल में उनकी प्रासंगिकता अधिक बढ़ गई है। स्वामी जी ने सुनहरे भारत के निर्माण की जो सभावनाएँ व्यक्त की थीं, उनकी पूर्ति की दिशा में प्रधानमन्त्री राजीव गाँधी नये युग का शिलान्यास कर रहे हैं।

भारत साधु समाज के मन्त्री डा० श्यामसुन्दर दास की अध्यक्षता में सम्पन्न प्रथम व्याख्यान संगोष्ठी में श्री क्षेमचन्द्र सुमन ने कहा कि स्वामी जी आधुनिक चेतना के प्रखर पुरुष थे। मिस्टर ग्रिफ़िथ और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की तरह भारतेन्दु की कविवचनसुधा के लेखक होते हुए उन्होंने आर्य विचारधारा के पत्रों के प्रकाशन की प्रेरणा दी। १८७० में शाहजहाँपुर से मुंशी बख्तावरसिंह ने उनकी प्रेरणा से आर्य समाज की स्थापना से पाँच वर्ष पूर्व आर्य दर्पण नामक साप्ताहिक पत्र निकाला। १८८९ में स्वामी जी के शिष्य समर्थदान ने राजस्थान समाचार निकालकर आर्यभाषा के पत्रों को सर्वथा नई विचार-भूमि प्रदान की। उदयपुर से सज्जन कीर्तिसुधाकर भी उनकी प्रेरणा से प्रकाशित हुआ जो बाद में सरकारी गजट के रूप में परिणत हो गया। मेरठ में स्वामी जी छः बार आए और १८७८ में उनके प्रभाव से आर्य समाचार का प्रकाशन हुआ। स्वामी जी के निधन के पाँच वर्ष बाद स्वामी श्रद्धानन्द ने सद्धर्म प्रचारक का सम्पादन-प्रकाशन शुरू किया। गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना तो जैसे हिन्दी पत्रकारिता के लिए वरदान सिद्ध हुई। उनके पुत्र इन्द्र जी ने दैनिक विजय, अर्जुन, नवराष्ट्र और जनसत्ता के सम्पादक के रूप में हिन्दी पत्रकारिता की जो नींव डाली, उसी पर आज उसका यह भव्य भवन खड़ा है। अपने ३६ पृष्ठों के सुन्दर मुद्रित भाषण में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं का ब्यौरेवार विवरण देते हुए श्री सुमन ने बताया कि आर्य समाज ने हिन्दी पत्रकारिता को कितने नये आयाम दिए। भारत, सूरीनाम, फीजी, मारीशस, ब्रिटिश गयाना, बर्मा, थाइलैण्ड के पत्रों का जिक्र करते हुए विद्वान वक्ता ने हिन्दी पत्रकारिता के उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलभ्य तथा अज्ञात स्रोतों का परिचय दिया जिनसे शोधार्थियों का मार्गदर्शन हो सकता है। इस अवसर पर विश्वविद्यालय की त्रैमासिक शोध पत्रिका प्रह्लाद के 'श्रद्धानन्द, रामचन्द्र शुक्ल तथा इन्दिरा गाँधी स्मृति अंक' का विमोचन करते हुए श्री सुमन ने प्रह्लाद के सम्पादक डा० विष्णुदत्त राकेश को इस महत्वपूर्ण कार्य के लिये बधाई दी।

दूसरी व्याख्यान संगोष्ठी प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् आचार्य प्रियव्रत वेद-मार्तण्ड की अध्यक्षता में शुरू हुई। 'दयानन्द और प्रेमचन्द' पर बोलते हुए श्री मदनगोपाल ने कहा कि प्रेमचन्द पर दयानन्द का गहरा प्रभाव था। प्रेमचन्द आर्य समाज के बाजाब्ता सदस्य थे। वह १९२६ में गुरुकुल कांगड़ी आए थे और यहाँ से लौटकर उन्होंने माधुरी में गुरुकुल शिक्षा पद्धति पर अपने संस्मरणात्मक लेख भी लिखे थे। अपने निधन के कुछ ही माह पूर्व लाहौर आर्य समाज के अन्तर्गत आर्यभाषा सम्मेलन सभापति पद से बोलते हुए उन्होंने कहा था कि यह समाज के अन्तर्गत उन भाषाओं का सम्मेलन है जिनमें आय समाज ने धर्म का प्रचार किया है। मैं आर्य समाज को जितनो धार्मिक संस्था समझता हूँ, उतनी तहजीबी सस्था भी समझता हूँ। हरिजनों के उद्धार में सबसे पहले आर्य समाज ने कदम उठाया, लड़कियों की शिक्षा की जरूरत को सबसे पहले उसने समझा। जाति-भेदभाव और खान-पान के छूत-छात और चौके-चूल्हे की बाधाओं को मिटाने का गौरव उसी को प्राप्त है। और आर्य समाज ने हमारी भाषा के साथ जो उपकार किया है, उसका सबसे उज्ज्वल प्रमाण यह है कि दयानन्द ने इसी भाषा में सत्यार्थ प्रकाश उस समय लिखा जब उसकी उतनी चर्चा न थी। श्री मदनगोपाल ने कहा कि भारतेन्दु ने एक ओर हरिश्चन्द्र मैग-जीन में सहायक सम्पादकों की सूची में दयानन्द जी का नाम गौरव से छापा तो दूसरी ओर प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों और कहानियों के माध्यम से महर्षि का संदेश घर-घर पहुँचाया। उन्होंने गबन, प्रेमा तथा खूने सफेद के आधार पर एक ओर विधवा-विवाह, छुआछूत की समस्या को उठाया तो दूसरी ओर वरदान में नायक का चरित्र दयानन्द पर ढ़ाला। स्वामी दयानन्द और प्रेम-चन्द दोनों राष्ट्रीय विचारधारा के महापुरुष थे। दोनों का आधार था हिन्दू-मुस्लिम मतभेदों को दूर करना। कायाकल्प में प्रेमचन्द की यही भूमिका स्पष्ट हुई। स्वदेशी के प्रचार में भी दयानन्द का संदेश प्रेमचन्द ही लेकर आगे बढ़े।

व्याख्यानमाला के संयोजक डा० विष्णुदत्त राकेश ने श्री क्षेमचन्द्र सुमन और श्री मदनगोपाल के कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए व्याख्यानमाला के उद्देश्य को स्पष्ट किया।

भोपालसिंह त्यागी
एम० ए० हिन्दी (प्रथम वर्ष)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी में कुलपति सम्मेलन

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में १८, १९, २० जनवरी ८५ को आयोजित उत्तर-क्षेत्रीय कुलपति सम्मेलन के सम्पन्न होने से महर्षि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द तथा महात्मा गांधी की वह चिर–आकांक्षा साकार हुई कि अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों को समाज में समान स्तर प्रदान कर उन्हें राष्ट्र की मूल-धारा के साथ जोड़ दिया जाय। आर्य समाज अपने स्थापना काल से ही इस दिशा में प्रयत्नशील रहा पर विश्वविद्यालयीय स्तर पर आर्य समाज के इस कार्य को सार्वजनिक तौर पर समर्थन इस सम्मेलन में मिला। महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी के रचनात्मक अभियानों में यह एक उल्लेखनीय उपलब्धि है। इस सम्मेलन में लखनऊ, फैजाबाद, गोरखपुर, पंतनगर-नैनीताल, काशी विद्यापीठ, कृषि विश्वविद्यालय हिसार, पंजाब विश्वविद्यालय, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, जामिया मिलिया, मेरठ, गढ़वाल तथा रुड़की विश्वविद्यालयों के कुलपतियों तथा कुलपति-प्रतिनिधियों ने भाग लेकर जहाँ अनुसूचित तथा पिछड़े वर्गों की समस्याओं पर शैक्षिक तथा आर्थिक संदर्भों में विचार-विमर्श किया, वहाँ गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की बुनियादी विशेषताओं तथा उनकी पूर्ति के लिये कुलपति बलभद्रकुमार हूजा द्वारा उठाए गए कदमों की भी भरपूर सराहना की।

भारतीय विश्वविद्यालय संघ की प्रेरणा से सम्पन्न इस सम्मेलन में शिक्षा के क्षेत्र में आरक्षण की नीति को दस वर्ष तक जारी रखने की सिफारिश करने के साथ-साथ, आरक्षण नीति के पुनर्मूल्यांकन की मांग की गई। विचारकों की दृष्टि में आरक्षण नीति का पुनर्मूल्यांकन आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक, मनोवैज्ञानिक तथा राष्ट्रीय दबावों और उनके प्रभावों के तहत किया जाना चाहिए। सम्मेलन की यह आम राय थी कि आरक्षण का आधार आर्थिक पिछड़ापन, व्यवहारिकता, आवश्यकता तथा पर्याप्तता होने चाहिएँ, केवल जातिगत आधार नहीं। काशी विद्यापीठ के पूर्व कुलपति, पूर्व साँसद तथा प्रसिद्ध समाजशास्त्री डा० राजाराम शास्त्री ने विश्वविद्यालय में आयोजित संगोष्ठी में इस सिफारिश पर अपनी सहमति व्यक्त की। सम्मेलन द्वारा की गई अन्य मुख्य सिफारिशों में आरक्षित वर्ग के छात्रों के लिए तकनीकी तथा व्यवसायोन्मुखी शिक्षा अनिवार्य करने, मातृभाषाओं में प्रतियोगी परीक्षाओं में छूट देने, पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा के लिए प्रोत्साहन देने, अलग शिक्षा संस्थाएँ खोलने, इस वर्ग के छात्रों को मुफ्त भोजन, पुस्तकें, कपड़े, वजीफे, प्रशिक्षण के लिए विशेष कक्षाएँ तथा अन्तरिम पाठ्यक्रम चालू करने की योजनाएँ उल्लेखनीय हैं। सम्मेलन ने यह भी माँग की कि विश्वविद्यालयों में शिक्षक तथा विद्यार्थी अपने नाम के साथ जाति-सूचक शब्दों का प्रयोग न करें तथा समान स्तर और व्यवहार पर शिक्षा प्रदान करें। इसके लिए भावात्मक वातावरण भी बनाना होगा और एक मजबूत प्रचार तंत्र की स्थापना करनी होगी ।

इस तीन दिवसीय सम्मेलन का उद्घाटन बी० एच० ई० एल० के कम्प्यूटर हाल में श्री टी० एन० चतुर्वेदी, नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक, भारत सरकार ने दीपदान में दीप जलाकर तथा उद्घाटन भाषण देकर किया। श्री चतुर्वेदी ने आरक्षण को सभी वर्गों के विपुल किन्तु विपन्न लोगों के बच्चों के लिए आवश्यक बताते हुए कहा कि आरक्षण को प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर विशेष रूप से लागू करना चाहिए। उन्होंने कहा कि विकास किसको कितना मिला, इसी बात से माना जा सकता है और शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जिसमें हमें अधिक से अधिक विकास मिल सकता है । इस माध्यम के सुधार की बड़ी आवश्यकता है। शिक्षा आज हमें जाति, धर्म, वर्ग, भाषा आदि परिस्थितियों से मुक्ति न दिलाकर हमारे स्वार्थों को तार्किक आधार दे रही है। विकास के लिए शिक्षा का न्यायपूर्ण बंटवारा जरूरी है। सम्मेलन के उद्घाटन-सत्र की अध्यक्षता लखनऊ विश्वविद्यालय के कुलपति डा० आर० एस० मिश्र ने की तथा संगोष्ठियों के लिए प्रस्तावना-भाषण दिया श्री अंजना कुमार, संयुक्त सचिव भारतीय विश्वविद्यालय संघ ने।

गुरुकुल विश्वविद्यालय के कुलपति बलभद्रकुमार हूजा ने स्वागत भाषण में गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति को प्रतिपादित करते हुए कहा कि इस पद्धति को स्वीकार कर लेने से आरक्षण की समस्या ही नहीं रह जाती । गुरुकुल जाति-पाँति तथा असमानता से रहित समान स्तर, समान शिक्षा तथा समान विकास की धारा में क्रियात्मक विश्वास रखता है तथा पिछले ८५ वर्षों से राष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत स्नातकों पर गर्व करता है जिनकी जात-पाँत का पता आज भी किसी को नहीं है और जो उद्देश्य के साथ राष्ट्रीय विकास के लिए समर्पित हैं। गुरुकुल विद्यालय के छात्र तथा कन्या गुरुकुल की छात्राओं ने सस्वर मंत्र पाठ कर मंगलाचरण किया ।

मुख्य समारोह में, जिसका संचालन डा० विष्णुदत्त राकेश, रीडर हिन्दी विभाग गुरुकुल कांगड़ी, कर रहे थे, वक्ताओं ने बार-बार इस बात पर जोर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया कि वर्तमान परिस्थितियों में आरक्षण जरूरी है, पर इसे अनिश्चित काल के लिए लागू रखना न्यायसंगत नहीं ।

सम्मेलन के समन्वयक प्रो० ओम्प्रकाश मिश्र तथा सह-समन्वयक डा० राधेलाल वार्ष्णेय ने कुलसचिव श्री वीरेन्द्र अरोड़ा के सुदक्ष सहयोग से इस आयोजन को सफल बनाने में अथक् परिश्रम किया । सम्मेलन के प्रतिनिधियों ने अपने उद्गार व्यक्त करते हुए कुलपति, कुलसचिव तथा समन्वयक को उनके व्यवस्थित आयोजन तथा आतिथ्यसत्कार के लिये मुक्त कंठ से बधाई दी ।

विविध परिचर्चा सत्रों में जातिगत असमानता के आधार, जाति की अवधारणा तथा वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आरक्षण की आवश्यकता और पुनर्मूल्यांकन की संभावनाओं पर विद्वानों ने अपने आलेख प्रस्तुत किए । एक परिचर्चा सत्र की अध्यक्षता पंतनगर के कुलपति डा० कृपानारायण, पूर्व सचिव उत्तर प्रदेश सरकार, द्वितीय सत्र की अध्यक्षता हिसार के कुलपति डा०एल०डी० कटारिया तथा समापन सत्र की अध्यक्षता आचार्य प्रियव्रत वेदमार्तण्ड, पूर्व कुलपति गुरुकुल विश्वविद्यालय ने की । विभिन्न संगोष्ठियों की बहस में हिस्सा लेने वालों में जामिया मिलिया के डा० गान्धी, फैजाबाद के डा० वाशी, गोरखपुर के डा० एल० बी० त्रिपाठी, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की डा० शान्ता कृष्णन, पंजाब विश्वविद्यालय के डा० वी० बी० भनोत तथा श्री एम० एल० भाटिया, रुड़की विश्वविद्यालय के डा० भरतसिंह, भारतीय विश्वविद्यालय संघ के संयुक्त सचिव श्री अंजनी कुमार, मेरठ विश्वविद्यालय के डा० ब्रजेन्द्र शर्मा, डा० कमलकान्त बुधकर तथा कु० निर्मल त्रेहन, काशी के डा० जी० शंकर, गुरुकुल के डा० हरगोपालसिंह, सदाशिव भगत, डा० विजय शंकर, डा० बी० डी० जोशी, डा० कृष्ण अवतार अग्रवाल, डा० सेंगर, लालनरसिंह नारायण, डा० नारायण शर्मा आदि विद्वान् प्रमुख रहे ।

प्रधानमन्त्री श्री राजीव गाँधी द्वारा शिक्षा की नीतियों में आमूल परिवर्तन करने की घोषणाओं के कारण यह सम्मेलन और इसके द्वारा की गई संस्तुतियाँ काफी महत्वपूर्ण सिद्ध होंगी । इससे पूर्व शान्ति निकेतन कलकत्ता, पूना तथा तंजौर में भी इस तरह के सम्मेलन हो चुके हैं । उत्तर भारत में इसी क्रम में चौथा सम्मेलन गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में हुआ ।

सम्मेलन में हिन्दुस्तान दैनिक, नवभारत टाइम्स दैनिक, जागरण, आज, पंजाब केसरी तथा पी०टी०आई० के संवाददाता भी उपस्थित हुए । सुप्रसिद्ध साहित्यकार तथा दिनमान के सम्पादक श्री कन्हैयालाल नन्दन, आकाशवाणी दिल्ली के श्री रमानाथ अवस्थी एवं आकाशवाणी नजीबाबाद के एस०हिन्दुवान ने तो बहस में भाग लेकर उसे प्राणवन्त बना दिया ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुलपतियों तथा सम्मेलन के प्रतिनिधियों के सम्मान में बी०एच०ई०एल० के महाप्रबन्धक श्री सी०एम० गुप्ता, उनके जन-सम्पर्क अधिकारी श्री चन्द्रकान्त सरदाना तथा अन्य अधिकारियों ने रात्रिभोज का आयोजन किया। तथा उससे पूर्व एक सांस्कृतिक सन्ध्या में दिल्ली पब्लिक स्कूल, केन्द्रीय विद्यालय, विद्या-मन्दिर इण्टर कालेज तथा आनन्दमयी सेवा सदन इण्टर कालेज के छात्र-छात्राओं ने राष्ट्रीय अखण्डता, भावात्मक एकता तथा युग-निर्माण की आकाँक्षा को जागृत करने वाले मनोहारी कार्यक्रम प्रस्तुत किए ।

यह पहला अवसर था जब कि नगर के विभिन्न वर्गों और क्षेत्रों के मान्य व्यक्ति आयोजनों में शामिल हुए तथा विश्वविद्यालय के विकास को देख कर इसलिए भी प्रसन्न हुए कि यह उनके नगर की उपलब्धि है। कनखल के प्रसिद्ध व्यवसायी तथा कांग्रेस के सक्रिय नेता श्री सुधीरकुमार गुप्ता ने प्रतिनिधियों के सम्मान में एक रात्रि भोज दिया जिसमें कुलपति हूजा तथा गुरुजनों के साथ उत्तरक्षेत्रीय विश्वविद्यालयों के कुलपति, प्रतिनिधि और नगर के सभ्रान्त नागरिक उपस्थित हुए। स्थानीय न्यायाधीश श्री अशोक कुमार सिंह इस अवसर पर विशेष रूप में उपस्थित थे। डा० काश्मीरसिंह भिण्डर तथा उनके सहयोगियों ने इस कार्यक्रम को सफलता के साथ सम्पन्न कराने में विशेष तत्परता दिखाई।

गुरुकुल विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में श्री जगदीश विद्यालंकार ने दिल्ली के पुस्तक विक्रेताओं के सौजन्य से एक अद्यतन पुस्तक प्रदर्शनी का आयोजन किया। इसका उद्घाटन श्री टी० एन० चतुर्वेदी ने किया । भारतीय विश्वविद्यालय संघ द्वारा प्रकाशित पुस्तकों का प्रदर्शन भी इस अवसर पर किया गया। इस प्रदर्शनी में वेद, संस्कृत, दर्शन, पुरातत्व संस्कृति, विज्ञान, मानविकी तथा शिक्षा प्रसार की सद्यः प्रकाशित शोध-स्तरीय पुस्तकें विशेष आकर्षण का केन्द्र रहीं।

इस सारे आयोजन को राष्ट्रीय स्तर के सभी हिन्दी, अंग्रेजी पत्रों ने प्रमुखता देकर रेखांकित किया। हिन्दुस्तान टाइम्स, टाइम्स आफ इण्डिया, इण्डियन एक्सप्रैस, हिन्दुस्तान दैनिक, नवभारत टाइम्स, जागरण, पंजाब केसरी, जनयुग आदि में समाचार प्रकाशित हुए तथा दिनमान में इसकी विस्तृत रिपोर्ट प्रकाशित हो रही है। स्थानीय अंग्रेजी साप्ताहिक हॉक ने विशेषांक प्रकाशित किया तथा स्थानीय दैनिक बद्री विशाल ने समाचार छापा। गुरुकुल पत्रिका, गुरुकुल प्रगति के विविध परिदृश्य वैदिक पाथ, प्रह्लाद तथा आर्य भट्ट के साथ अंग्रेजी तथा हिन्दी में विश्वविद्यालय की विकास-यात्राओं तथा सरकार द्वारा स्वीकृत योजनाओं और उनके तहत किये गये कार्यों का अंग्रेजी-हिन्दी में विवरण छाप कर सम्मेलन में वितरित कराया गया।

-०—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकष पर

(पुस्तक–समीक्षा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक का नाम — **कामायनी एक सह-चिन्तन**
सम्पादक — **डा० वचनदेव कुमार, डा० दिनेश्वर प्रसाद**
प्रकाशक — क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली (२८ शापिंग सेन्टर, करमपुरा)
पृष्ठ संख्या — १६६, मूल्य ८०/-

कामायनी प्रसाद जी की सर्वाधिक चर्चित काव्य-कृति है । उपाधि सापेक्ष और निरपेक्ष दृष्टि से कामायनी पर अनेक आलोचना-ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं । इतना होने पर भी नहीं कहा जा सकता कि कामायनी का काव्य-सौन्दर्य पूरी तरह उद्घाटित हो गया है । इसी कृति की यह विशेषता रही है कि एक ओर इस पर सर्जनाकारों ने विचार किया तो दूसरी ओर समीक्षकों की पैनी दृष्टि इसका हर कोना झाँक आई । निराला, पंत, दिनकर, मुक्तिबोध, आचार्य शुक्ल, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, डा० नगेन्द्र, डा० प्रेमशंकर, डा० फतहसिंह तथा डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना ने अपने ग्रन्थों में कामायनी के विविध परिदृश्यों का आकलन-विवेचन किया । कामायनी जैसी महान् कृति के लिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं । कामायनी के शब्दों में ही कहना चाहें तो कह सकते हैं—

मैं जभी तोलने का करती, उपचार स्वयं तुल जाती हूँ ।

डा० वचनदेव कुमार सर्जक-समीक्षक हैं । उन्होंने परीक्षोपयोगी दृष्टि से भी यदि संकलन-सम्पादन-समीक्षण किया है तो उसमें भी स्तरीय गहरे अध्ययन की छाप दिखाई पड़ती है । उनके 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' में यह बात बड़ी साफ देखी जा सकती है । 'कामायनी एक सह-चिन्तन' उनकी ऐसी ही कृति है जिसमें कामायनी के परम्परित और आधुनिक पक्षों पर, विवादास्पद पक्षों पर भी, गंभीर विचार हुआ है । यह पहला समीक्षा-संकलन है जिसमें विवेच्य कवि के समकालीन, समान विचारशील तथा समस्तरीय कवियों निराला और सुमित्रानन्दन पन्त से लेकर छायावादोत्तर प्रबन्धकार कवि रामधारीसिंह दिनकर तथा नई कविता के उन्नायक मुक्तिबोध तक के निबन्ध संकलित हैं । निराला का यह कथन कि हिन्दी के युगान्तर साहित्य के जो तीन प्रजापति हैं, उनमें प्रसाद जी की एक "श्रद्धा देवो वै मनुः" हैं । बाकी दो हैं, स्वर्गीय प्रेमचंद और बाबू मैथिलीशरण—इस तथ्य का परिचायक है कि कामायनीकार मात्र कवि नहीं, युगद्रष्टा साहित्यकार हैं । दो पृष्ठों के लघु लेख में निराला जी ने कामायनी की मूल चेतना को पकड़ने का प्रयत्न किया है, उनका यह निष्कर्ष कितना सटीक है कि मनुष्य-मन का इतना अच्छा चित्र जिस समझदारी के साथ इस पुस्तक में चित्रित हुआ, मैंने हिन्दी और बंगला के नवीन साहित्य में अन्यत्र नहीं देखा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंत जी के दो लेख 'यदि मैं कामायनी लिखता' तथा 'कामायनी पुनरावलोकन' भी इसमें संकलित हैं। पंत जी इस रचना की प्रबन्धात्मकता के प्रति आश्वस्त भी हैं और संदिग्ध भी। एक ओर वह कहते हैं कि छायावाद केवल स्वप्न सम्मोहन ही बनकर रह जाता यदि प्रसाद जी उसमें कामायनी जैसी महाकाव्य-सृष्टि की अवतारणा न कर जाते तो दूसरी ओर कहते हैं कि उसका कथानक संक्षिप्त रंग-मंच है, उसमें न विस्तार, न विवरण और किसी प्रकार की प्रगाढ़ता, हृदय-मंथन अथवा भावों के उत्थान-पतन की सूक्ष्मता भी नहीं है। हाँ, कला-चेतना की दृष्टि से कामायनी छायावादी युग का प्रतिनिधि काव्य कही जा सकती है। उद्देश्य की दृष्टि से भी वह किसी प्रकार का निदान प्रस्तुत नहीं करती अपितु 'आधुनिक युग के विकासवाद से काल्पनिक एवं मनोवैज्ञानिक स्तर पर प्रेरणा-ग्रहण कर तथा अध्यात्म की दृष्टि से वह चिरप्राचीन व्यक्तिवादी, विकसित एवं समरस नित्य आनन्द चैतन्य का आरोहणमूलक आदर्श उपस्थित कर, भारतीय पुनर्जागरण के काव्ययुग के अन्तिम स्वर्ण परिच्छेद की तरह समाप्त हो जाती है।' जीवन-मूल्य, नवीनभाव-बोध, विज्ञान-भूमि, लोक साधना तथा विकासशील जीवन धारणाओं के अभाव में पंत जी इस कृति को अपूर्ण मानते हैं। पंत जी ने इस अभाव की पूर्ति का प्रयत्न 'लोकायतन' की रचना द्वारा किया पर यह एक उबाऊ तथा शिथिल काव्य-रचना है। हाँ 'सत्यकाम' को कामायनी की जोड़ की रचना कहा जा सकता है जिसमें छायावादी कलाबोध, प्रगतिवादी लोक-चेतना तथा नवभाववादी भागवती-चेतना का अपूर्व सामंजस्य हुआ है। दिनकर ने पंत जी के विपरीत अधिक विस्तार में जाकर बताया कि कामायनी का कथा-सूत्र विरल होता हुआ भी व्यापकता में कम नहीं है। उसका एक छोर यदि सभ्यता के आदिकाल में है तो दूसरा भविष्य के गह्वर तक जाता है। पुनरुत्थान के लक्षणों की बहुविध अभिव्यक्ति जहाँ उसमें हुई है, वहीं परम्परित यती-धर्म तथा निवृत्तिमूलक पलायन का खण्डन भी हुआ है। छायावादी कारीगरी की दृष्टि से पंत के ही समान दिनकर भी इस कृति का महत्त्व स्वीकार करते हैं। पर इसकी भाषागत दुर्बलताओं को अंकित करते हुए भी कहते हैं कि कामायनी में खड़ी बोली का जितना असमर्थ रूप प्रकट हुआ है उतना असमर्थ रूप किसी और काव्य में नहीं मिलता। मुक्तिबोध ने यथार्थवादी शिल्प तथा उसके आधार पर भावपक्ष के उद्घाटन की दृष्टि से इस कृति के दोषों का परीक्षण किया है। वास्तविक जीवन-जगत् को उसके वास्तविक सम्बन्धों के साथ ग्रहण कर सकने की प्रक्रिया का यहाँ पूर्ण निर्वाह नहीं हो सका। रोमांटिक भाव-प्रधान आत्मवादी कला ही कामायनी की मूल चेतना है। समाज और विश्व के प्रति इसमें प्रसाद की निजी प्रतिक्रियाएँ समाहित हैं जो एक फेन्टेसी में उनके इच्छित बिश्वासों का प्रतीक हैं। कामायनी के गुण-दोषों पर इन महान् कवियों की प्रतिक्रियाओं का लेखा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जोखा प्रस्तुत कर सम्पादकों ने इन आक्षेपों के समाधान के रूप में शेष बारह निबन्धों का संकलन किया है। एक प्रकार से वाद प्रस्तुत कर परोक्ष शैली में प्रतिवाद प्रस्तुत करने को योजना सराहनीय है। अच्छा होता, इन निबन्धों की रचना तिथि भी साथ दे दी जाती। पाठकों को पता चलता कि कामायनी के प्रकाशन के बाद कामायनी की सबलता और दुर्बलता का प्रतिपादन उसके व्यापक विश्लेषण की क्रमबद्ध राह कैसे बनाता चला गया? विरोध करते हुए भी सर्जनाकार वैसी कृति नहीं लिख सके। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी शायद इसी कारण अपने निबन्ध 'कामायनी सर्वेक्षण' में लिखते हैं कि कामायनी के कवि में और जितने भी दोष हों, वह नख से शिख तक मौलिक है। उसकी मौलिकता कभी-कभी जटिल और दुर्बोध तक हो जाती है।

पुस्तक के द्वितीय खण्ड में आचार्य शुक्ल, आचार्य वाजपेयी, डा० नगेन्द्र, आचार्य द्विवेदी, डा० स्नातक जैसे प्रतिष्ठित समीक्षकों के लेख हैं जिनमें कामायनी के वृत्त, कला, रूपकतत्त्व तथा दार्शनिकता पर विचार निहित हैं। मिथकीय प्रतीकात्मकता पर डा० दिनेश्वरप्रसाद, छन्द विधान पर डा० विमल कुमार जैन एवं भाषा पर डा० बालेन्दु शेखर तिवारी के लेख संकलित हैं। डा० रमेश कुन्तल मेघ, डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, डा० वचनदेव कुमार तथा डा० रामचन्द्र प्रसाद के लेखों में कृति के रचना-गठन, कार्य-व्यापार, उसे व्यंजित करने वाली बिम्बमाला, सांस्कृतिक संकट, समकालीन जीवनानुभव, सर्जनात्मक भाषास्तर तथा रचनात्मक स्वायत्तता का विवेचन हुआ है।

तुलनात्मक दृष्टि से डा० वचनदेव का लेख मानस और कामायनी तथा विश्वमहाकवियों के पार्श्व में प्रसाद की प्रतिष्ठा करने के उद्देश्य से लिखा गया डा० रामचन्द्र प्रसाद का निबन्ध कामायनी—विश्वमहाकाव्य के संदर्भ में पठनीय हैं। एक बात समझ में नहीं आई यदि रामचरितमानस देश और काल की सीमाओं को लाँघने वाला काव्य है और कामायनी में यह विशेषता नहीं है तो फिर दोनों की तुलना ही क्यों की गई? मानस की लोकग्राह्य चेतना और कामायनी की सुजनग्राह्य चेतना के मूल अन्तर से भी दोनों कृतियों की तुलना बेमेल है। अच्छा होता, कामायनी को उनके समकालीन और परवर्ती समानधर्मा कवियों की महत् काव्य-कृतियों के परिप्रेक्ष्य में पढ़ा-समझा गया होता। डा० रामचन्द्र प्रसाद ने शैलीगत औदात्य की दृष्टि से कामायनी की पैराडाइज लास्ट से तुलना ठीक की है। वर्जिल के 'इनीड़' का विषय कामायनी का वर्ण्य नहीं है परन्तु इसमें भी अस्तित्व की जटिलता का वैसा हो चित्रण हुआ है जैसा वर्जिल के महाकाव्य में। जो लोग दाँतेप्रणीत 'डिवाइन कॉमेडी' से कामायनी की तुलना करते हैं, वे ठीक करते हैं। लेखक तुलना करते हुए स्पष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहते हैं कि दोनों महाकाव्य अन्यापदेशिक, रूपकात्मक तथा आध्यात्मिक हैं, दोनों का वर्ण्य आत्मा का परम तत्त्व की ओर आरोहण है । सारांश यह कि कामायनी और डिवाइन कॉमेडी दो भिन्न परम्पराओं की देन होकर भी तात्त्विक तथा रचनात्मक शैली की दृष्टि से समान हैं । डा० प्रसाद कामायनी के संदेश को गेटे के फाउस्ट में समान रूप से प्रतिबिम्बित देखते हैं ।

सम्पादक की लेखचयनदृष्टि विशद् और व्यापक है । उन्होंने नये-पुराने समीक्षकों के बहुविध दृष्टिकोण उपन्यस्त करने की दृष्टि से इन निबन्धों का चयन किया है । डा० प्रेमशंकर तथा डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना प्रसाद काव्य के अध्येताओं में रेखांकित किए जाते हैं, उनके निबन्धों का न होना खलता है । कामायनी के अर्थगर्भित पक्षों का, सर्जनात्मक क्षमता का, भाविक सौन्दर्य और वस्तुसंरचना का जितना प्रामाणिक, संक्षिप्त किन्तु संतुलित विवेचन इन निबन्धों में मिलता है, पाठक को उसके लिए अन्यत्र भटकने की आवश्यकता नहीं पड़ती । ऐतिहासिक, आध्यात्मिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक वैचारिक यात्राओं के पड़ाव में 'कामायनी का सहचिन्तन' पाथेय सिद्ध होगा, इसमें दो राय नहीं ।

यह सह-चिन्तन भारतव्यापी विद्वानों का है जिनमें काशी, प्रयाग, दिल्ली, पंजाब, बिहार के प्रमुख हस्ताक्षर संकलित हैं । इस महत्वपूर्ण सम्पादन के लिए डा० वचनदेव कुमार तथा डा० दिनेश्वरप्रसाद बधाई के पात्र हैं । डा० कुमार सर्जक-समीक्षक हैं और डा० प्रसाद ने 'प्रसाद की विचारधारा' लिखकर ख्याति अर्जित की है ।

– डा० विष्णुदत्त राकेश

—०—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक की कलम से--

मूल्योन्मुख शिक्षा

पराधीन भारत में विदेशी शासकों तथा उनके पिछलग्गू इतिहासकारों ने भारतीय संस्कृति और इतिहास को तोड़-मरोड़ कर भारतीय जीवन का जो विकृत चित्र उपस्थित किया, उसने नवयुवकों में मानसिक दासता, हताशा, घुटन और क्लीवता को कूट-कूट कर भर दिया। महर्षि दयानन्द ने भारतीय इतिहास की पुर्नरचना की आवश्यकता अनुभव करते हुए स्वतन्त्र, समृद्ध तथा साँस्कृतिक दृष्टि से सम्पुष्ट राष्ट्र की अवधारणा इसीलिए प्रस्तुत की और स्वामी श्रद्धानन्द ने राष्ट्रध्येयोन्मुख शिक्षा को ठोस रूप देने के लिए गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के पुनरुद्धार का बीड़ा उठाया। १६ मई १९०० ई० को गुजरान-वाला में भक्त आनन्दस्वरूप की वाटिका में गुरुकुल की स्थापना हुई। स्वामी जी के पुत्र हरिश्चन्द्र तथा इन्द्रचन्द्र प्रविष्ट होने वाले पहले ब्रह्मचारी थे और व्याकरण तथा दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान् पण्डित गंगादत्त जी प्रथम आचार्य। २ मार्च १९०२ को यह विरवा हरिद्वार से पाँच मील गंगा के पूर्वीय तट पर घने जंगलों के बोच साफ किए दो बीघे मैदान में रोप दिया गया और १९२४ की बाढ़ के बाद इसे वर्तमान परिसर में १९३० के अप्रैल में स्थानान्तरित कर दिया गया। अब गुरुकुल एक विशाल वट वृक्ष बन चुका था तथा ब्रिटिश शासन के विदेशी प्रभाव से मुक्त, स्वतन्त्रचेता राष्ट्रभक्त स्नातकों का निर्माण कर, राष्ट्र की प्रमुख धारा में जुड़ चुका था। दीनबन्धु एन्ड्रूज, महात्मागाँधी, महामना मालवीय, श्रीमती एनी बेसेन्ट, पण्डित मोतीलाल नेहरू, पण्डित जवाहरलाल नेहरू, डा० राजेन्द्र प्रसाद, आचार्य क्षितिमोहन सेन, महाकवि रविन्द्रनाथ टैगोर, आचार्य नरेन्द्रदेव तथा डा० सम्पूर्णानन्द जैसे विचारक गुरुकुल की राष्ट्रीय गति-विधियों के प्रशंसक और समथक रहे हैं। महात्मा गाँधी तो गुरुकुल से इतने प्रभावित थे कि अफ्रीका के फोनिक्स आश्रम के विद्यार्थियों के साथ जब वह भारत आए तो अहमदाबाद में अपने पृथक् आश्रम के खुलने तक वह गुरुकुल में ही रहे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ तब राष्ट्रध्येयोन्मुखी शिक्षा के केन्द्र थे और यही तत्कालीन आवश्यकता भो थी।

आज प्रधानमन्त्री श्री राजीव गाँधी और शिक्षा मन्त्री श्री कृष्णचन्द्र पंत प्रच-लित शिक्षा प्रणालियों की खामियों का अनुभव करते हुए इसे आमूल-चूल बदलने की बात कह रहे हैं। भ्रष्टाचार, अनुशासनहीनता, अराष्ट्रीयता, अलगाववाद तथा जातिगत भेदभाव के बढ़ते हुए माहौल में विश्वविद्यालय व्यर्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालूम पड़ने लगे हैं। प्रतिभाओं के विदेश में पलायन की बढ़ती हुई प्रवृत्ति तथा वैज्ञानिकों, इन्जीनियरों, डाक्टरों तथा बुद्धिजीवियों का आक्रोश तथा कभी-कभी आत्मघात और बेरोजगार उपाधिधारी युवकों का सड़कों पर मार्चपास्ट शिक्षा के खोखलेपन को उजागर कर रहा है। गत वर्षों में नारा दिया गया कि शिक्षा को व्यवसायोन्मुखी बनाया जाए पर आज भी हम जहाँ के तहाँ हैं। हर क्षेत्र में यह अनुभव गहरा हो रहा है कि नैतिक-मूल्यों और चरित्र का पतन जितनी तेजी से हो रहा है, उसे कैसे रोका जाए? शिक्षणालय तोड़-फोड़ की राजनीति से कैसे मुक्त हों और अध्यापक तथा विद्यार्थी राष्ट्र-निर्माण की धारा से जुड़कर किस तरह जीवनोपयोगी तथा समाजोपयोगी कार्यों में दत्त-चित्त हों? स्पष्ट है कि शिक्षा को अब मूल्योन्मुख होना चाहिए। जब तक मानव-मूल्यों और शिक्षा में अन्तःसम्बन्ध स्थापित नहीं होगा तब तक चरित्र के पतोन्मुख पोत की रक्षा नहीं हो सकती। मानव मूल्य यद्यपि सनातन तथा देशकालातीत हैं तथापि उनका स्पष्टीकरण तथा व्यवहारीकरण आवश्यक है। शिक्षा पोथियों तक ही सीमित न होकर जब समाज के स्तर पर प्रसारोन्मुख होती है तब इन मूल्यों के जीवन में अवतरण की आवश्यकता अनुभव होती है। रोजी-रोटी के साथ साधकों की पवित्रता का होना भी नितान्त जरूरी है। बालक के दैहिक, बौद्धिक, भावात्मक विकास के साथ-साथ उसका मनोविकास तथा आत्मविकास भी होना चाहिए। अतः शिक्षा का एक ऐसा व्यापक कार्य-क्रम तैयार होना चाहिए जो उसके चरित्र और व्यक्तिगत क्षमताओं के विकास के साथ उसमें निहित 'पूर्ण मानव' को उजागर कर सके। इसके लिए मानवीय मूल्यों के शिक्षण का व्यापक पाठ्यक्रम तैयार करना होगा जिसमें संकीर्ण राष्ट्रवाद के विपरीत, मजहब और सम्प्रदाय के विरुद्ध तथा जाति-पाँति, वर्ग-भेद से ऊपर उठ कर मानवतावादी वृत्तियों के विकास में सहायता मिले। आत्मनिर्भरता तथा आत्मनिपुणता के साथ सामाजिक निपुणताएँ अर्जित करना भी उसके लिए आवश्यक है। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, स्वास्थ्यरक्षा, शुचिता, आहार-विहार, स्वावलम्बन, राष्ट्रीय परिधान, नियमपालन, ईमानदारी, सामाजिक न्याय, बंधुता, मित्रता, सौहार्द, सहिष्णुता, कर्त्तव्यनिष्ठा, दायित्वबोध, प्रेम, भक्ति तथा सहजीवियों के विकास की चिन्ता उसकी व्यावहारिक शिक्षा के अंग हों। ग्राम-सेवा, रोगी-सेवा तथा समाजसेवा उसके पाठ्यक्रम के अनिवार्य हिस्से हों। कल्याणकारी राज्य के लिए शिक्षा का आध्यात्मिक तथा सार्वजनीन आधार स्थापित होना जरूरी है। इसके लिए भारतीय संस्कृति के सार्वभौम तत्वों का क्रमबद्ध स्पष्टीकरण, धर्मनिरपेक्ष दृष्टि के संदर्भ में इतिहास का अध्ययन, सभी धर्मों के मूल-भूत समानता रखने वाले तत्वों की व्याख्या, स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, सामूहिक गतिविधियों में अधिकाधिक भाग लेने की प्रवृत्ति का प्रोत्साहन, सामूहिक गतिविधियों द्वारा चरित्र निर्माण, विश्व के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामानवों की जीवनियों का अध्ययन तथा मानवीय मूल्यों से समन्वित विज्ञान, मानविकी तथा तकनीकी शिक्षा का उपयोग पाठ्यक्रम का रूप होना चाहिए। सामूहिक कार्यक्रमों से न्याय, सहिष्णुता, समानता तथा त्यागभाव को सीखने में सुविधा होती है। ऐतिहासिक राष्ट्रीय स्थानों की सरस्वती यात्रा, पुस्तक प्रदर्शनी, पत्रिकाओं का सम्पादन-प्रकाशन, मॉडल तैयार करना, नदी, बाँध, पर्वत, तथा भौगोलिक महत्व के वनों तथा स्थानों का सर्वेक्षण, विज्ञान मेला, तकनीकी कार्यशाला, विधानसभा तथा संसदीय कार्यप्रणाली का अवलोकन और समयसारणी की पाबन्दी उसे बहुश्रुत, बहुअधीत तथा जीवनोपयोगी बनाने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। शिक्षण-साधन के प्रकारों में भी ग्रामोफोन रेकार्ड, टेप, टी०वी०, फिल्म प्रोजेक्टर, रोलप्ले, चित्रपट शिक्षण तथा मानवमूल्यों के चार्ट और तस्वीरें सहायक हो सकती हैं। वस्तुतः शिक्षा सत्याचरण और सत्यान्वेषण की निरन्तरता है अतः उसके व्यक्ति-विकास तथा समाज-विकास के उद्देश्य को पृथक्-पृथक् करके नहीं देखा जा सकता। मानव धर्म, सामाजिक आचरण, सामाजिक न्याय, शांति तथा प्रेम वे मूल तत्व हैं जिनसे समन्वित शिक्षा मनुष्य का सर्वांगीण विकास कर सकती है। आज यदि प्रचलित शिक्षा में परिवर्तन करना है तो उसे मूल्योन्मुखी बनाना जरूरी होगा।

खुशबू का एक शिलालेख डूब गया

हिन्दी के प्रसिद्ध गाँधीवादी कवि भवानीप्रसाद मिश्र नहीं रहे। उनका जन्म २९ मार्च १९१३ को होशंगाबाद की तहसील सिवनी के टिगरिया ग्राम में हुआ था। १९३४-३५ में उन्होंने बी० ए० किया। हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी उनके प्रमुख विषय थे। इसके बाद स्वतन्त्रता आन्दोलन में कूद पड़े। ४२ में गिरफ्तार तथा ४५ में जेल से छूटे। जेल से छूटकर महिला आश्रम वर्धा में अध्यापक हो गए। मिश्र जी के प्रिय ग्रन्थों में गुप्त जी की भारत-भारती तथा लाला भगवानदीन की वीर पंचरत्न के अलावा कानपुर के रायदेवीप्रसाद पूर्ण की रचनाएँ थीं। १९३० से नियमित रूप से कविता लिखनी प्रारंभ की। उनकी प्रारम्भिक रचनाएँ कलकत्ता से हिन्दूपंच में प्रकाशित हुईं। मिश्र जी हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, मराठी, बंगला के अच्छे जानकार थे। १९३२-३३ में पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी के सम्पर्क में आए तथा कर्मवीर में रचनाएँ भेजने लगे। कलकत्ता से ही हेमचन्द्र जोशी तथा प्रभातचन्द्र शर्मा के सम्पादन में प्रकाशित 'आगामी कल' में भी उनकी रचनाएँ छपीं। अज्ञेय और अमृतराय इन रचनाओं से प्रभावित हुए। ४५ के बाद हँस में रचनाएँ छपीं और अज्ञेय जी ने दूसरे सप्तक में उनकी रचनाएँ छापीं। १९५३ में गीतफरोश नामक संग्रह छपा जिसकी प्रसिद्ध कविता 'जी हाँ हुजूर मैं गीत बेचता हूँ, मैं किसिम-किसिम के गीत बेचता हूँ' सम्मेलनी कवियों पर व्यंग थी। रचनाकार की यथार्थस्तर पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन-निर्वाहगत कठिनाई को लक्षित करते हुए उन्होंने कहा था कि यश-सम्मान आत्मप्रवंचना है। रचना से धरातल से उतर कर सामान्य जीवन जीने से कितने अन्तर्विरोध हैं—

है गीत बेचना वैसे बिलकुल पाप
क्या करूँ मगर लाचार
हार कर गीत बेचता हूँ।

जीविका के सिलसिले में हैदराबाद, मद्रास, बम्बई और दिल्ली घूमे और अन्त में गांधी वाङ्मय के सम्पादन के सिलसिले में शांति प्रतिष्ठान से जुड़ गए। खादी में लिपटे भवानी भाई खादी को वस्त्र नहीं, विचार मानते थे। उन्होंने कविता को जड़ता की व्याकरणपरस्त भाषा से अलग कर आम आदमी के साथ जोड़ा और कहा कि कविता यदि जन-जीवन की अभिव्यक्ति है तो उसे जन-सामान्य की ही तरह होना भी चाहिए—

जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख,
और हम से बड़ा बन कर दिख।

कविता को आत्मीयतापूर्ण पाठक दिलाने का जो सिलसिला बच्चन से शुरू हुआ था वह भवानी भाई में जन-वाणी बनकर गुंजित हुआ। जिंदगी को यदि कविता के बोल सुनते हुए बार-बार दुहराने की इच्छा न हो तो वह शब्दों से लदी फंदी बोझ की गठरी है। तात्कालिक संदर्भों से जुड़कर भी उसमें आत्मा की गूँज होनी चाहिए। उनका कहना था—

ये कमल के फूल लेकिन मानसर के हैं
मैं इन्हें हूँ बीच से लाया, न समझो तीर पर के हैं
भूल भी यादें अछूती भूल हैं
मानसर वाले कमल के फूल हैं।

मिश्र जी की प्रमुख रचनाएँ हैं—गीतफरोश, चकित है दुःख, अँधेरी कविताएँ, गाँधी पंचशती, बुनी हुई रस्सी, खुशबु के शिलालेख तथा त्रिकाल संध्या। त्रिकालसंध्या 'आपात्काल' की रचनाएँ हैं। सींखचों के बीच भी वह मानवमुक्ति के उद्गाता रहे। मन्त्र की सम्पूर्ण गरिमा को उन्होंने चरितार्थ किया। दो वर्ष पूर्व भारतमाता मन्दिर में उनका पदार्पण हुआ था। श्री कमल कान्त बुधकर उन्हें लेकर आए थे। जीवन के थपेड़ों से टूटे हुए किन्तु खादी जैसे निर्मल शब्दों के खुशबू वाले शिलालेख के रचयिता को प्रणाम कर पाने का अवसर कम पुण्य की बात नहीं थी। आज जब वह दिवंगत हो गए हैं तो उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक जगह बाँधकर कैसे रखा जा सकता है ? कविकर्म की पेचीदी से शब्दों को खुला रूप देकर उन्होंने कविता और जीवन को सहजता दी। कविता और सामाजिक निष्ठा उनकी अन्त तक सहधर्मिणी रहीं। उनका उद्घोष था—

घटनाएँ हम तक आएँ
इससे अच्छा है कि हम घटनाओं तक जाएँ ।

—०—

गुरुकुल के स्नातक श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार नहीं रहे

हिन्दी के प्रसिद्ध पत्रकार, नाटककार, निबन्ध तथा कथाकार श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार का जन्म १९०६ में मुजफ्फरगढ़ जिले में हुआ । हिन्दी में सोमर सैट माम की कहानियों के शिल्प-सौन्दर्य का अवतरण उनकी कहानियों से हुआ। पाश्चात्य शिल्प और तकनीक का उपयोग उन्होंने नाटकों में भी किया है। उनके कथा-संग्रहों में 'वापिसी', एकांकियों में कास्मोपोलिटन क्लब तथा सम्पूर्ण नाटकों में अशोक, देव और मानव तथा न्याय की रात प्रसिद्ध हैं। गुप्त जी में काव्यात्मक भावुकता अधिक है और इसीलिए कहानियों और एकांकियों में वह जितने सफल हुए हैं, उतने सम्पूर्ण नाटकों में नहीं । १९३८ में हँस का एकांकी विशेषांक निकला। एकांकी के शिल्प पर श्री विद्यालंकार ने ७ आपत्तियाँ उठाकर एकाँकी की उपयोगिता और तकनीक को व्यवस्थित किया। यह लेख इसलिए भी महत्वपूर्ण रहा कि इसके बाद एकांकी का साहित्य में स्वतन्त्र स्थान बन गया और उसका तकनीक व्यवस्थित हो सका । श्री गुप्त के गुरुकुलीय संस्कार इतने प्रखर रहे कि उन्होंने अपने एकांकियों में आधुनिकता पर प्रहार करते हुए व्यावहारिक आदर्श की प्रवृत्तियों को प्रमुखता दी। नाटकों में सामाजिक विघटन और द्वन्द्व की स्थितियों को विश्वसनीय रूप से प्रस्तुत करने के लिए भी उन्हें याद किया जाएगा। गोरा, बचपन, संदेह, आँसू, शराबी, पगली, ताड़ का पत्ता तथा मास्टर जी उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं ।

श्री विद्यालंकार, डा० सत्यकेतु जी के समय क्रान्तिकारी साहित्यकार श्री मन्मथनाथ गुप्त, श्री विष्णुप्रभाकर प्रभृति साहित्यकारों के साथ गुरुकुल कांगड़ी आए थे । उनका भाषण भी हुआ था। आज उनके निधन पर हम एक रिक्तता का अनुभव करते हैं। गुरुकुल के कारण वह हमारे अग्रज हैं और हिन्दी-सेवा के कारण वह हमारे नायक। ऐसे सहृदय, साहित्यिक मित्र तथा निश्छल साहित्यकार को श्रद्धाँजलि अर्पित करते हुए लेखनी स्वयं पवित्र हो रही है।

—विष्णुदत्त राकेश

—०—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रह्लाद

(प्राच्यविद्याओं की प्रमुख त्रैमासिक हिन्दी-पत्रिका)

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वर्ष : १९८५] (अप्रैल से जून तक) [अङ्क : २

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रह्लाद

(प्राच्यविद्याओं की त्रैमासिक शोध-पत्रिका)

सम्पादक

डॉ० विष्णुदत्त 'राकेश'
पी-एच.डी., डी.लिट्.

संयुक्त-सम्पादक

डॉ० विनोदचन्द्र सिन्हा
एम.ए., पी-एच. डी.

वर्ष १९८५] (अप्रैल से जून तक) [अङ्क २

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रधान संरक्षक :

श्री बलभद्रकुमार हूजा

कुलपति

संरक्षक :

श्री रामप्रसाद वेदालंकार

आचार्य एवं उप-कुलपति

प्रबन्ध सम्पादक

डॉ० राधेलाल वार्ष्णेय, जनसम्पर्क अधिकारी

व्यवस्थापक

जगदीश विद्यालंकार

प्रकाशक :

वीरेन्द्र अरोड़ा, कुलसचिव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रह्लाद के मुख-पृष्ठ पर अंकित चित्र का विवरण

दयानन्द निर्वाण शताब्दी व्याख्यानमाला में "दयानन्द और हिन्दी पत्रकारिता" पर भाषण के लिए पधारे साहित्यकार पद्मश्री पण्डित क्षेमचन्द्र 'सुमन', 'प्रह्लाद' के आचार्य शुक्ल अङ्क का विमोचन करते हुए। साथ में श्री रामप्रसाद वेदालंकार, उपकुलपति; श्री बलभद्रकुमार हूजा, कुलपति तथा डा० श्यामसुन्दर दास शास्त्री, मन्त्री भारत साधु समाज (सभापति)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
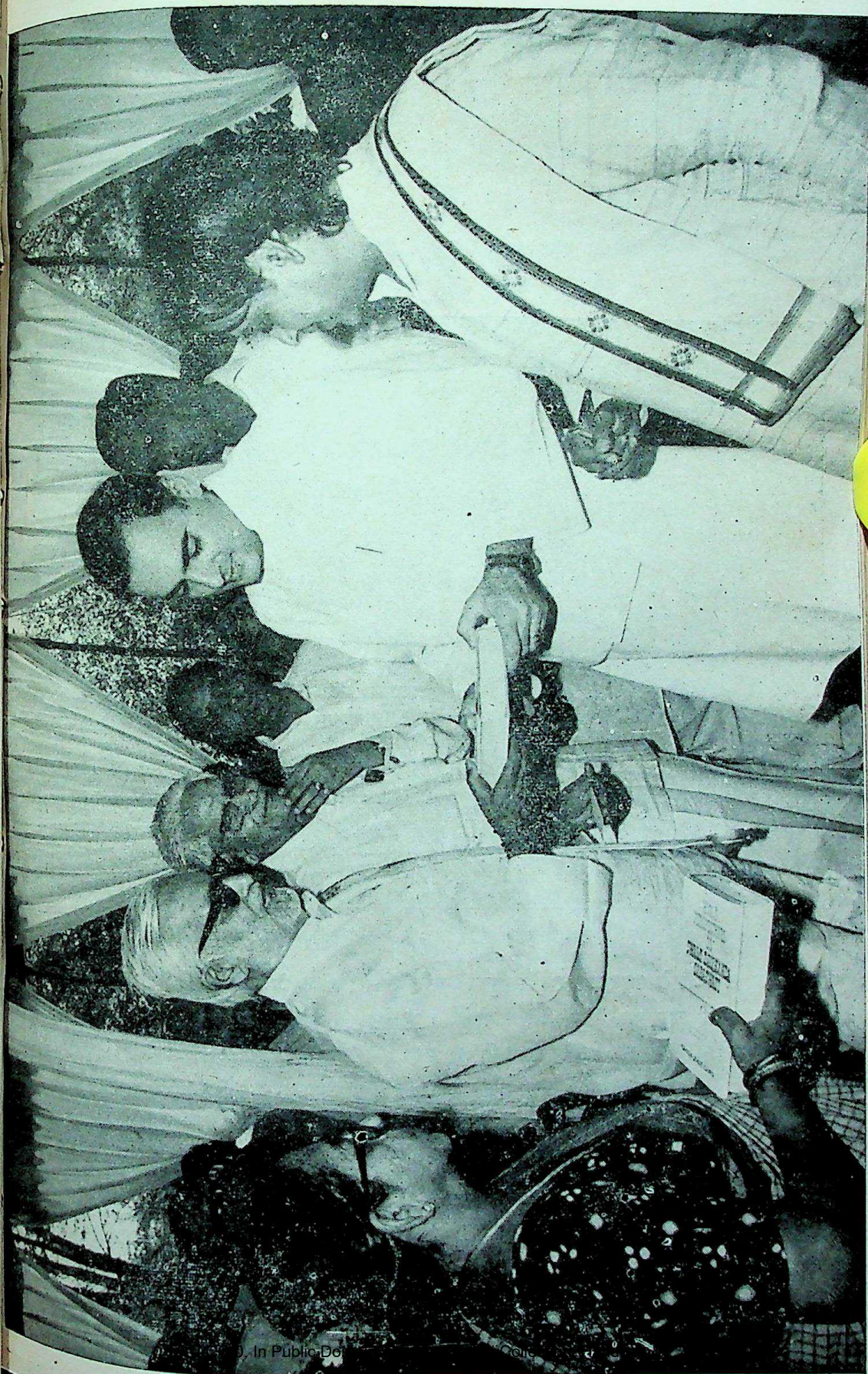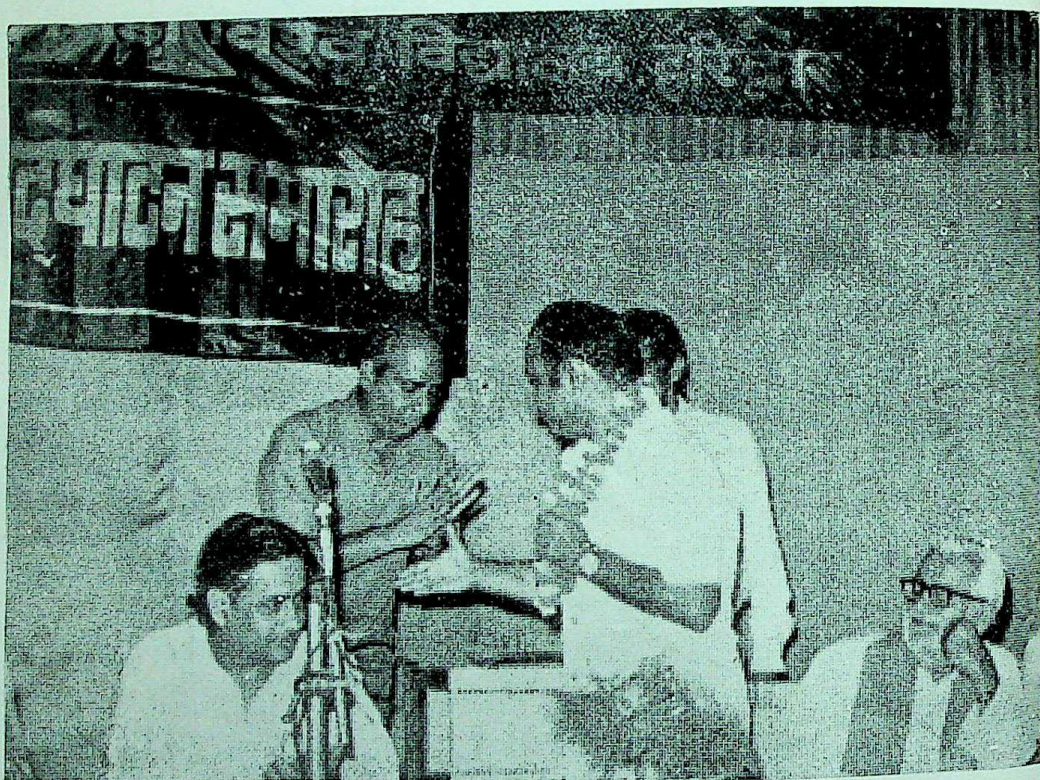
गंगा प्रदूषण संगोष्ठी के उद्‌घाटन सत्र में मुख्य अतिथि श्री बी० के० गोस्वामी, आयुक्त मेरठ का अभिनन्दन करते हुए कुलसचिव श्री अरोड़ा । माइक के पास पूर्वसांसद् आचार्य भगवानदेव (अध्यक्ष समारोह) तथा भावविभोर कुलपति श्री हूजा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक वन्दना

ॐ अग्नि मन्द्रं पुरु प्रियं, शीरं पावक शोचिषम्
हृद्भिः मन्द्रेभिरीमहे ।
ऋक् ५.४३.३१

मेरा मधुर मदिर मन निशिदिन,
करता है तेरा पूजन ।

खोया जैसे कोई सपना,
मन की गहराई में अपना ।

ऐसे प्रिय की छवि को देखे,
परछाई में अपना मन ॥

उसकी दीपशिखा शीतल है,
उसकी ज्वाला शांत विमल है ।

उसके दिव्य रूप का दर्शन—
ही जीवन का आराधन ॥

आज हमारा स्वप्न पूरा हो गया । आज 'पावक शोचिषम् अग्निं' पवित्र ज्योति के दर्शन कर लिए, जिसे देखने को हमारी आँखें प्यासी थीं, जिसे पाने को हम लालायित थे । जन्म-जन्म से हमने उस 'पुरुप्रियं शीरं' ज्योति के दर्शन कर लिए । उसकी शांत शिखा में विचित्र शीतलता है । वह ऐसा दीपक है जो केवल प्रकाश देता है, ताप नहीं । सम्पूर्ण विश्व के सौन्दर्य में उसकी मधुर आभा व्यक्त हो रही है । हमारे हृदय ने आज उसका रहस्यमय स्पर्श अनुभव किया है । अब हम 'मन्द्रेभिः हृद्भिः ईमहे' सदा उस दिव्य आनन्द की अनुभूति के साथ परम पुनीत प्रियतम की अन्तःकरण में विराजित प्रतिमा की ही एकनिष्ठ आराधना करते रहेंगे ।

—पं० सत्यकाम विद्यालंकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक की कलम से

विश्वविद्यालय ८५वें सोपान पर

१३ अप्रैल ८५ को विश्वविद्यालय का ८५ वाँ वार्षिकोत्सव श्री वीरेन्द्र, कुलाधिपति की अध्यक्षता में धूमधाम से सम्पन्न हुआ। इस वर्ष पी-एच०डी० की ८, एम०ए० की ५०, एम०एस-सी० की १८, बी०एस-सी० की ३० तथा अलंकार की १३ उपाधियाँ प्रदान की गईं। दीक्षान्त भाषण करते हुए विश्वविद्यालय के पुराने स्नातक तथा नेरोबी के प्रसिद्ध उद्योगपति आर्यरत्न पण्डित सत्यदेव भारद्वाज वेदालंकार ने कहा कि आर्यत्व में भद्रता है, उच्चचारित्र्य है। संसार को इसकी सबसे अधिक आवश्यकता है। भौतिक विज्ञान की तरक्की ने लौकिक अभ्युदय में महान् सिद्धियों को प्राप्त करते हुए अभ्युदय का मार्ग प्रशस्त किया है परन्तु आर्यत्व या निःश्रेयस् को नहीं दिया है। यही अब भारतीय संस्कृति में पोषित शिक्षणालयों से अपेक्षित है। गुरुकुल के स्नातकों की योग्यता का उल्लेख करते हुए श्री वेदालंकार ने बताया कि गुरुकुल के कुछ स्नातकों को जर्मनी, फ्रांस, इटली आदि देशों में मान्यता मिली थी, जिससे स्नातक बनने के बाद कुछ स्नातकों ने सीधे ही उन देशों के विश्वविद्यालयों से उच्चतम उपाधियाँ प्राप्त की थीं। आज आवश्यकता है कि हमारा विश्वविद्यालय 'सार्वभौम आर्य विश्वविद्यालय' के रूप में विकसित हो, संसार के विश्वविद्यालयों से हमारा सम्पर्क बढ़े, उनसे सहायता प्राप्त करने में कोई संकोच न होना चाहिए। संसार के लोकोपकारी संस्थानों से सम्पर्क कर उनसे विशिष्ट आर्थिक सहायता भी लेनी चाहिए क्योंकि हमारे उद्देश्यों में सारे संसार का उपकार करना भी एक प्रमुख उद्देश्य है। हमने समन्वयात्मक धर्म, संस्कृति तथा सभ्यता को सार्वभौम दृष्टि प्रदान करनी है। विश्वविद्यालय इसी लक्ष्य की ओर अग्रसर होने चाहिएँ। स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुल की स्थापना इसी महान् लक्ष्य से प्रेरित होकर की थी।

कुलपति श्री बलभद्रकुमार हूजा ने अपने स्वागत भाषण में कहा कि गुरुकुल समाजसेवा, ग्रामोत्थान तथा प्रसार कार्यों में निरन्तर अग्रणी रहा है तथा मानवीय मूल्यों को शिक्षा क्षेत्र में बढ़ावा देने के लिए कार्य करता रहा है। विश्वविद्यालय में नये तथा पुराने का समन्वय करने के लिए विज्ञान तथा कला-वेद महाविद्यालय की सर्वांगीण उन्नति की चेष्टा की जा रही है। एम०एस-सी० माइक्रोबायोलोजी का विषय भी विश्वविद्यालय में खुल गया है। अनुदान आयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अध्यक्षा श्रीमती माधुरी शाह ने कम्प्यूटर देने का आश्वासन दिया है। गंगा समन्वित विकास योजना, हिमालय योजना, लाजपतराय अनुसन्धान पीठ, उत्खनन विभाग तथा तमिल कक्षाओं का संचालन जैसी योजनाएँ लेकर विश्वविद्यालय राष्ट्रीय एकता तथा सामाजिक निर्माण के संकल्प को पूर्ण करने में आगे आयेगा। वेद-विभाग में विशेष शोधकार्य के लिए वयोवृद्ध वैदिक विद्वान् पण्डित भगवद्दत्त वेदालंकार को शिक्षा मन्त्रालय ने दो वर्ष के लिए विशेष रूप से नियुक्त कर हमारा गौरव बढ़ाया है। परिद्रष्टा पण्डित सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार की अध्यक्षता में संघड़ विद्या सभा ट्रस्ट जयपुर ने गोवर्धन शास्त्री पुरस्कार देकर पण्डित भगवद्दत्त को इस वर्ष सम्मानित किया है। उच्चतम न्यायालय के अधिवक्ता श्री सोमनाथ मरवाहा, पंजाब प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री वीरेन्द्र, हरियाणा सभा के प्रधान श्री शेरसिंह, सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री रामगोपाल शालवाले, सुप्रसिद्ध आर्य संन्यासी स्वामी ओमानन्द, दिल्ली सभा के प्रधान श्री सूर्यदेव, श्री सरदारी लाल वर्मा तथा हरियाणा, दिल्ली एवं पंजाब के अनेक आर्य बंधुओं और माताओं ने विश्वविद्यालय परिसर में पधार कर कुलपिता स्वामी श्रद्धानन्द को अपनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं तथा विश्वविद्यालय की उत्तरोत्तर प्रगति की कामना की। इस अवसर पर आयोजित षड्-दिवसीय यजुर्वेद पारायण यज्ञ के ब्रह्मा थे श्री श्यामसुन्दर स्नातक तथा इसका सफल संयोजन किया गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता डा० हरिप्रकाश आयुर्वेदालंकार ने। कुल मिलाकर समारोह उत्साहवर्धक तथा प्रेरणादायक रहा।

कांग्रेस के सौ वर्ष

कांग्रेस भारत की आजादी के लिए किए गए संघर्ष की प्रतीक है। वह उस समन्वित संस्कृति की धात्री है जिसमें विभिन्न भाषाओं, जातियों, धर्मों, वर्गों, वर्णों तथा उपश्रेणियों में बँटे-बिखरे लोग एक विराट् उद्देश्य की पूर्ति के लिए इकट्ठे हुए। काँग्रेस से पूर्व प्रादेशिक तथा स्थानीय स्तर पर राष्ट्रीय तथा सामाजिक एकरूपता के लिए कार्य हुआ पर सार्वदेशिक स्तर पर देशप्रेमियों को एक-सूत्र में बाँधने का कार्य काँग्रेस ने किया। २८ दिसम्बर १८८५ को बम्बई में गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कालेज के हाल में प्रथम राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इसके प्रथम सभापति डब्लू०सी० बनर्जी थे जिन्होंने अपनी पुस्तक भारतीय राजनीति की भूमिका में काँग्रेस और ए०ओ० ह्यूम के सम्बन्धों पर विचार करते हुए कहा था कि मि० ह्यूम और लार्ड डफरिन कांग्रेस के माध्यम से राजभक्त शिक्षित भारतीयों की एक संस्था खड़ी करना चाहते थे। मार्च १८८५ में देश भर में एक गश्ती चिट्ठी भिजवाकर यह तय किया गया कि बंगाल, बम्बई तथा मद्रास प्रेसीडेंसी के अंग्रेजी जानने वाले राजनीतिज्ञ पूना की कांग्रेस में एकत्र हों पर वहाँ हैजे के प्रकोप के कारण सभा न हो सकी और उसका अधिवेशन बम्बई में हुआ। इस अधिवेशन में मद्रास के डिप्टी कलक्टर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रघुनाथ राव, पूना के स्माल काजेज कोर्ट के जज महादेव गोविन्द रानाडे, आगरा के लाला बैजनाथ, लखनऊ से गंगाप्रसाद वर्मा, बम्बई से दादाभाई नौरोजी, फिरोजशाह मेहता, शिमला से मि० ह्यूम, मद्रास से एस० सुब्रह्मण्य अय्यर तथा बंगाल से डब्लू०सी० बैनर्जी तथा नरेन्द्रनाथ सेन जैसे मनस्वी एकत्र हुए। श्रीमती एनी बेसेंट ने अपनी पुस्तक 'हाउ इन्डिया फाट फार फ्रीडम' में इस अधिवेशन का जीवन्त विवरण दिया है। एक महत्त्वपूर्ण बात यह कि बंगाल से प्रकाशित होने वाले 'नव विभाकर' पत्र के सम्पादक श्री गिरिजा बाबू ने दादा भाई नौरोजी के प्रस्ताव पर बोलते हुए स्वदेशी की आवाज उठाई पर अधिवेशन का मूल स्वर सामाजिक सुधार ही रहा। महाराष्ट्र के वासुदेव बलवन्त फड़के तथा लुधियाना के भैणी साहब के रामसिंह कूका क्रान्तिकारी धारा के अवतरण की तैयारी में थे। फड़के साहब आजीवन कालेपानी की सजा भोगते हुए विदेश में गुमनाम शहीद हुए तथा रामसिंह कूका ने बर्मा की जेल में अपने प्राण छोड़े। बंगाल के श्री सुरेन्द्रनाथ जो अंग्रेजी पत्र बंगाली के सम्पादक थे तथा जिन्हें जनमत जागरण के विरुद्ध सजा हुई थी, बाद में कांग्रेस में शरीक हो गए। दादाभाई नौरोजी 'रास्त गोफ्तार' तथा 'वायस आफ इन्डिया' का सम्पादन करते हुए राष्ट्रीय जागरण का कार्य कर रहे थे। कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन दादाभाई के सभापतित्व में कलकत्ता में हुआ। 'वन्दे मातरम्' गीत की पंक्तियाँ इसमें अनुगुंजित हुईं। पुरातत्व के विद्वान् डा० राजेन्द्रलाल मित्र ने स्वागत-भाषण किया। कहना यह कि कांग्रेस का प्रारम्भ साहित्यकार तथा पत्रकार बन्धुओं के हाथों हुआ और तृतीय अधिवेशन में तो पढ़े-लिखे वर्ग के साथ मजदूरों ने भी हिस्सा लिया। यह अधिवेशन मद्रास में हुआ। इसके लिए रंगून, सिंगापुर, माडले आदि से मजदूर तथा गरीब लोगों ने अपने खून-पसीने की कमाई से साढ़े पाँच हजार रुपये चंदे में दिए। इसमें अस्त्र कानून को हटा लेने का प्रस्ताव रखा गया। मि० ह्यूम की परेशानी बढ़ गई क्योंकि कांग्रेस अब सामान्य जनता की प्रतिनिधि संस्था बन गई थी और लंदन से निकलने वाले टाइम्स की यह शरारतपूर्ण टिप्पणी नाकाम हो गई थी कि कांग्रेस कुछ असंतुष्ट नौकरी चाहने वालों का मजमा है।

कांग्रेस की बढ़ती हुई शक्ति का विस्फोट इलाहाबाद के चतुर्थ अधिवेशन में हुआ जिसमें सर सैयद अहमद के विरोध के बावजूद अवध से बहुत से मुसलमान उपस्थित हुए। कांग्रेस के पाँचवें अधिवेशन में अर्थशास्त्री गोखले तथा संस्कृत और गणित के विद्वान् लोकमान्य तिलक भी उपस्थित हुए। अब कांग्रेस की दिशा पूर्ण स्पष्ट हो गई तथा सरकार ने भी सरकारी कर्मचारियों के कांग्रेस में शरीक होने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। कांग्रेस को नये नेतृत्व की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। तिलक ने गणपति और शिवाजी उत्सवों के माध्यम से जन-चेतना के जागरण का कार्य शुरू किया। कांग्रेस के बारहवें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिवेशन में कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ उपस्थित हुए। यहाँ से कांग्रेस की राजनीति में गरम विचारों का प्राबल्य दिखाई पड़ने लगा। मिस्टर रैण्ड की हत्या, व्यापक अकाल तथा आम धरपकड़ की घटनाओं ने देश में आक्रोश का वातावरण पैदा कर दिया। कांग्रेस ने यदि नजरबन्दी कानून का विरोध किया तो सरकार ने राजद्रोह का कानून सख्त कर दिया। १८९९ में लखनऊ अधिवेशन में कांग्रेस का पहला विधान बना। इधर बंग-भंग और स्वदेशी आन्दोलनों ने सरकार की नींव हिला दी। विलायती चीजों के बायकाट के लिए समितियाँ बनीं। चरखा और करघा, देशी उद्योग-धंधों की उन्नति तथा सरकारी दमन का विरोध कांग्रेस ने जोर-शोर से चलाया। वन्दे मातरम्, युगान्तर जैसे क्रान्तिकारी अखबार सामने आए तथा अरविन्द घोष, भूपेन्द्रनाथ दत्त, रवीन्द्रनाथ जैसे साहित्यिक आगे आकर क्रान्तिकारी लेख लिखने लगे। १९०४ के बंग भंग से क्षुब्ध भारत में क्रान्तिकारी षड्यंत्र प्रारंभ हुए। सूरत के अधिवेशन में लाला लाजपतराय शरीक हुए। फिर तो मुजफ्फरपुर षड्यंत्र, अलीपुर षड्यंत्र सामने आए। लोकमान्य को छह साल की सजा हुई। चिदम्बरम पिल्लै को कालापानी, मदनलाल ढींगरा को फाँसी और गणेश दामोदर सावरकर को 'लघु अभिनव भारत मेला' पुस्तक पर कालापानी की सजा दी गई। २५ वाँ अधिवेशन लाहौर में महामना मालवीय के सभापतित्व में हुआ।

१९१२ में गाँधी जी के अफ्रीका सत्याग्रह के पक्ष में बांकीपुर कांग्रेस ने प्रस्ताव पास किया। १९१५ की कांग्रेस में गाँधी जी भारतीय राजनीति में प्रविष्ट होने के लिए कांग्रेस के मंच पर आए। विषय निर्धारिणी समिति में उन्हें नामित किया गया। थियोसोफी आन्दोलन की नेत्री श्रीमती एनी बेसेंट, डॉ० भगवानदास जैसे विश्रुत विद्वान् भी कांग्रेस के साथ जुड़े। चम्पारन में नील के खेतिहरों के शोषण के विरुद्ध गाँधी जी खड़े हुए और किसान आन्दोलन के नेता के रूप में उभर कर सामने आए। गाँधी जी और कांग्रेस अब पर्याय बनने लगे। रोलट बिल के खिलाफ सत्याग्रह आन्दोलन गाँधी जी का प्रथम प्रयोग था। स्वामी श्रद्धानंद ने गाँधी जी को अमृतसर बुलाया। जलियाँवाला में डायरशाही का नंगा नाच हुआ। रवीन्द्रनाथ ने सर की उपाधि लौटा दी। गाँधी जी को पंजाब में घुसने नहीं दिया गया। अमृतसर कांग्रेस की अध्यक्षता मोतीलाल नेहरू ने की। इस आतंक के वातावरण में स्वामी श्रद्धानंद ने स्वागताध्यक्ष बनकर कांग्रेस का अधिवेशन शान के साथ सम्पन्न कराया। लगान बन्दी के लिए बारदौली आन्दोलन के साथ जहाँ खेतिहरों को कांग्रेस के साथ गाँधी जी ने जोड़ा वहाँ चरखा तथा करघा, अछूतोद्धार, ग्राम पंचायतों की स्थापना तथा राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं की स्थापना जैसे रचनात्मक कार्य भी अपने हाथ में लिए। स्वराज और असहयोग उनके प्रमुख नारे थे। फिर तो गया, दिल्ली, कोकनद, बेलगाँव, कानपुर, गुवाहटी, मद्रास, कलकत्ता और लाहौर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिवेशनों में महात्मा गाँधी का वर्चस्व बढ़ता गया। लाहौर कांग्रेस में १९२९ में जवाहरलाल नेहरू ने अध्यक्षीय भाषण में पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग की। नमक सत्याग्रह या डांडी यात्रा, गोल-मेज कान्फ्रेंस, गांधी-इरविन पैक्ट, कानपुर का दंगा तथा गणेशशंकर विद्यार्थी का बलिदान, हरिजन पत्रिका का प्रकाशन, नरेन्द्रदेव, सम्पूर्णानन्द तथा जयप्रकाश नारायण का आगमन, कांग्रेस के इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं। प्रान्तीय स्वशासन, सुभाष बाबू का प्रयाण, फारवर्ड ब्लाक का आन्दोलन, अगस्त की क्रान्ति ने देश में नई उथल-पुथल पैदा कर दी। कांग्रेस में कम्यूनिस्ट पार्टी के सदस्य भी शामिल हुए। साम्राज्यवाद विरोधी कांग्रेस की लड़ाई में कम्यूनिस्टों ने साथ दिया। आजाद हिन्द फौज की खिलाफत के कारण कम्यूनिस्ट अलग-थलग पड़ गये। १९४४ में कस्तूरबा का निधन हो गया, गांधी जी ने स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए कस्तूरबा ट्रस्ट बनाया।

इधर ब्रिटेन में श्रमिक सरकार का आगमन हुआ। फरवरी में नौ-सैनिक विद्रोह हुआ। जर्मनी-जापान पराजित हुए। नौआखाली और बिहार के दंगे हुए, दिल्ली में नेहरू जी के प्रयत्न से एशिया सम्मेलन हुआ। फलतः भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा हुई।

स्वतन्त्र होते ही कांग्रेस में नेहरू युग शुरू हुआ। गाँधी जी का बलिदान हुआ। संविधान में सभी धर्मों की समानता घोषित हुई। योजना-आयोगों का निर्माण हुआ। कांग्रेस में समाजवादी ढाँचा आवड़ी अधिवेशन में १९५५ में ढ़ेबर भाई के सभापतित्व में स्वीकार हुआ। १९६४ के भुवनेश्वर अधिवेशन में समाजवादी लक्ष्य की फिर दुहाई दी गई। नेहरू, लालबहादुर शास्त्री, इन्दिरा गाँधी तथा राजीव गाँधी के साथ कांग्रेस की धारा सौ वर्ष का इतिहास पूरा कर रही है। इस बीच देश ने कई उतार-चढ़ाव देखे—राजनीतिक, आर्थिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुहीमों पर चुनौतियों का सामना किया पर यदि देखा जाए तो इन्दिरा गाँधी के शासनकाल में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की सफलता, वैज्ञानिक तथा तकनीकी समृद्धि, हरित-क्रान्ति, दूरदर्शन-केन्द्र, अणु-विस्फोट तथा दूरसंचार-उपग्रहों का निर्माण उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हैं। आज जब काँग्रेस अपनी स्थापना के सौ वर्ष पूरी कर रही है तब इन्दिरा जी की शहादत और राजीव का आगमन एक युग के अन्त और दूसरे के प्रारम्भ की सूचना दे रहे हैं। काँग्रेस संघर्ष और सफलता के सोपान पर चढ़कर देशवासियों के हृदय में उतरी है और आज भी यदि उसके प्रति आस्था है तो उन मूल नीतियों के कारण है, जिन्हें गाँधी जी ने वाणी दी थी। आशा है, काँग्रेस की तरुणाई, जन-मानस की व्यथा और जरूरतों को पहचानेगी तथा इस पवित्र-धारा को उसी आस्था के साथ आगे बढ़ाएगी, जिस आस्था के साथ गाँधी, नेहरू, पटेल प्रभृति महापुरुषों ने इसे आगे बढ़ाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के युग-पुरुष पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी

हिन्दी के शीर्षस्थ पत्रकार तथा गाँधीवादी चिन्तक पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी का निधन ६३ वर्ष की अवस्था में अपनी जन्म-भूमि फिरोजाबाद में हुआ। उनकी साहित्यिक सेवाओं के लिए राष्ट्रपति जी ने उन्हें पद्मभूषण की उपाधि से सम्मानित किया था। १९५२ में उन्हें संसद में मनोनीत किया गया। वह बारह वर्ष तक राज्यसभा के सदस्य रहे। इन वर्षों में उनका आवास अनेक साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र रहा। बालकृष्ण शर्मा नवीन, मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह दिनकर, सेठ गोविन्ददास तथा डा० रघुवीर के साथ संसद में चतुर्वेदी जी हिन्दी के प्रबल पक्षधर थे। हिन्दी-प्रचार के लिए उन्होंने दिल्ली में हिन्दी-भवन की स्थापना की। रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा आचार्य क्षितिमोहन सेन से आपके घनिष्ठ सम्बन्ध थे। शान्तिनिकेतन में हिन्दी-भवन की स्थापना चतुर्वेदी जी की प्रेरणा से ही हुई। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की हिन्दी-भवन में नियुक्ति चतुर्वेदी जी की सदाशयता का ही फल थी, द्विवेदी जी अन्त तक चतुर्वेदी जी के प्रति श्रद्धावनत रहे।

१९२८ से १९३७ तक कलकत्ता रहकर आपने विशाल भारत का संपादन किया। बाद में टीकमगढ़ से 'मधुकर' का सम्पादन किया। उग्र जी के चाकलेट के विरुद्ध घासलेटी साहित्य का आन्दोलन चतुर्वेदी जी ने चलाया। कुण्डेश्वर में गाँधी-भवन की स्थापना कराई। छतरपुर में भी गाँधी-भवन की स्थापना आपकी प्रेरणा से हुई। दीनबन्धु एन्ड्रूयूज तथा सत्यनारायण कविरत्न की जीवनी लिखकर आपने नई शैली का सूत्रपात्र किया। पत्र-लेखन में तो उनका मुकाबला ही नहीं किया जा सकता। महात्मा गाँधी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महावीरप्रसाद द्विवेदी, पद्मसिंह शर्मा आदि के हजारों पत्र उनके संग्रह में सुरक्षित हैं। स्वयं उन्होंने एक लाख से अधिक पत्र लिखे हैं। पद्मसिंह शर्मा के पत्र हिन्दी जगत् के सामने चतुर्वेदी जी की कृपा से ही आ सके। विदेशी विचारकों में प्रिंस क्रॉपाटकिन, एमर्सन, तुर्गनेव, रोम्यां-रोलाँ, स्टीफन ज्विग तथा गोर्की से वह विशेष रूप से प्रभावित हुए। पत्रकारिता में उनके आदर्श थे पं० रामानन्द भट्टाचार्य, सी०वाई० चिन्तामणि तथा गणेशशंकर विद्यार्थी। स्वामी श्रद्धानन्द से भी उनका निकट का परिचय था। स्वामी श्रद्धानन्द और दीनबन्धु एन्ड्रूयूज के पत्र-व्यवहार की जानकारी चतुर्वेदी जी ने मुझे एक पत्र में दी थी।

दिवगंत हिन्दी साहित्यकारों और क्रान्तिकारियों के श्राद्ध का आयोजन चतुर्वेदी जी के जीवन का अभिन्न अंग रहा। बालमुकुन्द गुप्त स्मृतिग्रन्थ, सम्पूर्णानन्द अभिनन्दन ग्रन्थ, पद्मसिंह शर्मा स्मृति ग्रन्थ तथा नाथूराम अभिनन्दन ग्रन्थ चतुर्वेदी जी के सम्पादन में ही प्रकाशित हुए। काकोरी के अमर शहीद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशफाक उल्ला की स्मृति में उन्होंने 'यादगारे अशफाक' पुस्तक छपवाई। उनकी प्रेरणा से श्री रमेशचन्द्र दुबे के साथ आचार्य पद्मसिंह शर्मा स्मृति ग्रन्थ का सम्पादन मैंने किया। उसमें दुर्लभ संजीवन भाष्य भी संकलित कर दिया गया है। इसके बाद चतुर्वेदी जी ने मुझे कोटद्वार बुलाया। उस परिणत वय में भी जिस उत्साह और वात्सल्य से उन्होंने मुझे अपने पास बैठाकर भावी आयोजनों की रूपरेखा समझाई, वह आज भी मेरे हृदय पर अंकित है। बाद में एक पत्र आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी को लिखकर उन्होंने मेरे परम्परागत पाण्डित्य की प्रशंसा की। अपने से बहुत छोटों के प्रति इतनी उदारता तथा सदाशयता चतुर्वेदी जी की निजी विशेषता थी। 'पुनर्नवा' के प्रकाशन पर जब मैं काशी गया तो द्विवेदी जी ने चतुर्वेदी जी के पत्र की चर्चा की। इसके बाद द्विवेदी जी की कृपा का फल मुझे सहज ही मिलने लगा।

चतुर्वेदी जी की मौलिक कृतियों में देशभक्त एन्ड्रूयूज, विश्व की विभूतियाँ, प्रवासी भारतवासी, हमारे आराध्य, रेखाचित्र और संस्मरण, साहित्य और जीवन, महापुरुषों की खोज में तथा रूस की साहित्यिक यात्रा के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। उनकी "फिजी में मेरे इक्कीस वर्ष" पुस्तक जब छपी तो एक तहलका मच गया। कहते हैं इसी से प्रेरित होकर मैथिलीशरण जी ने किसान काव्य तथा लक्ष्मणसिह चौहान ने कुलीप्रथा नाटक लिखा था।

चतुर्वेदी जी ने विशाल भारत के माध्यम से कई नवीन प्रतिभाओं को प्रकाश दिया। राहुल, जैनेन्द्र, दिनकर, बच्चन, अज्ञेय, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, सत्यवती मल्लिक, यशपाल जैन सब विशाल भारत से चमके। प्रभाकर माचवे ने ठीक ही कहा है कि उनकी लेखनी न होती तो आज हिन्दी के कई लेखक और कवि सचमुच अज्ञेय और अज्ञात ही रह जाते। जनपदीय आन्दोलन के सिलसिले में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल को प्रेरित करने वाले चतुर्वेदी जी ही थे। महाकवि नाथूराम शंकर तथा आचार्य पद्मसिंह शर्मा के वे परम भक्त थे। "दीन क्या है किसी कामिल की इबादत करना"—उनका मोटो था। चकबस्त की यह पंक्ति उन्हें बड़ी प्रिय थी। ऐसे गुणग्राही, निश्छल तथा हिन्दीभक्त साहित्यकार का निधन सचमुच बड़ी रिक्तता है। हिन्दी के इस सुयोग्य महापुरुष को हमारी अन्तिम सजल विदा।

मिट्टी से रस की तलाश या मधुशाला की स्वर्ण जयन्ती

महाकवि बच्चन की प्रसिद्ध कविता मधुशाला की स्वर्ण जयन्ती मनाई जा रही है। इस रचना को छपे पचास साल हो गए। इस बीच हिन्दी कविता के कई आन्दोलन चले और डूबे पर मधुशाला नित्य नवीनता से पाठकों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकर्षण का केन्द्र बनी रही। इन्दौर हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन का सभापतित्व महात्मा गाँधी जी ने किया था। बच्चन उस सम्मेलन में कविता पढ़ने के लिए निमन्त्रित थे। कहा गया कि गाँधी जी के सभापतित्व में होने वाले सम्मेलन में मदिरा का गुणगान नहीं होना चाहिए। मधुशाला हेय है या त्याज्य है, गाँधी जी ने बच्चन को बुलाया और मधुशाला सुनाने के लिए कहा। बच्चन जी ने मधुशाला की संकेतार्थ भरी दो रुबाइयाँ उन्हें सुनाईं—

मदिरालय जाने को घर से चलता है पीने वाला,
किस पथ से जाऊँ, असमंजस में है वह भोला-भाला;
अलग-अलग पथ बतलाते सब, पर मैं यह बतलाता हूँ,
राह पकड़ तू एक चला चल पा जायेगा मधुशाला।
मुसलमान औ हिन्दू हैं दो, एक मगर उनका प्याला,
एक, मगर, उनका मदिरालय, एक, मगर, उनकी हाला,
दोनों रहते एक न जब तक मंदिर-मस्जिद में जाते,
बैर बढ़ाते मंदिर-मस्जिद, मेल कराती मधुशाला।

मधुशाला छायावादी काव्य के प्रौढ़ उतार पर हिन्दी में आई। भाषा, भाव, शैली, लय सभी दृष्टियों से मधुशाला में नवीनता और ताज़गी थी। रामवृक्ष बेनीपुरी ने मधुशाला की बढ़ती हुई लोकप्रियता को देखकर पटना से प्रकाशित योगी में प्रति सप्ताह मधुशाला के विरुद्ध लिखना शुरु किया। बच्चन जी ने हाला शीर्षक कविता इसी पटना के योगी के प्रति लिखकर कहा था कि हिन्दी में जन-मानस से जुड़ी कविता को झुठलाना जन-चेतना के साथ अन्याय करना है। मधुशाला का यह विश्वास इतना अटल था कि उसके विरोधियों के वक्र स्वर काल के गर्त में गहरे डूब गए और मधुशाला आज भी सोलह वर्ष जैसी स्फूर्त और उल्लासमयी है। अपने १५-५-८५ के पत्र में बच्चन जी ने मुझे कृपापूर्वक लिखा है—

घिस जाता पड़ काल चक्र में,
हर मिट्टी के तन वाला।
पर अपवाद बनी बैठी है,
मेरी यह साकी - बाला।

जितनी मेरी उम्र वृद्ध मैं,
उस से ज्यादा लगता हूँ।
अर्द्धशती की होकर बैठी,
षोडश वर्षी मधुशाला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चन जी ने अपनी आत्मकथा 'क्या भूलूं क्या याद करूँ' में लिखा है कि 'जहाँ एक ओर मधुशाला का विरोध था, वहाँ दूसरी ओर उसका स्वागत भी था। मधुशाला लोग खरीद रहे थे—इसका सबूत तो मेरे पास ही था—पढ़ रहे थे, गा रहे थे, सुना रहे थे। कवि सम्मेलनों में लोग उसे सुनकर पागल हो जाते थे और मेरे लिए भी यह कम आश्चर्य की बात न थी कि लोग उसमें क्या पाते हैं जो सुनकर विभोर हो जाते हैं।' मधुशाला की लोकप्रियता के दिनों में श्यामा के अस्वस्थ रहने से बच्चन का संघर्षजीवी सर्जक अन्दर से अगाध वेदना में डूबा रहता था और सम्मेलनों में उल्लास की तरंगें उठाता रहता था। उन्हीं के शब्दों में— 'मधुशाला से मेरे अवचेतन, चेतन, अतिचेतन, संस्कार, अनुभूति में संचित स्मृति-कल्पना, भय, आशा, निराशा, वेदना-संवेदना, हर्ष-विमर्श-संघर्ष, सम्मोह-व्यामोह-विद्रोह—सबका बड़ा क्षरण हुआ—कैथारसिस—परगेशन—रेचन।' मधुशाला बच्चन के वैयक्तिक अभावों का आनन्दरूप विस्फोट था जिसने अनेक दमित चेतना वाले नवयुवकों और किशोरों को अपने प्रकृत रूप की पहचान कराई। मिट्टी से रस को तलाशने वाले वह पहले कवि थे। अपने पत्र में इस आशय की एक रुबाई उन्होंने मुझे और भेजी है—

गली गली की खाक छानता,
फिरा कभी यह मतवाला।
लिए हाथ में टूटा-फूटा,
छूंछा मिट्टी का प्याला।

मिट्टी से रस खींच सुरा के
घट, पर उसने क्या साजे ?
आज स्वर्ण की सीढ़ी पर चढ़,
शीश उठाती मधुशाला।

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि नरेन्द्र शर्मा ने इस परिस्थिति का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि 'बच्चन से पहले का आधुनिक हिन्दी काव्य हितवादी और छायावादी था। कवि सहृदय द्वारा आदृत और प्रशंसित था। बच्चन ने ही पहली बार सहृदय श्रोताओं के जमघट में घुसकर धड़ल्ले से मधुस्फोट करने की ठानी थी।' बच्चन ने जनता के हृदय में घुसकर उसे उसकी अन्तस्ध्वनि सुनाई। १९३४ में लालकिले के मैदान में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन पर आयोजित कवि सम्मेलन में श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध के सभापतित्व में जब कविताएँ हूट होने लगीं तब कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर के अनुसार केवल बच्चन जमे और इसका कारण था रसीले भाव, सीधे-सादे शब्द, पढ़ने का तरन्नुम और एक अल्हड़ मादकता। मधुशाला का यह युगारम्भ था। आर्थिक असमर्थता से जूझते कवि का यह मादक विस्फोट जो परिवार के तम, भय,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मातमी वातावरण में सिर पर उषा का आशावान दीप लिए आया, हिन्दी-जगत् में भी एक नई रोशनी का कारण बना। विरोधाभासी क्षणों की मुखरता है मधुशाला में। राग-विराग और उत्थान-पतन का चक्र घुमाती हुई मधुबाला मधुशाला में आ खड़ी हुई है। साकी और प्याला सूफी साधना के सांकेतिक प्रतीक रहे हैं। मृत्यु को चुनौती देती हुई उल्लास की उमंग सुरा है और अतीन्द्रिय भावबोध की पहचान सुरा का स्वाद। प्रेम का मन्दिर है मधुशाला और बिना अन्दर-बाहर तपे, संघर्ष में उतरे, प्रेम की सुरा मिलनी कठिन है। मधुशाला की एक पंक्ति है भी—

प्यास तुझे तो विश्व तपाकर
पूर्ण निकालूंगा हाला।

बच्चन का कवि सुरा-प्याला, दीप-पतंग, हंस-मानसरोवर तथा पपीहा के माध्यम से एक ही बात कहता है और वह है भौतिक-अभौतिक का संघर्ष। मधुशाला में जहाँ व्यक्ति की मुक्ति की घोषणा थी, वहाँ छुआछूत, ऊंच-नीच, धर्म-मजहब से मुक्त राष्ट्र की गुहार भी। मधुशाला गाने वाला कवि समाज से अछूता न था। मधुशाला नाम से ही चौंकने वाले इस तथ्य पर ध्यान दें तो मधुशाला का वास्तविक लक्ष्य पा सकते हैं। मधुशाला की राष्ट्रीय चेतना और सामाजिकता उद्घाटित करने की आवश्यकता है और यही शायद उसके चिर तारुण्य का रहस्य भी। बच्चन जी को मधुशाला की स्वर्ण जयन्ती पर हार्दिक बधाई। उनके कर-कमलों में एक रुबाई मेरी भी—

पाँच दशक पहले हिन्दी के
घर का खोल जटिल ताला,
मानव जीवन के सुख दुख का
सहज उड़ेल दिया प्याला।
इसीलिये बूढ़े पन्नों पर,
इतिहासों के थिरक रही,
चिर तारुण्य भरी मधुशाला,
राग - विराग मयी हाला ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋतं वदामि

[१]

चल, चल रे मुसाफिर !
तू कहाँ टिक गया ?
ये तो तेरा विश्राम-स्थल नहीं।
और अभी विश्राम का समय ही कब आया है ?
अभी भगवान के कार्य अधूरे पड़े हैं।
तेरे चारों ओर गरीबी है, दारिद्र है, अज्ञान है, हिंसा है ।
प्रजातन्त्र राजाजन किंकर्त्तव्यविमूढ़ हैं।
तू चल, रास्ते की खोज कर।
अकेला ही चल।
यदि रास्ता मिल जाए तो इनको दिखाना।
न मिले तो तलाश में स्वयं को खो देना।

[२]

निकल तीर ! कमान से निकल !
लक्ष्य भेद कर। तूने वर्षों तपस्या की है।
वर्षों साधना की है, वर्षों अभ्यास किया है ।
अब तेरी परीक्षा की घड़ी आ गई।
देखें अर्जुन ! तू सफल होता है या विफल ?
पर चिन्ता मत करना ।
सफल हुआ तो हुआ, असफल हुआ तो भी सफल हुआ
किसी की साधना कभी विफल नहीं होती।
साधना ही फल है। तपना ही फल है।

[३]

भगवान करे ! मेरे आँसुओं के प्रवाह में तेरा तमस् बह जाए।
तू सतोगुणी बन ! मेरा पूरा तप तुझे लग जाए ।
तू खड़ा हो, सूर्य की प्रेरणा से, सूर्यवत्
तू चमक, दुनिया को राह दिखा।
"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत् ।"

—बलभद्रकुमार हूजा
कुलपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
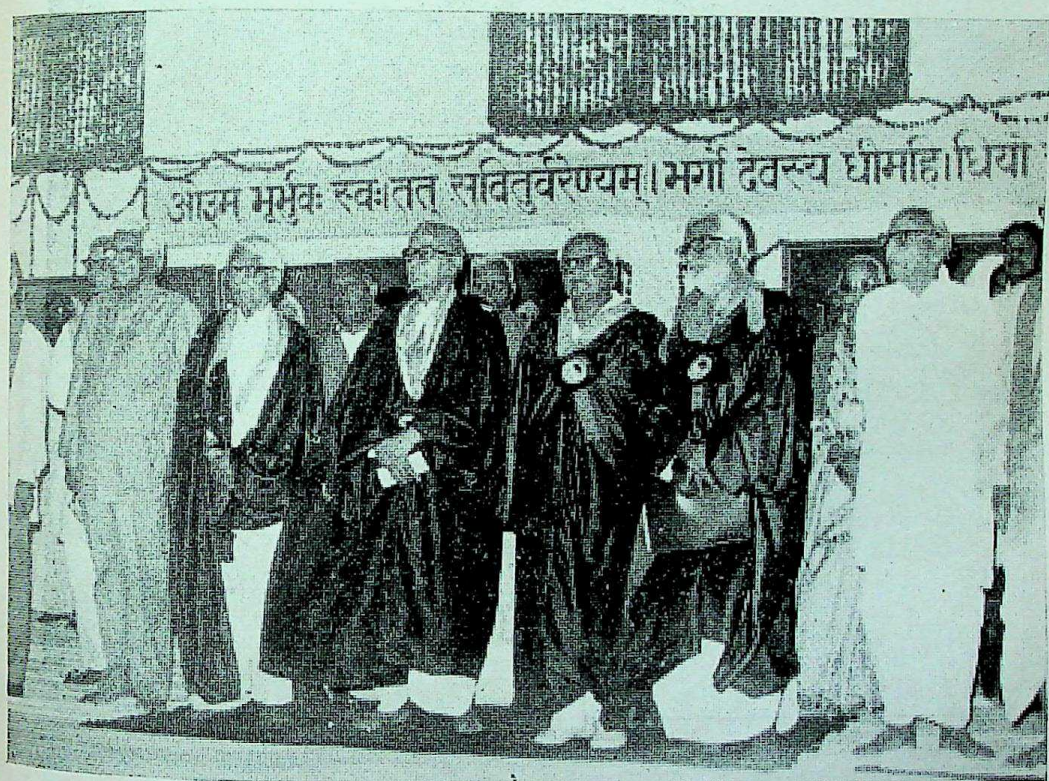
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के दीक्षान्त-समारोह की एक झाँकी।
(चित्र में) बाएँ से—डा० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, परिद्रष्टा; श्री वीरेन्द्र जी, कुलाधिपति; श्री सत्यदेव भारद्वाज वेदालंकार, मुख्य अतिथि; श्री बलभद्रकुमार हूजा, कुलपति तथा डा० सत्यकेतु विद्यालंकार, सीनेट, सिंडीकेट तथा शिक्षा-पटल के मान्य सदस्यों तथा प्राध्यापकों के साथ कुलवन्दना करते हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रौढ़ सतत शिक्षा एवं विस्तार संगोष्ठी के उद्घाटन सत्र में मंगलाचरण करते हुए—प्राचार्य त्यागी, श्री ए० के० सिंह, कुलपति श्री हूजा, श्री एस० यू० अन्सारी (दिल्ली), कुलसचिव अरोड़ा तथा श्री कालिया, वि० फै० गुरुकुल कांगड़ी पुस्तकालय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल्मीकि रामायण में काव्य, संस्कृति और दर्शन

डॉ० छविनाथ त्रिपाठी
पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय

आदिकवि बाल्मीकि के रामायण का आरम्भ उस शैली में हुआ है, जिसे आगे चलकर 'पौराणिक शैली' का नाम मिला। बाल्मीकि ने तपः-स्वाध्यायनिरत नारद से पूछा कि अनेक उत्तम गुणों से संयुक्त आदर्श चरित्र इस विश्व में किसका है? नारद ने राम के विविध गुणों का संक्षेप में उल्लेख किया और उनके महान् कार्यों की एक संक्षिप्त रूप-रेखा प्रस्तुत कर दी।[1] नारदोक्त इस संक्षिप्त रामायण का पाठ-फल भी निर्दिष्ट कर दिया गया है :

> इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम् ।
> पठेद्रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१।१।९८।
> एतदाख्यानमायुष्यं पठन् रामायणं नरः ।
> सपुत्रपौत्रः सगणः प्रेत्य स्वर्गे महीयते ॥१।१।९९।
> पठन् द्विजो वागृषभत्वमीयात् स्यात् क्षत्रियो भूमि पतित्वमीयात् ।
> वाणिग्जनः पण्यफलत्व मीयात् जनश्चे शूद्रोऽपि महत्त्वमीयात् ॥१।१।१००॥

इस फल-निर्देश से स्पष्ट संकेत मिलते हैं कि बाल्मीकि को राम-कथा परम्परा से मिली थी, यह कथा धर्म-कथा के रूप में प्रचलित थी। इसके श्रवण से लौकिक और पारलौकिक फल की प्राप्ति मानी जाती थी तथा यह रामकथा चारों वर्णों में समान रूप से लोकप्रिय थी। नारदोक्त रामायण का अन्तिम छन्द अनुष्टुप् नहीं है। प्रत्येक काण्ड में दो प्रकार के सर्ग हैं। एक प्रकार के वे सर्ग हैं जिनका अन्तिम छन्द भी अनुष्टुप् ही है, दूसरे प्रकार के वे सर्ग हैं जिनका अन्तिम छन्द वंशस्थ हैं या अनुष्टुप् से भिन्न हैं। बाल-काण्ड में इनकी संख्या एक चौथाई से अधिक नहीं है। ये छन्द प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं, क्योंकि सामान्यतः इन अन्तिम छन्दों में अनुष्टुप् र्वणित अंशों की पुनरावृत्ति दिखाई पड़ती है।

काव्य—

रामायण के सृजन का इतिहास इसमें ही अङ्कित है। तमसा-तीरवर्ती वन-प्रान्तर में विचरण करते हुए बाल्मीकि ने निठुर निषाद के बाण से विद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रौञ्च और बिलाप करती हुई क्रौञ्ची को देखा। उनका हृदय करुणाप्लावित हो उठा और उनके हृदय का शोक ही 'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वम्...'[2] के रूप में फूट पड़ा। मुनि स्वयं अनायास, शोकोद्भूत अपनी इस वाणी पर चकित हो उठे। पाद-बद्ध, समान अक्षरों से युक्त और वीणा की लय से समन्वित इस प्रथम कविता को शोकोत्थ होने के कारण श्लोक कहकर उन्होंने इसके अन्यथा न होने का स्वयं ही सहज आशीर्वाद भी दे दिया।[3] आश्रम में लौटने पर मुनि ध्यानमग्न हो गए। स्वयं ब्रह्मा ने उपस्थित होकर बाल्मीकि की जिज्ञासा शान्त की और पुरातन शब्दों से वाणी के नव-प्रवर्तन द्वारा प्राप्त श्लोकों में राम के वीरचरित के वर्णन की सम्मति दी।[4]

शिष्यों सहित बार-बार उस श्लोक के गाने पर ऋषि के हृदय में वही शोक उमड़ आया और वे भावितात्मा हो गए। इसी भाव-निमग्नता में बाल्मीकि ने रामचरित के अवगत (रावण-वध पर्यन्त) अंश की कथा पूरी की। उस पाठ्य, गेय और माधुर्य-सम्पन्न काव्य को कुश और लव ने ऋषि-मुनियों के सम्मेलन के समय वीणा पर गाया।[5] इसे सुनकर वहाँ उपस्थित सभी मुनियों की आँखें भर आईं और उन्होंने गीत की मधुरता के साथ श्लोकों के वैशिष्ट्य की प्रशंसा की। इस आख्यान को उन्होंने एक आश्चर्य तथा परवर्ती कवियों के लिए आधार एवं गीतों में भी गीत कहा।[6]

रामायण की कुछ विशेषताओं का उल्लेख उत्तर काण्ड में मिलता है। कुश-लव ने इस रामायण को दूसरी बार राम के दरबार में गाया, जहाँ छन्दोविद् सहित अनेक वर्गों के लोग विद्यमान थे। वहाँ रामायण का श्लोक-परिमाण भी चौबीस हजार बतलाया गया है।[7] रामचरित की एक दुर्बलता भी है जिसे परवर्ती कवियों ने भी उद्धृत किया है; वह है—लोकापवाद से भीत होकर अनुचित कार्य करना :—

लोकापवादो बलवान् येन त्यक्ता हि मैथिली।
सेयं लोक भयाद् ब्रह्मन् अपेत्यभिजानता॥ उ. का. ९७।४।

उत्तर काण्ड अनागत का वर्णन है।[8] रामायण के अन्त में जिस श्रवण-फल का निर्देश किया गया है, वह वैष्णवों की भक्ति-भावना का सूचक है।

आदिकाव्य रामायण के सृजन की प्रक्रिया के जो संकेत उपलब्ध होते हैं उनका सामान्यीकरण करने पर काव्य के कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य उभरते हैं। करुणा हृदय की मूल वृत्ति है। कारुणिक-हृदय ही संवेदनशील हो सकता है; वही दूसरों के दुःख से प्रभावित और विगलित होता है। काव्य-सृजन के मूल में सहृदय-हृदय की यह संवेदना कार्य करती है। हृदय को अभिभूत कर देने वाले दृश्य ही प्रेरक तत्त्व हैं जिनके संस्कार भावितात्मा की स्थिति उत्पन्न करते हैं। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थिति में ही स्मृतिजन्य और सर्जनात्मक कल्पना सक्रिय होती है, जो अविदित को विदित और अनवगत को भी अवगत कर देती हैं। शब्द, भावों को रूपायित करने वाले साधन मात्र हैं।

कविता या काव्य का संगीत तत्त्व ही उसे छन्द का रूप देता है। छन्द, पाठ्य भी होते हैं और गेय भी; पर गेयता उसका श्रृंगार है। पाठ्य और गेय, दोनों ही माधुर्य की अपेक्षा रखते हैं। यह माधुर्य काव्य के बाह्य रूप के लिए उतना आवश्यक नहीं है जितना उसके अन्त: के लिए। काव्य में गीतितत्त्व का समावेश उसे मधुर और जन-मन-हारी बनाता है।

वाणी और भावों की सार्थकता काव्य-सृजन में ही है। आदर्श और वीर चरित ही काव्य के वर्ण्य बन सकते हैं। ऐसे उत्तम चरित्रों के एकाध दोष कवि द्वारा परिमार्ज्य हैं। किसी भी काव्य के परीक्षक, उसके सहृदय श्रोता और पाठक हैं; यदि वे विद्वान् और छन्द-मर्मज्ञ हों तो और भी उत्तम है। श्रोताओं के तीन वर्ग हैं—संसार से विरक्त कारुणिक मुनि, जनसाधारण और राज-सभा की विद्वत् परिषद। उत्तम काव्य वही है, जो इन तीनों वर्गों को प्रभावित कर सके, उनकी आँखों में आँसू छलका सके।

काव्य का स्थायी भाव शोक या संवेदना है, उसी से रस की उत्पत्ति होती है। यह एक संवेदना ही नाना रूप ग्रहण कर श्रृंगार, हास्य, करुण आदि रसों की अभिव्यंजना में समर्थ होती है, रस ही काव्य की आत्मा है।[१] काव्य का अध्ययन 'वागृषभत्व' के लिए आवश्यक है।

काव्य संवेदनशील हृदय का स्वत:-स्फूर्त उद्गार है। भाव ही उसका मुख्य तत्त्व है; शब्द तो साधन मात्र हैं, भाषा के माध्यम से प्राप्त हैं; भावितात्मा ही उनका कुशल प्रयोग करता है। काव्य का प्रयोजन—वाणी की सार्थकता, आत्मसुख, यश और वीर चरित का गान ही है। काव्य का मूल संवेदना है, अत: करुण रस सर्वोपरि है।

ये सभी उक्त विचार रामायण में उपलब्ध हैं। बाल्मीकि ने इस आदि काव्य का सृजन कर, न केवल परवर्ती कवियों का पथ-प्रदर्शन किया, अपितु काव्य-सम्बन्धी उन सामान्य सिद्धान्तों का भी निर्देश किया जिनके आधार पर काव्य शास्त्रियों ने लक्षणग्रन्थों के निर्माण की ओर पग बढ़ाया। दण्डी ने तो काव्य का लक्षण रामायण को ही लक्ष्य में रखकर प्रस्तुत किया है।

रामायण आर्ष काव्य है, आदि काव्य है, महाकाव्य है; वैदिक साहित्य के बाद इसमें पहली बार लौकिक अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है। इसमें पहली बार आदर्श मानव-चरित्र की अवतारणा हुई है। पहली बार काव्य और संगीत का मंजुल समन्वय हुआ है; इसने प्रत्येक वर्ग के भारतीय जन-मानस को पहली बार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समान रूप से अभिभूत किया है । यह पहला काव्य है जो लोकविरक्त मुनियों एवं राज-परिषद् द्वारा समान रूप से परीक्षण का विषय बन कर प्रशंसनीय हुआ है। अपने उत्तम काव्य-गुणों के कारण ही परवर्ती कवियों का उपजीव्य रहा है। जिस परवर्ती कवि ने पुरातन कवियों का स्मरण किया है, उसमें बाल्मीकि को प्रथम स्थान दिया है।

बाल्मीकि रामायण का वस्तु-विधान ऋजु मार्ग से हुआ है। यह राम के जन्म से लेकर उनके जीवन की प्रमुख घटनाओं को, एक के बाद एक को, मणिमाला की तरह प्रस्तुत किया गया है, अतः उसमें कोई वक्रता नहीं है। वस्तु-विधान की एक ही विशेषता है—वह है—वर्णन विस्तार। वर्णन की इस विस्तृतता में कथा-बस्तु गहरी नदी की भाँति मन्द गति से आगे बढ़ती है। कुछ उपाख्यान कथा के अंग बन कर आये हैं, कुछ ऊपर से चिपकाए गए लगते हैं। इन्हें निकाल देने पर भी वस्तु-विकास पर कोई असर नहीं पड़ता। कुछ छन्द भिन्नता के कारण भी प्रक्षिप्त लगते हैं, ऐसे सर्गों में कथा या वस्तु-वर्णन की पुनरावृत्ति मात्र दिखाई पड़ती है। अनुष्टुप् छन्दों में प्रयुक्त भाषा की अपेक्षा इन सर्गों की भाषा भी अधिक प्रौढ़ लगती है। नगर, वन-उपवन, पथ, सर-सरिता, सागर, सूर्योदय, सूर्यास्त, पर्वत, गिरि-गुहा, आश्रम, जलविहार, द्वन्द्व-युद्ध, सैन्य-युद्ध आदि के विस्तृत वर्णन इसे महाकाव्य के विस्तार का रूप देते हैं। तत्कालीन समाज का व्यापक चित्र इसमें उपलब्ध होता है।

वर्णन की प्रक्रिया में जहाँ वंशावली[10] का जगह-जगह समावेश किया गया है वहाँ प्राचीन इतिहास के खण्ड-चित्र भी मिलते हैं। देश वर्णन[11] भी कई स्थानों पर मिलता है। सीता के अन्वेषण के लिए प्रेषित विनत (पूर्व), सुषेण (पश्चिम), शतबली (उत्तर) तथा हनुमानादि (दक्षिण) को निर्देश देते हुए सुग्रीव समस्त पृथ्वी के देशों का ही वर्णन करता है।[12] ये समस्त वर्णन रामायण को पौराणिक काव्य बनाने में योग देते हैं।

वर्णनों में पुनरावृत्ति भी दिखाई पड़ती है; जैसे बाल्मीकि द्वारा वर्णित प्रत्येक सरोवर—'हंस कारण्डवोपेताश्चक्रवाकोपशोभिता'[13] है। वर्षा, शरद, हेमन्त और बसन्त ऋतुओं के वर्णन मनोहारी तो हैं पर वे उद्दीपन विभाव के रूप में ही प्रस्तुत किए गए हैं। बाल्मीकि की वर्णन–शैली को ही नहीं, वर्ण्य विषयों को भी महाकाव्य के लिए उपयोगी मान कर उनका अनुसरण किया गया है।

बाल्मीकि रामायण के नायक राम 'सत्य-पराक्रम' मानव हैं। बाल्मीकि के प्रश्न और नारद के उत्तर में एक उत्तम मानव के जिन गुणों का उल्लेख हुआ है, वे हैं—नियतात्मा, महावीर्य, द्युतिमान्, धृतिमान्, वशी, बुद्धिमान्, नीतिमान्, वाग्मी, शत्रुदमनक, धर्मज्ञ, सत्यसन्ध, प्रजाहितकारी, यशस्वी, ज्ञानी, जीवलोक रक्षक, धर्मरक्षक, वेदवेदांग तत्त्वज्ञ, धनुर्वेदज्ञ, स्मृति सम्पन्न, प्रतिभावान्, सर्वलोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रिय, साधु, अदीनात्मा, आर्य, प्रियदर्शन, गम्भीर, क्रोध में कालाग्नि, क्षमा में पृथ्वी सदृश, त्यागी, सत्य में धर्म सदृश आदि। सुगठित शरीर वाले राम में ये सभी गुण हैं। राम का चरित्र और समय-समय पर किए गए उनके कार्य उक्त गुणों के परिचायक हैं। बाल्मीकि ने जहाँ नायक के उक्त गुणों को उभारा है, वहाँ राम की मानवीय दुर्बलताओं को भी छिपाया नहीं है। राम ने चित्रकूट में भरत को उपदेश दिया कि वे कैकेयी को न कोसें, वही राम सीताहरण के बाद कहते हैं—

हा सकामाद्य कैकेयी देवी मेऽद्य भविष्यति। रामा. ३।६२।१०।

लक्ष्मण प्रत्येक ऐसे संकट के समय, जब राम विचलित होते हैं, राम को उचित पथ का निर्देश करते हैं।[14] राम धैर्य छोड़ कर कभी-कभी स्वयं को कोसने लगते हैं—

राज्यं भ्रष्टं वने वासः सीता नष्टा मृतो द्विजः।
ईदृशीयं ममालक्ष्मी र्दहेदपि हि पावकम् ।। रामा. ३।६७।४।

बालिवध के समय जब राम को आहत बालि अधर्म के लिए फटकारता है तब राम द्वारा दिये गये तर्क अधिक प्रबल नहीं लगते।

रावणवध के उपरान्त सीता को प्राप्त कर लज्जित होना भी एक मानवीय दुर्बलता ही थी। अग्नि-परीक्षा के उपरान्त भी सीता के त्याग को बाल्मीकि ने स्वयं भी चन्द्र-कलंक की तरह कलंक ही माना है।

सीता द्वारा लक्ष्मण को कही गई कटूक्तियाँ नारी की दुर्बलता को ही व्यक्त करते हैं। लक्ष्मण का चरित्र और उज्ज्वल हो उठता है जब सीता के अलंकारों में वे केवल नूपुर ही पहचान पाते हैं—

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ।। रामा ४।६।२३

दशरथ का यह कहना कि मुझे बाँध कर अपना अधिकार प्राप्त कर लो, कैकेयी की मंथराप्रेरित विमति, पुत्र के प्रति चरम आसक्ति, कौशल्या का विलाप में सबको कोसना, भरत की वह लज्जा और अनुताप, जो मां ने दिया था; सीता का वन-गमन, लक्ष्मण का क्रोध, ऋषियों का राम-स्नेह, राम का सीता विरह, युद्ध में संताप आदि वे स्थल हैं, जो मानवीय सहज दुर्बलताओं को उभारते हैं। लक्ष्मण का चरित्र अधिक संतुलित और कठिनाइयों के समय अधिक उदात्त बना है। बाल्मीकि ने इन दुर्बल क्षणों की उक्तियों को भी उतनी ही सहजता से अभिव्यक्ति दी है, जितनी इन्हीं पात्रों के चरित्रों की उच्चतम उत्तमावस्था की उक्तियों को। इसीलिए बाल्मीकि मानवीय संवेदनाओं के आदि एवं महान् कवि बन गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामायण के स्थल-स्थल पर विविध रसों की अभिव्यंजना हुई है, पर दशरथ के पुत्राभावजन्य शोक से प्रारम्भ कर सीता के अन्तिम विछोह तक गृहस्थ-जीवन की अनेक उथल-पुथल के बीच करुण संवेदना एक सी प्रवाहित दिखाई पड़ती है।

बाल्मीकि की भाषा सरल, मंजुल और सहजग्राह्य है, विशेषत: अनुष्टुप् छन्दों की। उपमा-उत्प्रेक्षा के चमकते रत्न इनमें हैं और वे अनुष्टुप् के मेघों में विद्युत् दीप्ति की भाँति प्रतिभासित होते हैं। अलंकार प्रयोग की वाल्मीकि की यही अपनी शैली है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

प्रावृषीव शतह्रदा: ।१।३२।१२, तारा इव घनान्तरे १।३२।१४,
दीप्तमिवानलम् १।३६।१,

समुद्र इव पर्वणि १।५५।२०, नीहारमिव भास्कर: १।५५।२५, प्रणालीव नवोदकम् ।२।६२।१०।, कुछ उत्प्रेक्षाएँ बाल्मीकि को इतनी प्रिय हैं कि वे कई स्थलों पर ज्यों की त्यों मिल जाती हैं–जैसे—

विधूम इव कालाग्नि र्यम दण्ड निवापरम् ।।रामा० १।५५।२८ तथा १।५६।१६
रूपक के प्रयोग कम हैं, पर अप्राप्य नहीं हैं—

मन्थरा प्रभवस्तीव्र: कैकेयी ग्राह संकुल: ।
वरदानमयोऽक्षोभ्योऽमज्जयच्छोक सागर: ।।रामा २।७७।१३

संस्कृति—

बाल्मीकि रामायण की रचना कब हुई यह एक विवादास्पद प्रश्न है। ई० पू० ७०० से ई०पू० ३०० तक इसके रचनाकाल की बात कही जाती है, पर इसके विवरणों और भाषा के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वैदिक संहिताओं के बाद तथा बुद्ध के अभ्युदय के पूर्व की यह रचना है। प्रत्येक कवि अपने युग के सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेशों से प्रभावित तो होता ही है, वर्णन के लिए बहुत कुछ उनसे ग्रहण भी करता है, अत: रचनाकाल के अज्ञात होने के कारण इन वर्णित परिवेशों के आधार पर ही रामायण के सांस्कृतिक पक्ष का उद्घाटन समीचीन होगा।

बाल्मीकि रामायण में तीन प्रकार की संस्कृतियों का संगम दिखाई पड़ता है। नगरीय संस्कृति, आश्रम संस्कृति तथा वन्य या राक्षस-संस्कृति के रूप में इन्हें पहचाना जा सकता है।

नगरीय संस्कृति के भी दो रूप हैं जो आर्य और राक्षसों की नगरियों से सम्बन्धित हैं। इनके अन्तरों की पहचान अयोध्या और लंका के वर्णनों में प्राप्त की जा सकती है। अयोध्या समृद्ध नगरी है पर लंका उससे समृद्ध है। नगरी का वर्णन एक-सा है पर निवासियों के वर्णन में भिन्नता है। अयोध्या में वेदज्ञ, याज्ञिक,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धार्मिक, धनी, वशी, संयमी, राजर्षि व्यक्ति रहते हैं, वहाँ कामी, कदर्य, मूर्ख, नास्तिक और नृशंस नहीं दिखाई पड़ते।[16] चातुर्वर्ण्य व्यवस्था सुगठित थी।[17] राजा प्रजापालक था, जो आठ अमात्यों की सहायता से शासन करता था।[18] लंका का निर्माण विश्वकर्मा ने किया था, अट्टालिकाएँ अयोध्या से बड़ी थीं। कंचन स्तम्भ, रत्नों के ढेर, मणिवेदिकाएँ वहाँ अधिक थीं, पर निवासी क्रूर, कठोर, राक्षस योद्धा थे। विलास गृहों की भरमार थी। स्वयं रावण, पान-मत्त स्त्रियों के बीच (गवां मध्ये यथा वृषः) विलासी राजा की भाँति ही चित्रित किया गया है। अयोध्या वशी नागरिकों की नगरी थी, वह आर्य संस्कृति की प्रतीक थी, लंका भी पुलस्त्य ऋषि के वंशजों के हाथ में थी, पर वह भोगवादी अनार्य संस्कृति से प्रभावाच्छन्न थी।[19] अयोध्या के निवासी 'आर्य भाव पुरस्कृतः'[20] के साथ आचरण करते थे। लंका के लिए यह भाव उपेक्षणीय था। आर्य और अनार्य संस्कृतियों के प्रतीक इन दोनों नगरियों की तुलना से त्यागमयी और भोगमयी-वृत्तियों का स्पष्ट दर्शन हो जाता है।

नगरों से बाहर वन्य-प्रदेशों में सरिताओं और सरोवरों के किनारे ऋषियों के आश्रम बने हुए थे। इन आश्रमों में एक कुलपति था, जिसके नाम पर आश्रम का नामकरण होता था। इन आश्रमों की संरचना इस प्रकार की थी कि एक ओर तो वे प्रकृति के रमणीक स्थल प्रतीत होते हैं, दूसरी ओर वे सुरक्षित वन्य-दुर्ग प्रतीत होते हैं, जिनमें खाद्य-सामग्री, फल-मूल आदि के अतिरिक्त शस्त्रों के संग्रह भी थे। आश्रम चाहे विश्वामित्र का हो चाहे अगस्त्य का, इन आश्रमों से राक्षसों के वध के लिए समय-समय पर अनेक अस्त्र-शस्त्र प्राप्त करने का विवरण भी बाल्मीकि ने दिया है।[21] राम की लक्ष्य-पूर्ति में इन आश्रमों का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

अरण्य काण्ड के छठे सर्ग में विविध प्रकार के तपस्वि-संघों का विवरण बाल्मीकि ने दिया है। इनके नाम ही इनकी तपस्या की पद्धतियों के भी परिचायक हैं। ये हैं—वैखानस, बालखिल्य, संप्रक्षाला, मरीचिप, अश्मकुट्टा, पत्राहारा, दन्तोलूखली, उन्मज्जक, गात्रशय्या, अशय्या, अनवकाशिका, सलिलाहारा, वायु-भक्षा, आकाशनिलया, स्थाण्डिलशायी, ऊर्ध्ववासी, दान्ता, आर्द्र पटवासा, सजपा, तपोनिष्ठा, पंचतपान्विता। शबरी श्रमणी थी और शरभंग ऋषि, पर दोनों ने ही अपने आपको अग्नि हव्य बना दिया था। कृच्छ्र तप के ये उदाहरण हैं। निश्चित रूप से यह आश्रम संस्कृति, आर्य संस्कृति के तपोमूलक अंश को सुरक्षित रखने वाली अग्रवाहिनी थी। वैदिक युग के आरण्यकों की यह एक निकटवर्ती परम्परा थी।

राक्षस या वन्य-संस्कृति स्वेच्छाचारमूलक आचरण की प्रतीक है। वन्य-प्रदेश में शारीरिक बल और स्वच्छन्द विहार ही मुख्य तत्त्व हैं। द्वन्द्व-युद्ध का बाल्मीकि द्वारा स्थान-स्थान पर निर्देश इस वन्य संस्कृति की झलक प्रस्तुत करता है।[22] अस्तित्व और भोग की रक्षक यह संस्कृति स्त्रियों में शूर्पणखा और पुरुषों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में कबन्ध के आचरण द्वारा अभिव्यक्त हुई है। राक्षस संस्कृति के प्रतीक राजा रावण ने सीता को अपने बल-वैभव से परिचित कराते हुए यह भी कहा है कि स्त्रियों का अपहरण कर उनसे राक्षस-विवाह करने की व्यवस्था को आठ प्रकार के विवाहों में ऋषियों द्वारा भी स्वीकार किया गया है।

उक्त तीनों प्रकार की संस्कृतियों के विरोधाभास को बाल्मीकि रामायण में खूब उभारा गया है। यह एक विचित्र स्थिति है कि वन्य या राक्षस संस्कृति के प्रतिपालकों को भी आर्यवंश से ही सम्बन्धित बताया गया है—रावण पुलस्त्य ऋषि कुल का था, बालि, सुग्रीव शक्र पुत्र थे, कबन्ध अभिशक्त गन्धर्व था। जटायु, दशरथ का मित्र था। विशुद्ध राक्षस कुल के—ताटका, मारीच, सुबाहु, खर-दूषण, शूर्पणखा या रावण के पुत्र-पौत्रादि तथा सैनिक और सेनापति आदि ही थे। रक्त-मिश्रण और मिश्रित संस्कृति के अभ्युदय के संकेत देकर बाल्मीकि ने एक सांस्कृतिक इतिहास का प्रथम अध्याय लिखा है।

बाल्मीकि स्पष्टत: आर्य संस्कृति के पोषक हैं जिसके दो मूल तत्त्वों पर उन्होंने सर्वत्र बल दिया है—पहला है—दिये गए वचन का पालन करना और दूसरा है—स्त्री का पातिव्रत्य। राम सत्य सन्ध हैं, सत्य पराक्रम हैं, अत: वे आदर्श आर्य-पुरुष हैं, आदर्श पुरुष हैं। आश्रम संस्कृति में भी पति-परायणा अनसूया आदर्श हैं। बाल्मीकि की दृष्टि में आर्य संस्कृति का मूल आधार गृहस्थ आश्रम है। आश्रम-संस्कृति इसी गृहस्थ-जीवन से पोषण पाती है। भरद्वाज आश्रम में ससैन्य भरत का राजसी स्वागत गृहस्थों के बल पर ही किया गया था। अत्रि हों या अगस्त्य, अपनी पत्नियों के साथ आश्रम का संचालन करते थे। गृहस्थ जीवन में नारी ही प्रमुख सूत्रधार है, अत: उनके आचरणों पर ही यह टिका हुआ है। पातिव्रत्य की वास्तविक रक्षक नारी ही है, यह तभी सम्भव है जब वह पति-परायणा हो। यह पति-परायणता पति के प्रति प्रेम और विश्वास पर टिका हो। सारी रामायण इस गृहस्थ-जीवन के छिन्न-भिन्न होते हुए परिवेश को तो उजागर करती ही है, नारी की उस समस्या को भी उभारती है कि विषय परिस्थितियों में पड़कर भी वह कैसे पातिव्रत्य की रक्षा करे। सीता के चरित्र में इसी समस्या को उभारा गया है।

तीनों संस्कृतियों के परिप्रेक्ष्य में बाल्मीकि ने जिन नारी पात्रों का चित्रण किया है, वे गृहस्थ जीवन के ही भिन्न-भिन्न पहलुओं को प्रकाश में लाती हैं—क्षुद्र बुद्धि दासी मंथरा[23], पुत्रासक्ति में पति की उपेक्षा करने वाली कठोरहृदया कैकेयी[24], दुर्बल कौशल्या, मूक सुमित्रा[25], पति-परायणा सीता[26] जो पति को विपत्ति में जानकर देवर लक्ष्मण को कटूक्तियों से वेधने वाली[27], पति-परायणा अनसूया[28], स्वेच्छाचारिणी शूर्पणखा, दो-दो ब्याह करके परिस्थितियों के अनुसार ढल जाने वाली तारा और रुमा, राजमहिषी मन्दोदरी, सती सुलोचना और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमणी शबरी अपनी-अपनी संस्कृतियों में नारी की स्थिति की परिचायिका हैं। सत्यप्रतिज्ञ राम[29], भ्रातृ-प्रेम में मग्न लक्ष्मण[30], माता के आचरण से दुःखी महान त्यागी भरत[31], नारी और पुत्र-प्रेम के द्वन्द्व में फंसे दशरथ[32], मैत्री के प्रतीक गुह और सुग्रीव, महावीर हनुमान, भ्राता के कुकृत्यों का असमर्थक विभीषण, वन्य और राक्षस संस्कृति के ध्वजवाहक बालि और रावण, राजनीतिज्ञ विश्वामित्र, आश्रम संस्कृति के स्तम्भ अगस्त्य तथा आर्य संस्कृति से द्वेष रखने वाले अनेक राक्षसों के पुरुषचरित्र स्वयं ही अपनी-अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं को प्रकाशित करते हैं। सीता ने वन में अपने पति का अनुसरण किया किन्तु राक्षस संस्कृति के आचार का शिकार बनी। सीता का इसमें क्या दोष था? सीता-प्राप्ति के बाद राम की लज्जा और सीता का त्याग कर देना बाल्मीकि के संवेदनशील हृदय को उद्वेलित कर गया। पातिव्रत्य के अनन्य समर्थक बाल्मीकि द्वारा सीता के आचरण का समर्थन करना और राम द्वारा सीता के परित्याग को अनुचित मानना इस क्रान्तदर्शी कवि के विशाल और उदात्त दृष्टिकोण का परिचायक है। युद्ध और सांस्कृतिक संघर्षों में नारी की जो दुर्दशा होती है, उसे पुरुष-हृदय को उदारता के साथ उपेक्षणीय माना जाना चाहिए। नारी को पूर्व सम्मान के साथ अपनाना चाहिए, यही आर्य संस्कृति का उदात्त रूप है, बाल्मीकि का यह दृष्टिकोण आज के परिवेश में भी उतना ही ग्राह्य है।

बाल्मीकि रामायण में वर्णित तीनों संस्कृतियाँ पुरुष-प्रधान हैं। नारी की स्थिति मनु की व्यवस्था के अनुसार ही वर्णित है—

१–घृताची कन्याएँ वायु को कहती हैं—

पिता हि प्रभुरस्माकं दैवतं परमं च सः।
यस्य नो दास्यति पिता स नो भर्ता भविष्यति। रामा० १।३२।२२

२–जनक, राम से कहते हैं—

इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी भव ।।रामा० १।७३।२६।
प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृह्णीस्व पाणिना।
पतिव्रता महाभागा छायेवानुगता सदा ।। रामा० १।७३।२७

३–अनसूया, सीता से कहती है—

नगरस्थो वनस्थो वा शुभो वा यदि चाशुभः।
यासां स्त्रीणां प्रियो भर्त्ता तासां लोका महोदयाः। रामा० २।११७।२३
दुःशीलः कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जितः।
स्त्रीणामार्य स्वभावानां परमं दैवतं पतिः।वही २।११७।२४

ऐसी पति-परायणा स्त्री सहित ही गृहस्थ आश्रम को सर्वोत्तम माना जाता था और उसके त्याग करने की इच्छा अनुचित मानी जाती थी—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्णामाश्रमाणां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमुत्तमम्।
आहुर्धर्मज्ञ धर्मज्ञास्तां कथं त्यक्तुमिच्छसि ।। रामा० २।१०६।२२।

राक्षस संस्कृति के भी कुछ स्थल द्रष्टव्य हैं, जो गृहस्थ-जीवन की अपेक्षा भोगवादी वृत्ति को प्रगट करती है—

विराध कथन—

चरामि सायुधो नित्यमृषि मांसानि भक्षयन्।
इयं नारी वरारोहा मम भार्या भविष्यति ।। रामा. ३।२।१३

शूर्पणखा राम से—

चिराय भव भर्त्ता मे सीतया किं करिष्यसि ।। रामा. ३।१८।५।

रावण तो कन्या/स्त्री हरण के लिए विख्यात था। उत्तर काण्ड का चौबीसवां सर्ग विविध जातियों की कन्याओं के रावण द्वारा अपहरण की कथा प्रस्तुत करता है। विजय यात्रा के समय उसने अपनी बहन शूर्पणखा को विधवा बनाया। मधु ने रावण की रिश्ते की बहन कुम्भीनसी का अपहरण किया तो रावण सेना लेकर उस पर चढ़ दौड़ा। अकामा रम्भा से रमण कर नल कूबर के शाप का भागी बना। स्वयं रावण की मां कैकसी पुत्र की अभिलाषा से विश्रवा की दूसरी पत्नी बनी थी। रावण वेदवती से कहता है—

तस्य मे भव भार्या त्वं तं भुंक्ष्व भोगान् यथा सुखम्। रामा. ७।१७।२२।।

हठ करने पर वह अग्नि में इसलिए जल मरती है क्योंकि वह आर्य कन्या थी। रावण के सलाहकार भी उसे कन्यापहरण के लिए प्रोत्साहित करते थे। अकम्पन सीताहरण के लिए रावण को कहता है—

तस्यापहर भार्यां त्वं तं प्रमथ्य महावने। रामा. ३।३१।३१

भारतीय संस्कृति धर्मप्राणा रही है। धर्म वह है जो समाज-व्यवस्था को उचित रूप में धारण करे। बाल्मीकि का श्रेष्ठ समाज चार वर्णों पर आश्रित है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के अपने-अपने कर्त्तव्य हैं। इन कर्त्तव्यों के समन्वयन का भार राजा और राजधर्म पर निर्भर करता है। समाज का धर्म राजमूल से प्रवर्तित होता है।[33] स्वेच्छाचारी राक्षस-राजा वर्ण और आश्रम व्यवस्था के विनाशक थे। उनकी भोगवादी वृत्ति किसी भी मर्यादा के बन्धन को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थी। इसीलिए बाल्मीकि ने उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचारों को 'अनार्यजुष्टम्' कहा है और यह इक्ष्वाकुवंशीयों या आय राजाओं द्वारा स्वीकार्य नहीं है। भरत कहते हैं—

अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यं कुर्यां पापमहं यदि।
इक्ष्वाकूणामहं लोके भवेयं कुलपांसनः ।।रामा. २।८२।१४

यद्यपि बाल्मीकि रामायण में राजधर्म के अनेक तत्त्वों का उल्लेख है, किन्तु राजनीति को छोड़ दिया जाये तो धर्म सम्बन्धी कर्त्तव्यों की कुछ झलक निम्नलिखित उद्धरण दे सकते हैं -

वशिष्ठ का कथन दशरथ से—

स्वधर्मं प्रतिपद्यस्व नाधर्मं वोढुमर्हसि ।।रामा. १।२१।२७

राम का शील—

रामस्य शील वृत्तेन सर्वे विषय वासिनः।
तेषामति यशो लोके रामः सत्य पराक्रमः ।। रामा. १।७७।२४

सुमित्रा—

रामो धर्मे स्थितः श्रेष्ठो न स शोच्यः कदाचन। रामा. २।४४।४

राम—

अनुरक्ता हि मनुजाः राजानं बहुभिर्गुणैः। रामा. २।४६।५

भरत—

पिता हि भवति ज्येष्ठो धर्ममार्यस्य जानतः।
तस्य पादौ ग्रहीष्यामि स हीदानीं गति र्मम ।। रामा. २।७२।३३

गुह भरत से—

अयत्नादागतं राज्यं यस्त्वं त्यक्तुमिहेच्छसि। रामा. २।८५।१२

भरत—

किं मे धर्माद्विहीनस्य राजधर्मः करिष्यति। रामा. २।१०२।१।

ऋषिगण—

अधर्मः सुमहान्नाथ भवेत्तस्य तु भूपतेः।
यो हरेद् बलिषड्भागं न च रक्षति पुत्रवत् ।। रामा. ३।६।११।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजा धर्मेण रक्षत: । रामा. ३।६।१४
क्षत्रियै र्धार्यते चापो नार्त शब्दो भवेदिति । रामा. ३।१०।३

राम—

अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणम् ।
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषत: ।। ३।१०।१८,१९

मारीच—

परदाराभिमर्षात्तु नान्यत्पापतरं महत् । रामा. ३।३९।३०

आर्य राजा का परम धर्म प्रजाहित के साथ धार्मिक मर्यादाओं का पालन करते हुए कीर्ति अर्जित करना था।[34]

स्वयंवर की प्रथा आर्यों में राक्षस संस्कृति के प्रभाव से आई और उसे आर्यों ने मर्यादित रूप दिया। पराक्रम प्रदर्शन यहाँ भी था, पर अपहरण नहीं। जनक का यह कथन विचारणीय —

वीर्य शुल्केति मे कन्या स्थापितेयमयोनिजा ।
भूतलादुत्थितां तां तु वर्धमानां ममात्मजाम् ।। रामा. ०१।६६।१५

ऐतरेय ब्राह्मण का हरिश्चन्द्रोपाख्यान अत्यन्त प्रसिद्ध है। नरबलि की अत्यन्त विनष्ट होती हुई परम्परा का संकेत इस शुन: शेफ की कथा में मिलता है। बाल्मीकि ने इस उपाख्यान का समावेश रामायण में एक विशिष्ट उद्देश्य से किया है। पिता के लिए ज्येष्ठ पुत्र और माता के लिए कनिष्ठ पुत्र क्यों प्रिय हैं? क्योंकि श्राद्ध में इन्हीं को पिण्डदान का अधिकार है अत: ये दोनों विक्रेय नहीं हैं—

पिता ज्येष्ठमविक्रेयं माता चाह कनीयसम् ।
विक्रेयं मध्यमं मन्ये राजपुत्र नयस्व माम् ।। रामा. १।६१।२१।।

पुत्र-विक्रय के इस कार्य को आर्य संस्कृति मान्यता नहीं देती। पत्नी-वर के द्वारा राम को वनवास देना पुत्र-विक्रय जैसा ही जघन्य कार्य है, इसे दशरथ भी स्वीकार करते हैं—

अनार्य इति मामार्या: पुत्र विक्रायकं ध्रुवम् ।
विकरिष्यन्ति रथ्यासु सुरापं ब्राह्मणं यथा ।। रामा० २।१२।१८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारी-हत्या को भी आर्य लोग हीन समझते थे। वे क्षम्य समझी जाती थीं। भरत कहते हैं—

अबध्या: सर्वभूतानां प्रमदा: क्षम्यतामिति। रामा. २।७८।२१
हन्यामहमिमां पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम्।
यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम् ॥रामा. २।७८।२२

किन्तु दुष्टाचारयुक्त नारी का हनन देश और समाज के लिए किया जा सकता है, यह स्वयं विश्वामित्र का विचार था। ताटका वध के समय वे राम को इसी प्रकार का उपदेश देते हैं—

नहि ते स्त्रीवध कृते घृणा कार्या नरोत्तम।
चातुर्वर्ण्य हितार्थं हि कर्तव्यं राजसूनुना ॥ रामा. १।२५।१७
राज्यभार नियुक्तानामेष धर्मः सनातनः। रामा. १।२५।१६
अधर्म सहितानार्यो हताः पुरुष सत्तमैः ॥ रामा. १।२५।५२
गोब्राह्मण हितार्थाय देशस्य हिताय च।
तव चैवाप्रमेयस्य वचनं कर्त्तुमुद्यतः ॥ रामा. १।२६।५

इन तथ्यों से यह स्पष्ट है कि वर्ण और आश्रम व्यवस्था की मर्यादाओं का अनुशासित रूप में पालन करने वाला ही आर्य और धार्मिक था। संस्कृति में यज्ञ और अग्निसाक्षिता को प्रमुखता प्राप्त थी। आर्य संस्कार ही नहीं, मैत्री सम्बन्धों की स्थापना भी अग्नि की साक्षी में होती थीं।[35] समाज द्वारा परम्परा प्राप्त प्रथाएँ निन्द्य होने पर त्याग दी जाती थीं। जहाँ तक आर्य और राक्षस संस्कृतियों के टकराव का प्रश्न था, दोनों कट्टर प्रतीत होती हैं। आर्य आश्रम-संस्कृति के पक्षधर, पोषक और सहायक थे। राक्षस-संस्कृति आश्रमों के विनाश में तत्पर थी। वन्य प्रदेश के आर्य–अनार्य पशु–मांस पर समान रूप से निर्भर थे, पर आर्य मानव–मूल्यों का ध्यान रखते थे, राक्षस नहीं। एक संस्कृति मर्यादित थी, दूसरी अमर्यादित। जहां तक राजनीतिक व्यवस्था का प्रश्न है, आर्य और राक्षस राजाओं की राज्य व्यवस्था में कोई अन्तर नहीं दिखाई पड़ता। आर्य राजाओं के लिये राजसत्ता जनहित का उत्तरदायित्व वहन करने का माध्यम थी, अतः कुबेर हों या राम या भरत, राज्य का त्याग करने में संकोच नहीं करते थे। राक्षस या अन्य आर्येतर राजाओं के लिए राज्यसत्ता—सत्ता विस्तार और भोग विलास का माध्यम थी, अतः उनके लिए सौहार्द्र, भ्रातृत्व और मानवीय मूल्य निरर्थक थे। दृष्टिकोण का यह अन्तर दोनों संस्कृतियों के अन्तर का परिचायक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शन—

मानव का व्यक्तिगत या सामाजिक चिन्तन उसके सांस्कृतिक परिवेष से अप्रभावित नहीं होता। धर्म और दर्शन संस्क्रात के ही अंग हैं, जो सारे आचार-व्यवहारों और जीवन-मूल्यों को प्रभावित करते हैं। बाल्मीकि रामायण मानवीय संवेदनाओं के धरातल पर निर्मित काव्य है, दशन ग्रन्थ नहीं है; पर बाल्मीकि की चिन्तनधारा के तत्त्व इसमें जहाँ-तहाँ उभरे हैं।

बाल्मीकि रामायण ऋषि-प्रणीत काव्य है, और जिस युग का वह चित्रण करता है, उस समय भारतीय दर्शन के मूल स्रोत उपनिषदों की धारणाएँ, मनुस्मृति की समाज-व्यवस्था तथा इन दोनों से भिन्न अनात्मवादी स्वेच्छाचार, और नास्तिकता (वेदों को प्रमाण न मानना) के अतिरिक्त कोई विशिष्ट दर्शन व्यवस्थित रूप में उपस्थित नहीं था। उपनिषदों के आत्मतत्त्व को भी व्यापक स्वीकृति नहीं मिली थी। यही कारण है कि जीवन क्या है? जीवन क्यों है? आत्मा क्या है? शरीर से उसका सम्बन्ध क्या है? आत्मा का स्वरूप कैसा है? आत्मोपलब्धि का पथ क्या है? जैसे दर्शन के गहन-चिन्तन-मनन के आयामों की झलक बाल्मीकि रामायण में नहीं मिलती। वैदिक बहुदेववाद की झलक अवश्य है। राम विष्णु के अवतार हैं, और रामपक्षीय ऋक्ष, वानर जाति के उनके सहायक देवों के अवतार हैं। कबन्ध अभिशक्त यक्ष का अवतार है। अर्थात् पुनर्जन्म की धारणा सर्वत्र विद्यमान है। स्वर्ग और मर्त्यलोक की दोहरी भावना भी अभिव्यक्त हुई है। इस प्रकार दर्शन की अतल गहराइयों में उतरने की अपेक्षा, जो प्राप्त जीवन है, उसे कैसा होना चाहिए, आर्यपथ पर उसे कैसे चलाना चाहिए—बाल्मीकि ने इसी पर अधिक ध्यान दिया है। अतः बाल्मीकि रामायण में अभिव्यक्त दर्शन को—मीमांसा, वेदान्त, सांख्य-योग, न्याय-वैशेषिक—आदि की अपेक्षा—'जीवन का व्यावहारिक दर्शन' नाम दिया जा सकता है। चिन्तन का जो स्वरूप उभरा है वह भी इसी से सम्बन्धित है।

जीवन का एक मार्ग धर्म-सम्मत है। स्वयं राम कहते हैं—

> क्षमा यस्मिंस्तपस्त्यागः सत्यं धर्मः कृतज्ञता।
> अप्यहिंसा च भूतानां तमृते का गति र्मम॥ रामा. २।१२।३३

क्षमा, तप, त्याग, सत्य, धर्म, कृतज्ञता और अहिंसा—वैदिक जीवन-दर्शन के अनिवार्य तत्त्व हैं। धर्म-विरुद्ध जाबालि के कथन को इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है—

"कौन किसका बन्धु है? किससे क्या लेना-देना? हर प्राणी पैदा होता है—मर जाता है। जब कोई किसी का नहीं है, तो माता-पिता का सम्बन्ध ही क्यों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जोड़ा जाय। जैसे एक गाँव छोड़कर मनुष्य दूसरे गाँव बस जाता है, पहला आवास छोड़ देता है, इसी प्रकार पिता, माता, घर, धन, सब आवास की भाँति हैं, इन्हें क्यों सज्जित करना। पिता का राज्य छोड़कर वन का दुःखपूर्ण विषम मार्ग क्यों अपना रहे हो? अयोध्या तुम्हारी प्रतीक्षा में है, इन्द्र की तरह वहाँ का राज्य भोग करो। न दशरथ तुम्हारे कुछ थे, न तुम उनके कुछ हो। वे एक अन्य राजा थे, तुम अन्य हो। पिता के बीज और माता के रक्त से सन्तान का जन्म हो जाता है। वे राजा वहाँ गए जहाँ सबको जाना है। अर्थ-साधक को यहाँ ही फल मिल जाता है, धर्म साधक यहाँ दुःख प्राप्त कर मर जाता है। श्राद्धादि कर्म में अपने अर्थ (धन-भोग्यादि वस्तु) को लोग नष्ट ही करते हैं, क्या मरा हुआ कुछ खाता है? दूसरे के द्वारा खाया अन्न यदि दूसरे में जाता तो प्रवास में गये जनों को भी लोग श्राद्धादि या दानादि द्वारा उनका पेट भर देते। इसलिए परोक्ष को पीछे छोड़कर प्रत्यक्ष को स्वीकार करो।"[36]

जाबालि के इस कथन का राम से उत्तर भी दिलवाया गया है। कार्य सदृश प्रतीत होते हुए भी उक्त कथन अकार्य है तथा—

> निर्मर्यादस्तु पुरुषः पापाचार समन्वितः।
> मानं न लभते सत्सु भिन्न चारित्र दर्शनः॥ रामा. २।१०९।३
> कुलीनमकुलीनं वा वीरं पुरुषमानिनम्।
> चारित्रमेव व्याख्याति शुचिं वा यदि वाशुचिम्॥ रामा. २।१०९।४
> अधर्मं धर्मवेषेण यद्यहं लोक संकरम्।
> अभिपत्स्ये शुभं हित्वा क्रियां विधि विवर्जिताम्॥ रामा. २।१०९।६।
> सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः।
> सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम्। रामा. २।१०९।१३
> दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसि च।
> वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात्सत्यपरो भवेत्॥ रामा. २।१०९।१४
> एकः पालयते लोकमेकः पालयते कुलम्।
> मज्जत्येको हि निरयः एकः स्वर्गे महीयते॥ रामा. २।१०९।१५

राम के ये, तथा ऐसे ही और कथन—मर्यादा, उत्तम चरित्र तथा सत्य संधत्व को ही जीवन का सर्वोत्तम दर्शन सिद्ध करते हैं। ये दृष्टिकोण 'सत्यंवद, धर्मंचर' से भिन्न नहीं है। उत्तम चरित्र वाले को उत्तम गति मिलती है, इसका निदर्शन श्रवण की मृत्यु पर उसके पिता के कथनों से होता है—

> या गतिः सर्वभूतानां स्वाध्याया त्तपसश्च या।
> भूमिदस्याहिताग्नेश्च एकपत्नी व्रतस्य च॥
> गो सहस्र प्रदातृणां गुरुसेवाभृतामपि।
> देहन्यास कृतां या च तां गतिं गच्छ पुत्रक॥ रामा. २।६४।४३,४४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल्मीकि ने वैदिक और अवैदिक धारणाओं का ही द्वन्द्व नहीं प्रस्तुत किया है अपितु पुरुषार्थ और दैव का द्वन्द्व भी यत्र-तत्र प्रस्तुत किया है, जैसे—

लक्ष्मण—

विक्लवो वीर्यहीनो यः स दैवमनुवर्तते ।
वीराः संभावितमात्मानो न दैवं पर्युपासते ।। रामा. २।२३।१६

राम—

कालो हि दुरतिक्रमः । रामा. ३।६८।२१, ३।७२।७६।

अन्य स्थलों पर पुरुषार्थ[37] का महत्त्व भी उसी प्रकार वर्णित है जिस प्रकार दैव[38] का । पुरुषार्थ किसका सिद्ध नहीं होता, किसका सफल होता है—

अनिर्वेदं च दाक्ष्यं च मनसश्चापराजितम् । रामा. ४।४९।६
यो विषादं प्रसहते विक्रमे समुपस्थिते ।
तेजसा तस्य हीनस्य पुरुषार्थो न सिद्ध्यति ।। रामा. ४।६४।१०

आत्मा की अमरता आदि की गम्भीर चर्चा कहीं नहीं मिलती । शरीर नश्वर है, प्राण बुलबुले की तरह है । हनुमान बालि के मरने पर तारा को समझाते हैं—

शोच्या शोचसि कं शोच्यं दीनं दीनानुकम्पसे ।
कश्च कस्यानुशोच्योऽस्ति देहेऽस्मिन् बुदबुदोपमे ।। रामा. ४।२१।३।

बाल्मीकि रामायण के आधार पर बाल्मीकि की जीवन–दृष्टि न तो अस्पष्ट है, न गूढ़ या अनभिव्यक्त । वे वैदिक विधि–विधानों के समर्थक हैं । यज्ञ और कर्मकाण्ड को आर्य-जीवन का अंग मानते हैं । सामाजिक अनुशासन और उसकी मनुव्यवस्थित वर्णाश्रम व्यवस्था को सर्वोत्तम मानते हैं । स्वेच्छाचार और अमर्यादित आचरण को राक्षस-संस्कृति का अंग, अतः पाप मानते हैं । पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक, आर्य-अनार्य का भेद स्वीकार करते हैं । लोक-जीवन की मर्यादा वे राजसत्ता से ऊपर मानते हैं । यदि राजसत्ता के मूल में धर्म है तो वह लोकहित का साधन कर सकता है ।

सत्य का पालन व्यक्ति के चरित्र का सर्वोत्तम दीप्त पक्ष है । तन और मन से किये जाने वाले पाप के अतिरिक्त असत्य भाषण भी तीसरा पाप है ।[39] नर-नारी के पवित्र मर्यादित सम्बन्ध समाज को स्थायीत्व और सुख-शान्ति देते हैं, अन्यथा राज्य और समाज विप्लव होते हैं । मानव जीवन का लक्ष्य उत्तम चरित्र-सम्पन्न बन कर इस लोक में कीर्ति और मरणोपरान्त सद्गति प्राप्त करना है । पुनर्जन्म कर्मफल के अनुरूप होता है । ये विचार मीमांसा के समीप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवश्य हैं, पर स्वयं बाल्मीकि जब उत्तम चरित्र वालों को कष्ट भोगते देखते हैं तो वे इसे नियति का फल मान लेते हैं—

नियतिः कारणं लोके नियतिः कर्म साधनम् ।
नियतिः सर्वभूतानां नियोगेष्विह कारणम् ।। रामा. ४।२५।४
एषा वै नियतिः श्रेष्ठा यां गतो हरियूथपः ।। सारा. ४।२५।४।

नियतिवादी बाल्मीकि ने 'समय' को सबसे अधिक बलवान माना है, और 'कालो हि दुरतिक्रमः' उनका प्रिय मुहावरा रहा है, जिसका प्रयोग उन्होंने अनेक स्थलों पर किया है ।[40] बाल्मीकि ने इस 'नियति' को ही 'दिष्ट्या' शब्द द्वारा भी व्यक्त किया है—महर्षिगण राम से कहते हैं—

दिष्ट्या त्वया हतो राम रावणः पुत्रपौत्रवान् ।
दिष्ट्या विजयिनं त्वद्य पश्यामः सह सीतया ।। रामा.७।१।१९तथा२०-२८तक
न दैवस्य प्रमुंचन्ति सर्वभूतानि देहिनः ।। राम. ३।६६।११

नियति, दैव, समय, भाग्य की प्रमुखता तत्कालीन समाज की बद्धमूल धारण ही बाल्मीकि को भी स्वीकार थी किन्तु कर्म के उत्साह को भी उन्होंने सफलता की कुंजी मानी है ।[41] स्वेद बिन्दु समुत्थानि न विनश्यन्ति राघव[42] जैसी सूक्तियों में बाल्मीकि ने श्रम की महत्ता भी प्रतिष्ठापित की है ।

सांख्य दर्शन के प्रस्तोता कपिल माने जाते हैं । सागर के उपाख्यान में कपिल का उल्लेख हुआ है, पर वह भगवान का रूप है—

यस्येयं वसुधा कृत्स्ना वासुदेवस्य धीमतः ।
महिषी माधवस्यैषा स एव भगवान् प्रभुः ।।
कापिलं रूपमास्थाय धारयत्यनिशं धराम् ।
तस्य कोपाग्निना दग्धा भविष्यन्ति नृपात्मजाः । रामा. ४।४०।२,३
ददृशुः कपिलं तत्र वासुदेवं सनातनम् ।। रामा. १।४०।२५

शैव धनुष को राम ने तोड़ा । परशुराम द्वारा प्रदत्त वैष्णव धनुष को ग्रहण किया ।[43] अगस्त्य के आश्रम के वर्णन के समय बाल्मीकि ने वहाँ अनेक देवस्थानों का वर्णन किया है; उनमें विष्णु का स्थान तो है, पर रुद्र या शिव का नहीं ।[44] विष्णु और नारायण एक हैं ।[45] रावण नीलकंठ, वृषभध्वज, शंकर महादेव का उपासक था ।[46] राम स्वयं विष्णु के अवतार थे, रावण द्वारा धर्षित वेदवती ही सीता के रूप में उत्पन्न हुई थी ।[47] रामायण के उत्तरकाण्ड का १०९ और ११० वां सर्ग ही राम के विष्णु का अवतार होने का समर्थन करता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदा ब्राह्मण रूपेण गायत्री :सर्वरक्षिणी ।
ओंकारोऽथ वषट्कार: सर्वे राममनुव्रता: ।। रामा. ७।१०६।८
पितामह वाणी-आगच्छ विष्णो भद्रं ते दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव ।। रामा. ७।११०।८
वैष्णवीं त्वां सहतिजो यद्वाकाशं सनातनम् ।
त्वं हि लोकगति र्देव न त्वां केचित्प्रजानते ।। रामा. ७।११०।१०
ऋते मायां विशालाक्षीं तव पूर्व परिग्रहाम् ।
त्वामचिन्त्यं महद्भूतमक्षयं चाजरं तथा ।। रामा. ७।११०।११
पितामहवच: श्रुत्वा विनिश्चित्य महामति: ।
विवेश वैष्णवं तेज: सशरीर: सहानुज: ।। रामा. ७।११०।१२

अन्तिम समय में राम सशरीर वैष्णव तेज में विलीन हो गए । उत्तरकाण्ड अधिकतर राम की जिज्ञासा शान्ति के लिए रामायण के पात्रों का पौराणिक परिचय है । रामचरित्र के वर्णन के क्रम में बाल्मीकि ने इसकी रचना भी नहीं की थी; अत: युद्धकाण्ड तक राम मानव हैं । आर्यधर्म के विशिष्ट गुणों के प्रतीक हैं । वे सत्यप्रतिज्ञ एवं ऋषिकुल के रक्षक हैं, व्यवहार में सभी ऋषियों को प्रणाम करते हैं । श्रेष्ठ क्षत्रिय गुणों से युक्त हैं अत: सबके सत्कार के पात्र हैं । उनमें मानव-सुलभ दुर्बलताएँ भी हैं, रोते हैं, सीताहरण पर कैकयी को कोसते हैं, प्रकृति के रमणीय दृश्यों से विक्षुब्ध होते हैं । वे अवतार हैं और उनकी मानव-सुलभ दुर्बलताएँ उनकी लीलामात्र हैं, ऐसा आवरण वाल्मीकि ने कहीं नहीं डाला । एक तथ्य का आभास अवश्य मिलता है कि वासुदेव को भगवान का रूप माना जाता था, पर यह 'वासुदेव' वसु, वसुधा आदि के क्रम में ही है, इसी क्रम में वासुकी शब्द भी है । इस बाल्मीकिवर्णित वासुदेव का किसी अभारतीय जाति से कोई सम्बन्ध नहीं है । विष्णु और रुद्र दोनों वैदिक देवता हैं । राम ने परशुराम और अगस्त्य से वैष्णवी धनुष प्राप्त कर उससे विजय प्राप्त की, और विष्णु का महत्त्व बढ़ गया । बाद में अगस्त्य प्रभृति वैष्णव महर्षियों ने राम को सशरीरी विष्णु बना दिया । यह आश्चर्य की बात है कि चित्रकूट की अपनी पर्णशाला में प्रवेश के पूर्व वास्तु शमन के लिए मृग मांस से यज्ञ करते हैं[48] तथा वैश्वदेव बलि—

वैश्वदेव बलिं कृत्वा रौद्रं वैष्णवमेव च ।
वास्तु संशमनीयानि मंगलानि प्रवर्तयत् ।। रामा. २।५६।३१।

रौद्र और वैष्णव दोनों प्रकार की करते हैं, वे अन्त में केवल वैष्णव रह जाते हैं । इसी प्रसंग में एक और श्लोक उद्धृत किया जाना आवश्यक है—

यथा हि चोर: स तथा हि बुद्ध स्तथागतं नास्तिकमत्र विद्धि ।
रामा. २।१०६।३४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टीकाकारों ने जाबालि के कथन में या तो चार्वाक का दर्शन किया है, अथवा अनुष्टुपेतर प्रक्षिप्त छन्दों में बुद्ध-तथागत आदि के मतों को नास्तिक मतों में गिनने के लिए उनका उपयोग इस प्रकार किया है कि उन्हें मूल रचना का अंश मानकर संस्कृत साहित्य के इतिहासकारों ने बाल्मीकि रामायण के रचनाकाल को ही बुद्ध का परवर्ती सिद्ध करने का प्रयास किया है। बुद्ध के पिटकों में जिन जनपदों और नदियों आदि का नाम मिलता है वे बाल्मीकि रामायण के बहुत बाद के हैं। जिन नगर, आश्रम और वन्य संस्कृतियों का विस्तृत चित्रण रामायण में हुआ है वे वैदिक काल के कुछ ही बाद के हैं किन्तु चार्वाक और बौद्ध युग से बहुत पूर्व के हैं। इससे स्पष्ट है कि बाल्मीकि रामायण में किसी दर्शन की खोज की जा सकती है तो वह वैदिक दर्शन या मीमांसा दर्शन के परिप्रेक्ष्य में ही संभव है।

बाल्मीकि के विविध प्रकार के उपरोक्त विचारों का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि चारित्र्य को प्रमुखता देने वाले कवि का धर्म-दर्शन और संस्कृति परस्पर संश्लिष्ट है। एक की उपेक्षा कर दूसरे को नहीं समझा जा सकता। बाल्मीकि की 'अहिंसा' वैदिक अहिंसा है, बौद्ध या जैन अहिंसा नहीं है। वह मृगया का समर्थक है, पर क्रौञ्चवध पर करुणा विगलित हो उठता है। ऐसे कारुणिक का दर्शन सुव्यवस्थित मर्यादापूर्ण समाज का व्यावहारिक दर्शन है। उसके मानवतावादी व्यावहारिक दर्शन की झलक वहाँ मिलती है जहाँ वह नारद के मुख से रावण को कहता है कि—

"जो दैव से नहीं मारे जाते उसे हे रावण! तुम क्यों मारते हो? यह लोक तो मृत्यु के वशीभूत होने के कारण स्वयं मरा हुआ है, अतः ये मनुष्य कष्ट देने योग्य नहीं हैं। अपने कल्याण को न समझने वाले, अनेक प्रकार के दुःखों से घिरे, बुढ़ापे और सैकड़ों रोगों से ग्रस्त ये मनुष्य क्या मारने योग्य हैं? विविध प्रकार के अनिष्टों के स्रोत इस मनुष्यलोक में क्या कोई बुद्धिमान् व्यक्ति युद्ध-प्रेमी हो सकता है? भूख-प्यास-जरा आदि से स्वयं नष्ट हो रहे, विषाद और शोक से संतप्त मरे हुए को न मारो। इन मानवों को देखो, कितने मूर्ख हैं ये; कोई बाजे के साथ नाच रहा है, कोई आर्त आँसू बहा रहा है, कोई अपने परिवार के जनों के स्नेह में आसक्त नष्ट हो रहा है, पर इस कष्ट की उसे अनुभूति ही नहीं हैं; ऐसा मर्त्यलोक जो स्वयं पराजित है, तुम्हारे द्वारा जीता गया-सा ही है; अतः अगर विजय प्राप्त करनी ही है तो यम (मृत्यु) पर विजय प्राप्त करो, जिसके चंगुल में सारा मनुष्यलोक है।"[49]

यह है बाल्मीकि रामायण के दर्शन का मूल-सूत्र। एक सहृदय, करुणा-विगलित भारतीय महामुनि का दृष्टिकोण एक महाकवि के रूप में भी वही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहेगा, जो सारी मानवता के लिए एक ही कल्याणकारी दृष्टि से चिन्तन करता आया है—

> सर्वे ते सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
> सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्यभवेत्॥

और किसी के दुःख से द्रवित होकर ही बाल्मीकि की वाणी ने प्रथम लौकिक छन्द का वरण किया। मर्यादा पुरुषोत्तम के सत्य-पराक्रम को नगर-आश्रम और वन्य संस्कृतियों के व्यापक फलक पर चरित-महाकाव्य के रूप में चित्रित किया और पीड़ित मानवता के लिए युद्ध से विमुख होने तथा मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की अमर दार्शनिक प्रेरणा दी। बाल्मीकि का रामायण इसीलिए भारतीय संस्कृति का आदि प्रस्तोता और परवर्ती कवियों का निरन्तर प्रेरणा स्रोत बन कर अमर महाकाव्य का स्थान प्राप्त कर सका।

—ज्योतिष-अनुसन्धान-केन्द्र
ऋषिकुंज, ऋषिनगर, कुरुक्षेत्र

संदर्भ—

१ बाल्मीकि रामायण १।१।१७-९८॥
२ रामा. १।२।१५
३ वही १।२।१८
४ रामा. १।२।१३,३२-४२
५ वही १।४।७-९
६ वही १।४।२६-२७।
७ वही उ०का० ९४।२५-२६.
८ रामा. १।३।३९
९ ध्वन्यालोक १।५।
१० रामायण १।७० तथा २।११० उदाहरणार्थ
११ बालकाण्ड-१३ सर्ग, अयोध्या-१० सर्ग, ६८ सर्ग
१२ किष्किन्धा-४०-४३ सर्ग
१३ अरण्य १५।१३, किष्किन्धा ४।६३, सुन्दरकाण्ड ९।५० आदि
१४ रामा. ३।६६।५
१५ तुलनीय-बालकाण्ड सर्ग ५,६ तथा सुन्दरकाण्ड सर्ग
१६ रामा. १।६।९
१७ वही १।७
१८ वही १।७
१९ वही ५।२।,५।६,५।११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२० रामा. १।१।३५
२१. बालकाण्ड २७ सर्ग, अरण्य काण्ड १२ सर्ग
२२. जटायु-रावण युद्ध-अरण्य-५०-५१, मायावी बालियुद्ध किष्किन्धा-६, बालिसुग्रीव युद्ध-कि०-१२ सर्ग, दुंदुभिबालि युद्ध किष्किन्धा ११, उत्तरकाण्ड १।२४
परशुराम राम से—योजयस्व धनुः श्रेष्ठे शरं परपुरंजयम् ।
यदि शक्तोऽसि काकुत्स्थ द्वन्द्वं दास्यामि ते ततः ।।रामा. १।७६।२८
२३. रामा. २।८।३४,२।६।२१
२४. रामा. २।१७।१७
२५. वही २।४०।६।
२६. रामा. २।२७।४-५,
२७. रामा. ३।४५ सर्ग
२८. रामा. २।१,१७ सर्ग
२९. रामा. २।३४।४५
३०. रामा. २।५८।३१
३१. रामा. २।७२।३३,४४-४५,७४ से ८२ सर्ग तक
३२. वही २।३४।२६,२।४२।६-७-२१।
३३. धर्मः शुभं वा पापं वा राजमूलं प्रवर्तते । रामा. ३।५०।१०
३४. रामा. ७।४५।१०-१५
३५. द्रष्टव्य-राम-सुग्रीव, बालि-रावण आदि की मैत्री की पद्धति ।
३६. रामा. २।१०८।३-१७
३७. रामा. ४।४९।६, ४।६४।१०,७।१।१९
३८. रामा. ७।५०।३, ४,७।, ७।१।१९, ३।६७।२४, ३।६८,२५, ४।१।१२२
३९. रामा. २।१०९।२१, सत्यपालन-रामा. २।१०९।११
४०. रामा. ३।६८।२१, ३।७२।७६, ७।१९।२६ आदि
४१. रामा. ४।१।१२२
४२. रामा. ३।७३।२५
४३. रामा. १।७६।२७
४४. रामा. ३।१२।१८
४५. रामा. ७।६।३१,३२,४३
४६. रामा. ७।१६।३२-३६
४७. रामा. ७।१७।२५-३४
४८. रामा. २।५६।२२-३४
४९. रामा. ७।२०।५-१६

—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारत : साहित्यिक एवं पुरातात्विक मूल्यांकन

—सूर्यकान्त श्रीवास्तव
कयूरेटर, गुरुकुल संग्रहालय

भारतीय धार्मिक ग्रन्थों की परम्परा में वैदिक साहित्य के पश्चात् रामायण एवं महाभारत को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। वस्तुतः दोनों की विषय-वस्तु वैयक्तिक साहसिकता की कहानी प्रतीत होती है। अतएव बुद्धिजीवी वर्ग में इन महाकाव्यों की ऐतिहासिकता, रचनाकाल एवं विषयवस्तु की सत्यता विवाद का विषय बना हुआ है। इस समस्या को सुलझाने के लिये आवश्यक हो गया है कि साहित्यिक साक्ष्यों एवं पुरातात्विक उपलब्धियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जावे, सम्भवतः विवादास्पद समस्याओं का कोई हल निकल सके।

महाकाव्य के रचनाकाल के विषय में भी विद्वानों ने परस्पर विभिन्न राय व्यक्त की हैं। ईसा पूर्व ३१०२ वर्ष से लेकर ईसा पूर्व लगभग नवों शती के मध्य तक महाकाव्यों का रचनाकाल माना गया है।

उपलब्ध महाभारत ग्रन्थ में ईरानी, ग्रीक, रोमन व पार्शियन का वर्णन ही नहीं मिलता वरन् हूणों का भी उल्लेख मिलता है। अतः यह स्पष्ट ही है कि ग्रन्थ को वर्तमान स्वरूप लगभग चतुर्थ या पंचम शती में प्राप्त हुआ है। वस्तुतः महाभारत की सम्पूर्ण विषयवस्तु कुरूवंश के आपसी वैमनस्य की कहानी है।

पौराणिक गाथाओं के अनुसार महाभारत के कौरव वंश का उद्भव आदि-पुरुष मनु की पुत्री इला के सोम द्वारा जनित पुत्र,पुरूवी के पौत्र, राजा नहुष के पुत्र ययाति के शर्मिष्ठा द्वारा जन्मे पुत्र पुरू से प्रारम्भ होता है। सोम के वंशज होने के कारण इन्हें चन्द्रवंशी कहा गया है।

महाभारत एवं श्रीमद्भागवत् (स्कन्ध ९, २१-२०) के अनुसार कुरू प्रदेश की राजधानी हस्तिनापुर को राजा हस्तिन् ने बसाया था। महाभारत में आये प्रसंग के अनुसार दुष्यन्त एवं उनके पुत्र भरत (जिनके नाम पर उपमहाद्वीप का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम भरत खण्ड या भारतवर्ष पड़ा) का भी हस्तिनापुर के राजा होने का उल्लेख मिलता है। जबकि राजा हस्तिन् दुष्यन्त से पांचवे राजा हैं। इस विरोधी कथन का समाधान इस प्रकार किया जा सकता है कि हस्तिानपुर को विस्तार, महत्ता एवं प्रतिष्ठा राजा हस्तिन् के समय में प्राप्त हुई होगी।

हस्तिन् के पौत्र कुरू के नाम पर इस वंश का नाम कुरू वंश या कौरव वंश पड़ा तथा क्षेत्र का नाम कुरूप्रदेश। महाभारत (१-१०२-१, १०२-७२) के अनुसार हस्तिन् के बाद इसके पौत्र कुरू ने अपने कुल और राज्य की प्रतिष्ठा को बढ़ाया तथा अपने प्रदेश का नाम कुरूक्षेत्र दिया, प्रदेश से लगे जंगल को कुरू जंगल (अपने प्रदेश को कुरूक्षेत्र नाम दिया से प्रतीत होता है कि कुरू के समय में सम्भवतः राज्य उत्तराधिकारियों में बाँटा गया हो)।

विष्णुपुराण के अनुसार कुरू से चौदहवें राजा शान्तनु के काल में कौरव वंश ने राजनैतिक क्षेत्र में पुनः प्रतिष्ठा प्राप्त की। अन्य पुराणों में वंशानुक्रम तालिका में अन्तर मिलता है (ग्याहरवीं या सोलहवीं पीढ़ी का उल्लेख है) लेकिन कुरू प्रदेश की राजधानी हस्तिनापुर के बारे में सभी एक मत हैं।

शान्तनु पुत्र विचित्रवीर्य के दो पुत्र थे धृतराष्ट्र एवं पाण्डु। पारिवारिक वैमनस्य के कारण दोनों भाइयों (धृतराष्ट् एवं पाण्डु) में राज्य को बांट दिया गया। फलस्वरूप हस्तिनापुर सहित कुरूक्षेत्र धृतराष्ट्र के पास रहा तथा पाण्डु को इन्द्रप्रस्थ (वर्तमान दिल्ली (पुराना किला) का क्षेत्र दिया गया। तदनन्तर धृतराष्ट्र के पुत्र कौरव ही कहे गये किन्तु पाण्डु पुत्र पाण्डव कहे जाने लगे। कालान्तर में धृतराष्ट्र एवं पाण्डु पुत्रों में आपसी वैमनस्य इस सीमा तक बढ़ता गया कि एक बार धृतराष्ट्र के पुत्रों ने पाण्डु के पुत्रों को लाक्षाग्रह में जिन्दा जलाने असफल प्रयास किया। वहाँ से बचकर निकलने के बाद चौदह वर्ष तक अज्ञातवास में रहे। अज्ञातवास से लौटकर पाण्डवों ने कौरवों से रहने के लिये पाँच गावों की माँग की ताकि दोनों पक्ष शान्ति से रह सकें। लेकिन धृतराष्ट्र के पुत्र ग्रामों को देने के लिये तैयार नहीं हुये फलस्वरुप कुरूक्षेत्र के मैदान में तथाकथित महाभारत युद्ध हुआ। इस युद्ध में तत्कालीन उत्तरभारत के प्रायः सभी राजाओं ने भाग लिया। अर्जुन (पाण्डवों में तीसरे) के मित्र मथुरा के यदुवंशी बासुदेव कृष्ण विशेष चर्चा के विषय थे। (महाभारत एवं पद्मपुराण ४-२७९-११-१२) के प्रसंग के अनुसार अर्जुन ने मथुरा के यादव (कृष्ण) के साथ मिलकर मगधराज जरासंध का वध किया था।)

महाभारत की घटनाओं एवं नायकों के बारे में बौद्ध और जैन साहित्य में भी वर्णन उपलब्ध होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्धसाहित्य के अनुसार महाभारत की घटना को महात्मा बुद्ध के पूर्ववर्ती माना जा सकता है। बौद्धग्रन्थ बौधिसत्ववदान व कल्पलता के प्रसंग के अनुसार कुरू प्रदेश की राजधानी हस्तिनापुर थी, जहाँ महात्मा बुद्ध के जाने का उल्लेख है तथा दिव्यावदान (पृष्ठ ४३४) में हस्तिनापुर के एक भव्य नगर का प्रसंग वर्णित है। एक अन्य ग्रन्थ ललितविस्तर (तृतीय अध्याय) के प्रसंग में हस्तिनापुर के तत्कालीन राजा को पाण्डवों का वंशज कहा गया है।

जैन साहित्य में उपलब्ध ग्रन्थों के आधार पर सहज ही प्रतीत होता है कि जैन विचारकों ने वैदिक एवं भागवत विचारणा के समानान्तर रचना की तथा घटना विशेष का अपने दृष्टिकोण से वर्णन किया है।

जैन ग्रन्थ विविध-तीर्थ (कल्प ५०, पृष्ठ १४) में आये प्रसंग के अनुसार नाभिपुत्र ऋषभदेव (प्रथम तीर्थन्कर) के १०० पुत्र थे जिनमें २१वें कुरू थे। जिन्होंने कुरूक्षेत्र को बसाया था। कुरू के हस्ती ने हस्तिनापुर नगर को बसाया था। एक अन्य ग्रन्थ वसुदेवहिन्डी (खण्ड १, पृष्ठ १८६) के प्रसंग में प्रथम तीर्थन्कर ऋषभदेव के हस्तिनापुर जाने का प्रसंग वर्णित है। दोनों ही कथन परस्पर विरोधी हैं।

वसुदेवहिण्डी (खण्ड १, पृष्ठ ३४०) में प्राप्य वर्णन के अनुसार १६वें तीर्थन्कर शान्तिनाथ के पिता विश्वसैन कुरू राज्य के राजा थे, जिनकी राजधानी हस्तिनापुर थी। अन्य ग्रन्थ विविधतीर्थकल्प हस्तिनापुर (कल्प-१६, पृष्ठ ७६) के प्रसंग में सोलहवें, सत्रहवें व अठारहवें तीर्थंकर क्रमशः शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ एवं अरनाथ का जन्म, शिक्षा व ज्ञानप्राप्ति हस्तिनापुर में ही हुआ था। १९ वें तीर्थंकर मल्लिनाथ का हस्तिनापुर जाने का भी उल्लेख है।

न्यायाधिम्मकाय (भाग-२, पृष्ठ २२९) के प्रसंग में २३ वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ द्वारा हस्तिनापुर जाने का उल्लेख है। पार्श्वनाथ का समय महावीर से लगभग २५० वर्ष पूर्व लगभग ई० पू० नवीं शताब्दी माना जाता है।

उपरोक्त वर्णन के आधार पर जो निष्कर्ष निकलता है, वह यह है कि—

१—कुरू राज्य एक महत्त्वपूर्ण राज्य था, जिसे किसी राजा कुरू ने बसाया था।

२—कुरू राज्य की राजधानी हस्तिनापुर को कुरू के वंशज हस्ति या हस्तिन् ने बसाया था। नगर अपने समय का महत्त्वपूर्ण नगर था।

३—कुरू राज्य कौरव एवं पाण्डवों के आपसी सम्बन्धों व युद्ध की घटना में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४—जैन अनुश्रुतियों के आधार पर कुरू राज्य एवं हस्तिनापुर नगर ई० पू० लगभग नवीं शती में विद्यमान थे।

५—मथुरा के यदुवंशी कृष्ण पाण्डवों के मित्र थे।

महाभारत युद्ध के बहुचर्चित नायक श्री कृष्ण को ऐतिहासिक पुरुष मानने पर, उनका स्थान निश्चित रूप से महात्मा बुद्ध के पूर्व ही आ सकता है। क्योंकि महात्मा बुद्ध के समय से आज तक के क्रमबद्ध इतिहास में उनके लिए कहीं भी स्थान शेष नहीं रहता है। वस्तुतः महाकाव्य के वर्तमान स्वरूप एवं महाभारत की घटनाओं के मध्य सम्भवतः १४०० वर्षों का अन्तराल निश्चित-सा ही प्रतीत होता है।

महाभारत ग्रन्थ का प्राचीनतम रूप जय नामक ग्रन्थ के रूप में मिलता है, ग्रन्थ जय में केवल ८८०० पद्य लिखे गये थे। तत्पश्चात् यह ग्रन्थ भारत के नाम से उपलब्ध होता है, जिसमें २४००० पद्य थे। ग्रन्थ का वर्तमान स्वरूप महाभारत के नाम से प्रचलित है तथा इसमें १००,००० पद्य हैं। ग्रन्थ को वर्तमान स्वरूप प्राप्त होने के पूर्व इसमें कई बार कितना ही जोड़ा गया है। सम्भवतः इसका मूल-रूप और भी लघु रहा हो। ग्रन्थ के प्रथम रचित ८८०० मूल पद्यों को वर्गीकृत करने के प्रयास में संस्कृताचार्य अभी तक असफल ही रहे हैं।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सम्पूर्ण ग्रन्थ को तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओं का अभिलेखन नहीं माना जा सकता है। समय-समय पर हुये संशोधनों ने भव्य राजप्रासादों वाली सभ्यता के समावेश की सम्भावनाओं को बनाये रखा है। साथ जनसामान्य की भावनाओं एवं कवि की कल्पना को भी यथेष्ठ स्थान प्राप्त है।

विवादास्पद एवं अनिश्चित स्थिति से निकलने के लिये स्वाभाविक है कि कोई ऐसा रास्ता अपनाना होगा जो पुष्टि के कुछ ठोस प्रमाण प्रस्तुत कर सके। पुरातात्विक अन्वेषण एवं उत्खनन से प्राप्त सामग्री सम्भवतः उपरोक्त प्रश्नों का सन्तोषजनक समाधान कर सके।

वस्तुतः भारतीय पुरातत्व के प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित घटनाओं का उद्‌भव किंवदंतियों से ही न हुआ हो। महात्मा बुद्ध के काल ई०पू० लगभग छठी या पांचवीं शताब्दी से क्रमबद्ध इतिहास हमें उपलब्ध है। लेकिन उनके पूर्व के काल की घटनाओं का कुछ भी ज्ञान नहीं था। यद्यपि यह धारणा अवश्य थी कि वेद, रामायण एवं महाभारत काल की घटनायें बुद्धकाल के पूर्ववर्ती हैं। इस शताब्दी के तीसरे दशक में हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ों के उत्खनन ने जहाँ भारतीय इतिहास को लगभग ४५०० वर्ष की प्राचीन तिथि प्रदान की है, वहाँ पुरातत्वविदों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं ऐतिहासज्ञों को लगभग १००० वर्ष का अन्धयुग भी दिया है। जिसके बारे में किसी प्रकार का ज्ञान नहीं था। यह अतिशयोक्ति नहीं होगी कि पुरातत्व-वेत्ताओं के लिये यह एक चुनौती थी कि वे इस काल की सभ्यता के अवशेषों को खोजकर भारतीय इतिहास क्रम की इस खाई को पाटने का कार्य करें।

सर्वप्रथम इस प्रसंग में प्रोफेसर लाल, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के भूत-पूर्व महानिदेशक, संप्रति अधिसदस्य भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, द्वारा सन् १९४९ में महाभारत की मुख्य कार्यस्थली हस्तिनापुर जिला मेरठ, उत्तर प्रदेश जो कौरवों की राजधानी थी, का सर्वेक्षण किया गया। वर्षा द्वारा क्षरण से बने कटाओं के पर्यावरण में निम्न स्तरों से एक विशिष्ट प्रकार के मृद्भाण्ड प्राप्त हुये जो भूरे (धूसर) रंग के थे, तथा जिन पर काले रंग के यत्र-तत्र साधारण तथा वक्र रेखाकार चित्र अंकित थे, जिन्हें कालान्तर में चित्रित भूरे मृद्भाण्ड (Painted Grey Ware) की संज्ञा दी गयी है। इन्हीं कटाओं के ऊपरी स्तरों से एक अन्य प्रकार के काले ओयदार मृद्भाण्डों की प्राप्ति हुई, जिन्हें पुरातत्वविदों ने उत्तरी काले ओयदार मृद्भाण्ड (Northern Black Slopped Ware) की संज्ञा दी है। इन मृद्भाण्डों की तिथि ई० पू० छठवीं या पांचवीं शती से ई० पू० तीसरी शती या दूसरी शती तक मानी जाती है। यद्यपि नोट राजस्थान से इस सभ्यता की तिथि, १४ कार्बन विधि द्वारा ई० पू० ६८५±१०५ मिलती है, जो इसके प्रारम्भ की तिथि को सातवीं शती तक ले जाती है। इस साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि हस्तिनापुर नगर का उद्भव ई०पू० छठवीं शताब्दी के पूर्व हुआ होगा तदनन्तर प्रोफेसर लाल ने महाभारत ग्रन्थ में वर्णित अन्य स्थलों यथा वरनावा (प्राचीन वरणावर्त) जिला मेरठ, उत्तर प्रदेश जहाँ कौरवों ने लाख का महल बनाकर पाण्डवों को जिन्दा जलाकर मारने का प्रयास किया था, बैराट (प्राचीन विराट नगर) जिला जयपुर, राजस्थान जहाँ पाण्डव अज्ञातवास के काल में रहे थे, पानीपत (प्राचीन वृकप्रस्थ) जिला मेरठ, उत्तर प्रदेश, इन्द्रप्रस्थ (वर्तमान देहली का पुराना किला क्षेत्र) तिलपत, राजा कर्ण का किला एवं मथुरा आदि में सर्वेक्षण एवं परीक्षाणात्मक उत्खनन किया।

उत्खनन एवं सर्वेक्षण द्वारा उपरोक्त सभी स्थलों के निम्नतम (प्राचीनतम) स्तरों से एक ही प्रकार की भौतिक सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुये। जिन्हें पुराता-त्विक भाषा में चित्रित भूरे (धूसर) मृद्भाण्ड वाली सभ्यता कहा जाता है। उपलब्ध सामग्री के आधार पर इस सभ्यता के लक्षण इस प्रकार हैं :

चित्रित भूरे मृद्भाण्ड वाली सभ्यता का आर्थिक स्वरूप मुख्यतः खेतिहर, पशुपालक एवं कुछ हद तक आखेट पर आधारित था। पालतू पशुओं में गाय, बैल के अतिरिक्त भैंस, भेड़ तथा सुअर भी शामिल थे। सभ्यता की विशेषताओं में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अश्व का उल्लेख भी आवश्यक है, क्योंकि सिन्धु सभ्यता के युग में अश्व का होना विवादास्पद विषय है लेकिन आर्य सभ्यता का यह एक आवश्यक अंग है।

—इस युग के मकान मुख्यत: लकड़ी, बाँस और मिट्टी से निर्मित थे। मिट्टी की ईंटों का विशेष चलन था। भट्टे की पकी हुई ईंटों के उपयोग के अवशेष भी प्राप्त होते हैं।

—लोहे का प्रयोग इस सभ्यता की मुख्य विशेषता है। लोहे की प्राप्ति ही इसे अपनी पूर्ववर्ती सभ्यताओं (सिन्धु सभ्यता एवं ताम्र भण्डार या ताम्र संचय सभ्यता) से अलग करती है। लोहे का प्रयोग खेती के उपयोग में आने वाले उपकरण यथा हंसिये एवं हलफलक के निर्माण के लिये तथा युद्ध के लिये कुल्हाड़ी, भाले एवं तीरफलक के निर्माण के लिये किया गया होगा। अन्य धातुओं में ताँबे का उपयोग भी प्रचलन में था। ताँबे का उपयोग सुर्मा लगाने की सलाइयाँ, नाखून काटने की नहरनी तथा तीरफलक बनाने के लिये किया गया है।

इसके अतिरिक्त काँच की चूड़ियों के प्रमाण भी मिले हैं, जो सम्भवत: भारतीय सभ्यताओं के इतिहास में सर्वप्रथम इस युग में उपयोग में लाई गयीं।

मिट्टी एवं अस्मि के निर्मित अण्डाकार पांसे जिन पर १, २, ३ व ४ के अंक अंकित हैं एवं खेल के गुटके हैं। दोनों ही साक्ष्य इस काल में चौपड़ का खेल खेले जाने की पुष्टि करते हैं।

काम में आने वाले बर्तन मुख्यत: मिट्टी के द्वारा बने हुये थे। भारतीय खाने के प्रचलित बर्तन थाली, कटोरा एवं लोटा इसी सभ्यता की देन हैं। ये मृद्‌भाण्ड अत्यन्त महीन पूर्णतया गुंधी मिट्टी के द्वारा बनाये गये हैं। इनका भूरा रंग सम्भवत: भट्टे में कम होते हुये तापमान में पकाये जाने के कारण है। काले रंग का चित्रण तत्कालीन सांस्कृतिक सज्जा का द्योतक है। इसी चित्रण के आधार पर सभ्यता का नामकरण हुआ है। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि यह भौतिक सभ्यता, महाभारत में वर्णित उन सभी स्थलों के निम्नतम (प्राचीनतम) स्तर से प्राप्त होती है, जहाँ उत्खनन एवं सर्वेक्षण किया गया है। यह उन सभी स्थलों को एक निश्चित कालक्रम में व्यवस्थित करती है। लेकिन हस्तिनापुर उत्खनन से प्राप्त अवशेष अपना कुछ विशेष महत्त्व रखते हैं। स्तरीय कालक्रम के अनुसार लगभग ढ़ाई मीटर के बसावक्रम जमाव के पश्चात् गंगा में आई बाढ़ के प्रमाण मिलते हैं, जिनमें हस्तिनापुर के एक बड़े भाग के बह जाने के प्रमाण मिलते हैं। टीले के ढ़लानों पर क्षरण एवं बही हुई सामग्री के जमाव के भी अवशेष मिलते हैं। मुख्य बात यह है कि बाढ़ में बही सामग्री गंगा नदी के तल में जलस्तर से लगभग १५ मी० की गहराई तक मिलती है। इन साक्ष्यों के आधार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर स्पष्टतया कहा जा सकता है कि हस्तिनापुर में चित्रित भूरे (धूसर) मृद्भाण्ड वाली सभ्यता का अन्त बाढ़ के कारण हुआ है। इसकी पुष्टि अतरंजी खेड़ा के उत्खनन में प्राप्त स्तरीय कालक्रम से होता है, यहाँ पर भी चित्रित भूरे मृद्भाण्ड वाली सभ्यता के वसावक्रम के पश्चात् बाढ़ के प्रमाण मिलते हैं। इसकी पुष्टि पुराणों में वर्णित साक्ष्यों से भी होती है।

पुराणों में वर्णित वृत्तान्त के अनुसार वंशानुक्रम में राजा परीक्षित से पांचवें राजा निचक्षु थे; जिनके राज्यकाल में गंगा में महती बाढ़ आई थी, जिसमें हस्तिनापुर का काफी भाग वह गया फलस्वरूप राजा निचक्षु हस्तिनापुर को त्याग कर अपनी राजधानी कौशाम्बी नगर में ले गये, जो वर्तमान प्रयाग से लगभग ६० किलोमीटर पश्चिम की ओर यमुना नदी के बायें किनारे पर स्थित है। पुराणों (मत्स्य एवं वायु) में गंगा में बाढ़ आई के फलस्वरूप कौशाम्बी में राजधानी बनाने का वृत्तान्त इस प्रकार है :

गंगयापहृते तस्मिन् नगरे नागसाह्वे।
त्यक्त्वा निचक्षुर्नगरं कौशाम्बव्यांसं निवत्स्यति ॥

जब नाग साह्व (हस्तिनापुर) नगर गंगा के द्वारा बहा ले जाया गया, तो राजा निचक्षु इसको (हस्तिनापुर) त्यागकर कौशाम्बी चला गया।

उपरोक्त उदाहरण के द्वितीय चरण में राजा निचक्षु द्वारा कौशाम्बी नगर को राजधानी बनाये जाने का उल्लेख आया है। अतएव इलाहाबाद जिले में स्थित कौशाम्बी (जी०आर० शर्मा द्वारा उत्खनित) की सामग्री का विवेचन भी अनिवार्य हो जाता है।

कौशाम्बी के निम्नतम (प्राचीनतम) स्तर से प्राप्त भूरे रंग के मृद्भाण्डों के प्रकार यथा थाली, कटोरा व लोटा एवं उन पर चित्रण हस्तिनापुर की चित्रित भूरे (धूसर) मृद्भाण्ड वाली सभ्यता के चलते रहने का प्रमाण है, वहाँ मृद्भाण्डों के बनाने में उपयोग की गयी मिट्टी एवं मोटे घटिया प्रकार तथा चित्रण के विहसित (बिगड़ते) प्रकार के आधार पर इन मृद्भाण्डों को कौशाम्बी चित्रित भूरे मृद्भाण्डों की संज्ञा दी जा सकती है। इन साक्ष्यों से स्पष्ट है कि कौशाम्बी नगर का निर्माण हस्तिनापुर में आई बाढ़ के पश्चात् हुआ। प्रोफेसर लाल का कथन है जहाँ हस्तिनापुर में चित्रित भूरे (धूसर) मृद्भाण्ड वाली सभ्यता का अन्त होता है, वहाँ कौशाम्बी का विकास आरम्भ होता है।

उपरोक्त पुरातात्विक आधार पर निम्नलिखित ३ बातें स्पष्ट हो जाती हैं:

१—महाभारत में वर्णित सभी स्थलों (जहाँ उत्खनन एवं पर्यवेक्षण किया गया है) के निम्नतम (प्राचीनतम) स्तर से एक ही प्रकार की भौतिक सभ्यता के अवशेष मिलते हैं। जो सभी स्थलों की समकालीनता के परिचायक हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—हस्तिनापुर की चित्रित भूरे मृद्भाण्ड वाली सभ्यता के बसावक्रम का बाढ़ द्वारा नष्ट होना। स्तरीय साक्ष्य कुरू राजा निचक्षु द्वारा राजधानी को हस्तिनापुर से कौशाम्बी ले जाने की पौराणिक गाथा की पुष्टि करता है।

३—हस्तिनापुर की चित्रित भूरे (धूसर) मृद्भाण्ड वाली सभ्यता का कौशाम्बी नगर के बसाव तक चलती रही निरन्तरता है। यद्यपि मृदभाण्ड की बनावट एवं चित्रण में विहसित (बिगड़ती) स्थिति आ गयी थी। जो सभ्यता के लुप्त होने या समाप्त होने की ओर संकेत करती है।

पूर्व में ही कहा जा चुका है कि महाभारत की घटना की तिथि के बारे में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। लेकिन इतना तो निश्चित है कि घटना ईसा पूर्व छठवीं शताब्दी से पूर्व की है, तथा पंजाब के रूपड़ एवं उत्तर प्रदेश के आलमगीर पुर से प्राप्त अवशेषों से स्पष्ट है कि चित्रित भूरे (धूसर) मृद्भाण्ड वाली सभ्यता हड़प्पा सभ्यता के उत्तरावर्ती है। भगवानपुरा (जगतपत जोशी द्वारा उत्खनित) से प्राप्त साक्ष्य चित्रित भूरे (धूसर) मृद्भाण्ड वाली सभ्यता एवं हड़प्पा संस्कृति के अन्तिम चरण से तादात्मय स्थापित करते हैं। इस आधार पर कहा जा सकता है कि चित्रित भूरे (धूसर) मृद्भाण्ड हड़प्पा संस्कृति के अन्तिम चरण के सम-कालीन हैं। हड़प्पा संस्कृति का अन्त ईसा पूर्व लगभग भूरे (धूसर) मृद्भाण्ड वाली सभ्यता का काल परिसर ईसा पूर्व लगभग पन्द्रहवीं शताब्दी से नवीं शती तक निर्धारित किया जा सकता है। महाभारत की घटना भी इस अवधि के किसी चरण में घटित हुई होगी, किन्तु विद्वानवर्ग किसी एक तिथि का प्रतिपादन नहीं कर सके।

कुछ विद्वानों राजा पुलकेशिन द्वितीय के ऐहोले शिलालेख के आधार पर महाभारत घटना की तिथि ईसा पूर्व ३१०२ वर्ष निर्धारित करते हैं। शिला-लेख की तिथि शक सम्वत् ५५६ है जो ईसा की ६३३–६३४ वर्ष है। शिलालेख में महाभारत युद्ध को समाप्त हुये ३६३५ वर्ष की अवधि व्यतीत हो जाने का वृत्तान्त है। इस सन्दर्भ में सबसे बड़ा प्रश्न यह उठता है कि इतने लम्बे अन्तराल के पश्चात् किस आधार पर इतनी निश्चित तिथि निर्धारित की गयी है। अन्य विद्वान यथा के० पी० जायसवाल द्वारा लगभग १४२४ ई०पू०, ए० एस० अलतेकर द्वारा लगभग १४०० ई०पू०, एस०एल० प्रधान ने लगभग ११५२ ई०पू०, एफ०ई० पारजीटर द्वारा ९५० ई० पूर्व एवं हेमचन्द्र राय चौधरी द्वारा ई० पूर्व ९ वीं शताब्दी की तिथि निर्धारित की गयी है। प्रोफेसर लाल पौराणिक कथाओं एवं पुरातात्विक साक्ष्यों के तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात् ईसा पूर्व नवीं शताब्दी की तिथि निर्धारित करते हैं।

महाभारत युद्ध का अन्त तो सर्वविदित है, कौरवों का नाश हुआ, पाण्डवों को विजय मिली, अर्जुनपुत्र अभिमन्यु युद्ध में मारा गया। युधिष्ठिर द्वारा एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लम्बे समय तक राज्य करने के पश्चात् अर्जुन के पौत्र परीक्षित को हस्तिनापुर का राज्य सिंहासन सौंप कर हिमालय की ओर प्रस्थान करना (महाभारत १७-१-६ एवं ब्राह्मणपुराण २०, ६१, ६५) पुराणों में दी गयी वंशावली के अनुसार परीक्षित से पाँचवें राजा निचक्षु थे, जिनके राज्यकाल में हस्तिनापुर गंगा की बाढ़ में नष्ट हो गया था, फलतः कुरू राज्य की राजधानी कौशाम्बी नगर में स्थान्तरित की गयी थी। निचक्षु के उपरान्त कौशाम्बी नरेशों की तालिका पुराणों में परीक्षित से २५ वें राजा उदयन का उल्लेख मिलता है। इस बात के भी काफी प्रमाण मिलते हैं कि उदयन महात्मा बुद्ध के समकालीन थे। बुद्ध का काल छठवीं शताब्दी निश्चित ही है।

बौद्ध ग्रन्थ ललितविस्तर के प्रसंग के अनुसार राजा उदयन और महात्मा बुद्ध दोनों ने एक ही दिन इस संसार में पदार्पण किया था तथा पेतवत्सु की टीका के वृत्तान्त के अनुसार महात्मा बुद्ध का निर्वाण राजा उदयन के जीवन काल में ही हो गया था। यद्यपि बुद्ध के जन्म एवं मरण के बारे में भी विद्वानों में मतभेद है, किन्तु अधिकांशतः उनकी मृत्यु की तिथि ई० पूर्व लगभग ४८३ या ४८७ वर्ष पर सहमत हैं। उदयन छठवीं शताब्दी के उत्तरार्ध एवं पांचवीं शती के पूर्वार्ध कौशाम्वी में राज्य कर रहे थे।

उदयन के पूर्ववर्ती २४ राजाओं के राज्यकाल का अनुमान करना विवादास्पद ही नहीं वरन् एक जटिल समस्या भी है। कुछ विद्वान प्रत्येक राजा के राज्यकाल के लिये ३७ या ३३ वर्ष की औसत का सुझाव देते हैं। इसके अतिरिक्त ए०एल० वाशम द्वारा १९ वर्ष तथा पारजीटर द्वारा १८ वर्ष औसतकाल प्रत्येक राजा के लिये निश्चित किया गया है। पारजीटर का कथन है कि मैंने पूर्वीय एवं पश्चिमी कई देशों के २० से ३० राजाओं की वंशावली की २४ श्रृंखलाओं का अध्ययन किया है, जिसमें सब से अधिक औसतकाल २४ वर्ष है तथा सबसे कम १२ वर्ष है तथा सबकी औसत गणना १९ वर्ष है लेकिन औसत गणना पश्चिमी देशों में पूर्वी देशों की तुलना से अधिक है। अतएव पूर्वी देशों के समकालीन राजाओं का औसत अनुपात १९ वर्ष से कम किन्तु १८ वर्ष मानना उचित होगा। (पारजीटर एनशियन्ट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडीशन्स, पुनःमुद्रित, देहली १९६२ पृष्ठ १८१-१८२)।

प्रोफेसर लाल के अनुसार पारजीटर द्वारा की गयी गणना की पुष्टि भारतीय इतिहास की वंशावली की गणना से की जा सकती है। उदाहरणतया दिल्ली के प्रथम मुस्लिम राजा कुतुबुद्दीन ऐबक से अन्तिम मुगल राजा बहादुर शाह जफर तक ४७ राजाओं ने कुल ६५२ साल राज्य किया। इसका पूर्णांक १४ वर्ष माना जा सकता है। बहुत सम्भव है कि कुछ लोगों को यह आपत्ति हो सकती है कि मध्ययुगीन काल के औसत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुपात को प्राचीन काल पर आरोपित किये जाने का कोई औचित्य नहीं है। क्योंकि मध्ययुगीन राजाओं के इतिहास में राज्य सिंहासन के लिये हत्याओं एवं क्रांतियों को यथेष्ट स्थान प्राप्त है, लेकिन इन ४७ राजाओं की श्रृंखला में वही सभी राजा शामिल हैं जिनका राज्यकाल बहुत कम दिनों का है तथा वह भी राजा शामिल हैं जिनका राज्यकाल २० वर्ष से अधिक है और इसमें कुछ तो ऐसे भी राजा हैं जिनका राज्यकाल ३८, ४८ और ४६ वर्ष है। अतएव इस गणना में सन्देह की कोई सम्भावना नहीं रह जाती है। प्राचीन काल के कुछ अन्य राज्यवंशों की भी औसत गणना करके इस सन्देह को निर्मूल किया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप कण्व एवं शुंग काल का औसत अनुपात १७ ६ वर्ष आता है। अगर इस वंश के विवादग्रस्त राजाओं को गणना में नहीं लिया जावे तो यह अनुपात २२ वर्ष आता है। यदि मौर्य, शुंग, कण्व, सातवाहन एवं गुप्तकाल वंश को एकसाथ रखकर औसत गणना की जावे तो प्रत्येक राजा के लिये अनुपात १४ वर्ष के लगभग ही आता है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर पुराणों में वर्णित उदयन के पूर्ववर्ती २४ राजाओं के लिये औसत अनुपात १४ वर्ष मानने में कोई असंगति नहीं होगी। इस प्रकार २४ राजाओं का कुल राज्यकाल का योग २४×१४=३३६ वर्ष होता है। अगर इस संख्या को ईसा० पू० ५०० वर्ष में जोड़ दिया जावे जब उदयन कौशाम्बो के राज्य सिंहासन पर आसीन थे, तो ई० पू० लगभग ८३६ वर्ष की सम्भावित तिथि प्राप्त होती है। इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि महाभारत युद्ध ई० पू० ८३६ वर्ष पूर्व हुआ था। केवल सम्भावना व्यक्त की जा सकती है कि इस काल के लगभग ऐसी घटना घटित हुई होगी। मोटे रूप में ई० पू० नवीं शताब्दी के मध्य में युद्ध की घटना घटित होने की सम्भावना को मानने में कोई असंगति प्रतीत नहीं होती। (महाभारत एण्ड आर्किलोजी, महाभारत मिथ एण्ड रियलटी, पृष्ठ ५८) तदनन्तर प्रोफेसर लाल द्वारा राजाओं की औसत अनुपात की गणना में थोड़ा सा परिवर्तन किया गया है तथा उदयन के पूर्ववर्ती राजाओं के लिये प्रत्येक के राज्यकाल को १५ वर्ष का समय दिया है। इस आधार पर २४ राजाओं के राज्यकाल का योग २४×१५ में जोड़ने पर तब उदयन के राज्य सिंहासन पर होने की सम्भावना है। यह तिथि ई० पू० ८६० वर्ष अर्थात् नवीं शताब्दी आती है। (लाल, आर्किलोजी एण्ड महाभारत, टॉक ब्राडकास्ट फ्राम आल इण्डिया रेडियो, शिमला केन्द्र, २२-५-७७)।

वस्तुतः देखा जावे तो प्रत्येक राजा के लिये १८ वर्ष की औसत अधिक प्रतीत होती है तो १४ वर्ष कम। अगर दोनों का मध्यक अंक, प्रत्येक राजा के लिये औसत अनुपात लिया जावे तो कोई असंगति प्रतीत नहीं होती। दूसरा दृष्टिकोण यह भी हो सकता है कि विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रतिपादित औसत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणनाओं को एक साथ रखकर मध्यक औसत अंक निकाला जाये तो वह संख्या भी १६ वर्ष के लगभग ही आती है। प्रत्येक राजा के राज्यकाल के लिये १६ वर्ष का समय मानने पर उदयन के पूर्ववर्ती राजाओं के राज्यकाल का कुल योग २४×१६=३८४ वर्ष आता है। इस संख्या को ई० पू० ४८७ वर्ष में जोड़ा जावे जो महात्मा बुद्ध की निर्वाण तिथि है, क्योंकि इस वर्ष में उदयन का राज्य सिंहासन पर होना निश्चित है। पेतवन्सु की टीका के अनुसार महात्मा बुद्ध का निर्वाण राजा उदयन के जीवनकाल में ही हुआ था। इस प्रकार ई० पू० ८७१ वर्ष की तिथि के पूर्व महाभारत घटना की सम्भावित तिथि व्यक्त की जा सकती है।

ईसा पू० ८७१ वर्ष की तिथि को मानने में कुछ समस्याओं का समाधान भी आवश्यक है।

महाभारत एवं ब्राह्मण पुराण के प्रसंग के अनुसार कुरुराज्य के राजा युधिष्ठिर ने एक लम्बे समय तक राज्य किया।

अर्जुनपुत्र अभिमन्यु की मृत्यु युद्ध में ही हो गयी थी, उस समय अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा गर्भवती थी अर्थात् परीक्षित का जन्म नहीं हुआ था। परीक्षित का जन्म युद्ध के पश्चात् हुआ। परीक्षित की वयस्य आयु का अन्तराल, जब पाण्डव अर्जुन के पौत्र परीक्षित को राजपाट देकर हिमालय की ओर चले गये (ब्राह्मण पुराण, २२१२, ९१-९५)।

औसत अनुपात के लिये उदयन के पूर्ववर्ती २४ राजाओं की ही गणना की गयी है, इसमें उदयन का राज्यकाल शामिल नहीं है जबकि बौद्धग्रन्थ ललित-विस्तर के प्रसंग के अनुसार महात्मा बुद्ध एवं राजा उदयन का जन्मदिन एक ही है तथा जैसा कि लिखा जा चुका है कि पेतवन्सु की टीका के अनुसार महात्मा बुद्ध का निर्वाण राजा उदयन के जीवनकाल में ही माना गया है। इससे स्पष्ट है कि उदयन का राज्यकाल एक लम्बे समय तक रहा होगा।

उपरोक्त समस्याओं की समाधानपूर्ति के लिये अगर ७० वर्ष का समय और दिया जावे तो अनुचित प्रतीत नहीं होगा। इस प्रकार युद्ध की सम्भावित तिथि लगभग ई० पू० ९४१ वर्ष आती है। अर्थात् महाभारत युद्ध ई० पू० दशवीं शताब्दी के मध्य अथवा उसके पूर्व ही होने की सम्भावना हो सकती है। जो १४ कार्बन विधि द्वारा निर्धारित तिथियों से बहुत कुछ समन्वय रखती है।

१४ कार्बन विधि से पुरातत्व की निर्धारित तिथियाँ पौराणिक साहित्य के आधार पर निर्धारित तिथियों की ही पुष्टि करती हैं। अतरंजीखेड़ा, जिला एटा, उत्तर प्रदेश में हुये उत्खनन से प्राप्त चित्रित भूरे मृद्भाण्ड वाली सभ्यता की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिथि ई० पू० १०२५ ± १०० आती है। इसी प्रकार नोह, राजस्थान से इस सभ्यता की तिथि ई० पू० ८२० ± २२५ तथा जोधपुरा जिला जयपुर, राजस्थान की तिथि ई० पू० ८०० ± १५० वर्ष आती है। इससे यह स्पष्ट है कि ई० पू० लगभग ११०० से ६०० वर्ष पूर्व उत्तर भारत में भूरे मृद्भाण्ड वाली सभ्यता पल्लवित थी, जैसा कि श्रावस्ती (जिला गोण्डा), कौशाम्बी (जिला इलाहाबाद), अहिच्छत्रा एवं जखेडआ (जिला बरेली), राजघाट, वैशाली आदि से प्राप्त अवशेषों से प्रमाणित है।

उत्तर भारत के प्रायः सभी क्षेत्रों में उत्तरी काले ओयदार मृद्भाण्ड चित्रित भूरे (धूसर) मृद्भाण्ड के उत्तरावर्ती हैं। दोनों सभ्यताओं के मध्य एक ऐसा भी काल है जिसे संक्रमण काल की संज्ञा दी जा सकती है। चित्रित भूरे (धूसर) मृद्भाण्ड एवं उत्तरी काले ओयदार मृद्भाण्ड के अतिच्छादित काल की तिथियाँ मथुरा उत्खनन से उपलब्ध होती हैं। मथुरा से प्राप्त अतिच्छादित काल की १४ कार्बन तिथि ७३० ± १५० एवं ६७० ± १०० वर्ष हैं जो इस बात का प्रमाण है कि ई०पू० आठवीं व सातवीं शताब्दी के काल परिसर में एक सभ्यता समाप्त हो रही थी तथा दूसरी विकसित। इस कालावधि को मुख्यतः चित्रित भूरे मृद्भाण्ड का काल नहीं माना जा सकता।

यहाँ यह कहना अनुचित नहीं होगा कि कार्बन विधि में भी कुछ संशोधन वांछनीय हैं। अतएव पेन्सिलवेनियाँ पुरातत्व संग्रहालय से सम्बद्ध शोधशाला ने वृक्ष वलय और १४ कार्बन विधियों से स्वतन्त्र रूप से प्राप्त तिथियों का विश्लेषण किया है। और वहाँ के वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर आये हैं कि १४ कार्बन तिथियाँ वास्तविक तिथियों से कम हैं। अतः उन्होंने एक संशोधित मापदण्ड निर्धारित कर प्रकाशित किया है, जिसे (MASCA FACTOR) मास्का फैक्टर की संज्ञा दी गयी है।

संशोधित समीकरण के अनुसार १४ कार्बन तिथि १०२५ वर्ष ई०पू० ११५५ वर्ष तिथि ८२० वर्ष पूर्व ६०० वर्ष तथा तिथि ८०० वर्ष का परिसर ई० पू० ८८०-६०० वर्ष होगा। एक अन्य संशोधित मापदण्ड क्लार्क (CLARK) द्वारा सुझाया गया। जिसके अनुसार तिथि १०२५ वर्ष की वास्तविक संशोधित तिथि ई० पू० ११६५ वर्ष, ८२० वर्ष की ई० पू० ६१५ वर्ष तथा तिथि ८०० वर्ष ई०पू० ६०० वर्ष होगी। इस प्रकार मास्का (MASCA) एवं क्लार्क (CLARK) द्वारा प्रतिपादित संशोधित समीकरण के आधार पर चित्रित भूरे मृद्भाण्ड वाली सभ्यता का परिसर ई० पू० १२वीं शताब्दी से लेकर ई०पू० दशवीं शताब्दी तक निर्धारित किया जा सकता है। भगवानपुरा से प्राप्त साक्ष्य इस काल परिसर को ई० पू० बारहवीं शताब्दी से पूर्व हड़प्पा के समकालीन होने की ओर इंगित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं।

मथुरा उत्तर प्रदेश से प्राप्त चित्रित भूरे मृद्भाण्ड एवं उत्तरी काले ओयदार मृद्भाण्ड वाली सभ्यता के अतिच्छादित काल के साक्ष्य कुछ सीमा तक घटना के तिथि निर्धारण में सहायक हो सकते हैं। अतिच्छादित काल की १४ कार्बन विधि द्वारा प्राप्त तिथियाँ आठवीं एवं सातवीं शताब्दी की हैं जो युद्धोत्तर काल की तिथियाँ हैं। संशोधित समीकरण द्वारा तिथि ७३० वर्ष की वास्तविक तिथि ई० पू० ८४० वर्ष, तिथि ६७० वर्ष की ई० पू० ८१० वर्ष तथा तिथि ६७० वर्ष की तिथि ई० पू० ७६० वर्ष आती है। इससे स्पष्ट है कि नवीं एवं आठवीं शती में उत्तरी काले ओयदार मृद्भाण्ड वाली सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ तथा चित्रित भूरे (धूसर) मृद्भाण्ड वाली सभ्यता लुप्त हो रही थी।

१४ कार्बन विधि द्वारा प्राप्त तिथिकरण की विवेचना के पश्चात् निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं—

नवीं और आठवीं शती में नयी सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ। इस काल के चित्रित भूरे (धूसर) मृद्भाण्ड एवं उत्तरी काले ओयदार मृद्भाण्ड वाली सभ्यताओं को अतिच्छादित काल की संज्ञा देना अनुचित नहीं है। क्योंकि एक ही स्तरीय सतह से दोनों सभ्यताओं के अवशेष उपलब्ध होते हैं।

इस काल में चित्रित भूरे (धूसर) मृद्भाण्ड वाली सभ्यता विहसित (बिगड़ती) अवस्था को प्राप्त हो चुकी थी। मथुरा उत्खनन से प्राप्त अतिच्छादित काल के चित्रित भूरे मृद्भाण्ड हस्तिनापुर की परम्परा में कौशाम्बी चित्रित भूरे मृद्भाण्ड के अधिक निकट हैं।

कौशाम्बी चित्रित भूरे मृद्भाण्ड की विहसित (अनगढ़ व घटिया) अवस्था, युद्धोत्तर काल में राजा निचक्षु के राज्यकाल में प्राप्त हुई होगी। इसके दो मुख्य कारण हैं एक तो विहसित प्रकार कौशाम्बी के निम्नतम (प्राचीनतम)स्तर से प्राप्त होता है दूसरे कौशाम्बी का विहसित प्रकार का साक्ष्य हस्तिनापुर से नहीं मिलता।

पौराणिक गाथाओं के अनुसार परीक्षित से पांचवें राजा निचक्षु ने हस्तिनापुर का त्याग किया था तथा कौशाम्बी को अपनी राजधानी बनाया था। तदनन्तर कुरूवंश के वंशानुक्रम की तालिका कौशाम्बी राज्य से सम्बन्धित ही मिलती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस विवेचन के आधार पर महाभारत युद्ध के अन्त से लेकर राजा निचक्षु तक चित्रित भूरे (धूसर) मृद्‌भाण्ड की विह्सित अवस्था की प्राचीनतम सशोधित वास्तविक तिथि ई० पू० ८४० वर्ष के मध्य अन्तराल को लगभग १०० वर्ष मान लेने में कोई असंगति नहीं होगी। इस आधार पर महाभारत युद्ध की घटना ८४० + १०० = ९४० वर्ष, पौराणिक गाथाओं के आधार पर निर्धारित तिथि ई० पू० ९४१ वर्ष की पुष्टि करती है।

संग्रहालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यजुर्वेद-एक अध्ययन

डा० सत्यव्रत राजेश
प्राध्यापक
वेद विभाग, गुरुकुल कांगड़ी

वेद तथा पूर्वाचार्यों के अनुसार वेद चार हैं, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। ऋषियों का यह भी मत है कि इनमें मुख्य विषय क्रमशः ज्ञान, कर्म, उपासना तथा विज्ञान हैं। इस दृष्टि से यजुर्वेद कर्मकाण्ड का शिक्षक है। इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए मध्यकालीन आचार्यों ने शतपथ ब्राह्मण तथा कात्यायन श्रौतसूत्र को आधार मानकर यजुर्वेद से अनेक प्रकार के यज्ञ-यागों के सूत्र खोजे हैं। उवट तथा महीधर इन दो आचार्यों का भाष्य भी यजुर्वेद पर उपलब्ध है। कर्मकाण्डीय दृष्टि से यजुर्वेद में निम्नलिखित विषय वर्णित हैं-

१-२ अध्याय में दर्शपौर्णमास मन्त्र हैं। ये दोनों सब यागों की प्रकृति हैं।

तृतीय अध्याय में अग्न्याधान, उपस्थान तथा चातुर्मास्य के मन्त्र हैं। चातुर्मास्य में वैश्वदेवपर्व, वरुणप्रधास, साकमेध तथा शुनासीरीय आते हैं जो क्रमशः फाल्गुन, आषाढ़ तथा कार्तिक की पौर्णमासी तथा फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा या चतुर्दशी को सम्पन्न किये जाते हैं।

४—चतुर्थ अध्याय में अग्निष्टोम यज्ञ में ऋत्विग् तथा यजमान सहित सोमक्रय तथा शालाप्रवेश पर्यन्त मन्त्र हैं, अन्य अध्यायों का विषय निम्न है—

५ में सौमिक वेदिप्रधान में आतिथ्य से यूपनिर्माण पर्यन्त मन्त्र।
६ठे अध्याय में अग्निषोमीय पशुयाग में यूपसंस्कार पशुयाग तथा सोमाभिषव।
७म में तृतीयसवनगत दक्षिणादान तक का वर्णन।
८म अध्याय में तृतीय सवन द्वयगत आदित्यग्रह।
९ में वाजपेय राजसूय यज्ञ।
१० में राजसूयगत चरक सौत्रामणि।
११ में उरवासम्भरण।
१२ में उरवाधारण।
१३ में चित्युपाधान में पुष्करपर्णादि उपधान।
१४ में द्वितीयाचितित्रयोपधान।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५ में पञ्चचिति ।
१६ में शतरुद्रियहोम ।
१७ अध्याय में चित्यारोहण ।
१८ में वसोर्धारा ।
१९ में सौत्रामणि ।
२० में सेकासन्द्यादिहौत्रान्त ।
२१ में याज्यादि प्रेषण मन्त्र ।
२२ से २४ तक अश्वमेध ।
२५ में अश्व के अङ्गों से देवताओं का होम ।
२६ वें अध्याय को खिल माना है ।
२७ में पञ्चचितिकाग्नि सम्बन्धी मन्त्र ।
२८ में सौत्रामणि में पशुप्रयाजानुयाजप्रेषण वर्णन ।
२९ में शिष्ट अश्वमेध का उल्लेख ।
३० में पुरुषमेध ।
३१ अध्याय पुरुषसूक्त ।
३२ में सर्वमेध ।
३३ में पुरुषमेध में पुरोरुच ।
३४ में शिव संकल्प मन्त्र ।
३५ में पितृमेध ।
३६ में प्रवर्ग्याग्निकाश्वमेधोपनिषद् ।
३७ में महावीरसम्भरण प्रोक्षणादिमन्त्र ।
३८ में महावीरनिरूपण में घर्मधुग् का दोहन ।
३९ में प्रवर्ग्य में धर्म के टूटने पर प्रायश्चित तथा
४०वें अध्याय में उपनिषदों का आदिमूल ईशावास्योपनिषद् ।

इस प्रकार समस्त यजुर्वेद में विविध प्रकार के यज्ञ-यागों का उल्लेख मिलता है। कर्मकाण्ड के विकृत रूप को छोड़ कर यह यज्ञ-यागों का उल्लेख बड़ा सोद्देश्य तथा रुचिपूर्ण है। धनी व्यक्ति अपने धन का यज्ञादि में सदुपयोग करे तथा विद्वानों के घर में आगमन से परिवार के लोगों में नियमबद्धता आए, साथ ही विद्वानों का सत्कार करने से देश में विद्या के प्रति रुचि बढ़े, यह राष्ट्र के हितैषी के लिये आवश्यक कार्य है। किन्तु कालान्तर में यह यज्ञगंगा अपने विशुद्ध रूप को खोकर जब हिंसादि की पोषक बन गई तब यह अनर्थ परम्परा की जनक बनी तथा बौद्ध, जैन, चारवाक, आभाणक आदि सम्प्रदायों ने इस अन्ध परम्परा का विरोध करके यज्ञ जैसे उपयोगी कार्यों पर ही प्रतिबन्ध रखा। चाहिये तो यह था कि बाल्टी में भरे गन्दे पानी को फेंक कर बाल्टी को बचा लेते तथा महर्षि दयानन्द की भाँति उसमें स्वच्छ जल भरते, क्योंकि हिंसादि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का विधान वैदिक न होकर अज्ञानकृत है।

कालान्तर में यजुर्वेद दो भागों में विभक्त होकर रह गया। ये भेद हैं शुक्ल तथा कृष्ण। दोनों ही शाखाएँ यजुर्वेद ही मानी गई। चरणव्यूह ने इसकी ८६ शाखाएँ मानी हैं (यजुर्वेदस्य षडशीतिभेदाः) तथा पंतजलि ने इसकी १००० शाखाएँ लिखी हैं (शतवर्त्मा यजुर्वेदः)।

शुक्ल यजुर्वेद की दो शाखाएँ हैं—वाजसनेयी माध्यन्दिनी तथा काण्व एवं कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय, कठ, मैत्रायणी ये तीन पूर्ण तथा कपिष्ठल कठ की एकमात्र गुटित प्रति वाराणसेय राजकीय संस्कृत कालेज के सरस्वती भवन में है।

इस शुक्ल तथा कृष्ण नाम की भी विचित्र कथा है। पुराण के अनुसार याज्ञवल्क्य के गुरु वैशम्पायन, जब ऋषियों द्वारा आहूत सभा में न गए तब ऋषियों द्वारा निर्दिष्ट, अनुपस्थित को ब्रह्महत्या का शाप उन्हें लगा तथा उनसे एक ब्राह्मण बालक कुचल कर मर गया। वैशम्पायन ने उस पाप से छुटकारे के लिये अपने सब शिष्यों से प्रायश्चित्त करने के लिये कहा। याज्ञवल्क्य ने कहा कि इन बेचारों को कष्ट देने की क्या आवश्यकता है, मैं अकेले ही इस कार्य को कर सकता हूँ। गुरु उनकी गर्वोक्ति तथा अन्य शिष्यों को हीन समझने की भावना से अप्रसन्न हो गए तथा उनसे अपनी विद्या वापिस करने को को कहा। याज्ञवल्क्य ने सब पठित विद्या का वमन कर दिया। जिसे गुरु के आदेश से शिष्यों ने तीतर बन कर चुग लिया। इसी कारण वे तैत्तिरीय कहलाये। इसी आधार पर कुछ विद्वानों का मत है शुक्ल यजुर्वेद कृष्ण यजुर्वेद से अर्वाचीन है, क्योंकि उसे याज्ञवल्क्य ने विद्यावमन के पश्चात् सूर्य की उपासना से प्राप्त किया। सूर्य ने मध्याह्न में वाजी (घोड़े) का मुख लगाकर याज्ञवल्क्य को शुक्ल यजुर्वेद का उपदेश दिया था, किन्तु यह कथा सत्य नहीं है, शुक्ल यजुर्वेद ही प्राचीन है।

इस कथा की विश्वसनीयता में सन्देह है। क्योंकि विद्या कोई ठोस पदार्थ नहीं है जिसका वमन किया जा सके या जिसे चुगा जा सके। न ही वमन को खाने को कोई उद्यत हो सकता है तथा न खाने मात्र से विद्या ही आ सकती है। अतः शुक्ल कृष्ण भेद का कारण पूर्वोक्त कथा में वर्णित तथ्य नहीं है अपितु अन्य है। वेद के मन्त्र तथा शब्दों के क्रम में आनुपूर्व्यी है। हम न तो 'अग्निमीडे' के स्थान पर 'ईडे अग्निम्' बोल सकते हैं तथा न अन्य पर्यायबाची शब्द रखकर 'वह्नि स्तोमि' बोल सकते हैं। ऐसा करने पर दैवीवाक् में मानवीवाक् का सम्मिश्रण हो जाएगा तथा उसका शुक्लत्व (विशुद्धता) समाप्त हो जाएगा तथा वह कृष्ण (मिश्रित) बन जाएगा। यजुर्वेद के सम्बन्ध में भी यही सब हुआ। यज्ञों के व्यामोह में याज्ञिक क्रियाओं की सिद्धि के लिये मन्त्रों के क्रम में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवर्तन किया गया तथा उनकी पूर्णता के लिये ब्राह्मण ग्रन्थों की भाँति अपने वाक्य मिला कर विधि को पूर्ण किया। इसे ऋषियों ने पसन्द नहीं किया तथा ऐसे वेद को कृष्ण अर्थात् दूषित माना, यही यजुर्वेद के शुक्ल-कृष्ण का भेद है। वस्तुतः वाजसनेयी माध्यन्दिनी संहिता ही मूल यजुर्वेद है। उसी का मध्यकालीन आचार्य उवट एवं महीधर तथा वर्तमान काल में महर्षि दयायन्द ने अपने प्रकार का भाष्य लिखा है।

आचार्य उवट तथा महीधर ने, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, यजुर्वेद का कर्मकाण्डीय भाष्य लिखा जिसमें अनेक प्रकार के यज्ञयागों का विधान मिलता है। किन्तु महर्षि दयानन्द वेद को सत्य विद्याओं का परमेष्ठी प्रदत्त ज्ञान मानते हैं। उनके अनुसार वेद, ज्ञान-विज्ञान का आकर ग्रन्थ है। उनमें जहाँ यज्ञों का विधान है वहाँ संसार के हितकारी सब ज्ञानों का भी वर्णन है, जैसे कि—

१—शिक्षा शास्त्र के तत्त्व, अध्यापक कैसे हों, छात्र कैसे हों, पढ़ाने तथा परीक्षा का प्रकार कैसा हो, विद्यालय तथा शिक्षा में क्या अन्तर है, शिक्षा का उद्देश्य न केवल अक्षर ज्ञान या किसी तत्त्व का ज्ञान ही है अपितु वटु का सर्वाङ्गीण विकास है। उसे शरीर से स्वस्थ, मन से शान्त, बुद्धि से सत्त्व-गुणसम्पन्न, आत्मा से बलिष्ठ तथा समाज के लिये उपयोगी तथा हितकर बनाना है।

२—राजनीति शास्त्र—राजा, सेनापति, न्यायाधीश, युद्ध विद्या, अस्त्र-शस्त्र विद्या, व्यूहज्ञान, पराजित राजा से बर्ताव, राजा तथा प्रजा का परस्पर सम्बन्ध, राजा के चुनाव की व्यवस्था, गुप्तचर विभाग एवं विदेश नीति आदि का विशद वर्णन है।

३—समाज शास्त्र—आयु के आधार पर समाज का क्रमशः ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास के रूप में विभाजन तथा उनके कर्तव्य एवं कार्य के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के रूप में समाज का विभाजन तथा उनके कर्तव्य, उनमें परस्पर प्रेम तथा एकता, सहयोग भी भावना, सब वर्णों की एक शरीर के अंगों से उपमा तथा समाज के सब अंगों की उन्नति।

४—शिल्पविद्या—अग्नि-जल से कार्य लेना, गृहनिर्माण।

५—जीवविज्ञान—पशु-पक्षियों के गुणों को जान कर उनसे यथोचित उपयोग लेना, लाभदायक तथा उपयोगी पशुओं का संरक्षण, उपयोगी पशुओं की हिंसा का निषेध तथा हानिकारक को दूर करने आदि का वर्णन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६— आयुर्वेद-आयुसंवर्धन तथा रोगमुक्ति के उपाय, औषध तथा वैद्य का उल्लेख ।

७—स्त्रियों के वेदाध्ययन, यज्ञ, स्त्रियों का न्याय तथा पुरुषों के साथ युद्धादि में जाने का वर्णन ।

८—सृष्टि विद्या, गणित विद्या, सूर्य-किरणों से यान-चालन, ज्वालामुखी से विद्युत् बनाना आदि ।

९— आत्मविज्ञान-आत्मा का स्वरूप, मरने पर जीव की गति, विशिष्ट गुणों के आधार पर शरीर विशेष की प्राप्ति, एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने में वायु तथा सूर्यकिरणों की सहायता, आत्मा की अमरता तथा शरीर की नश्वरता आदि का उल्लेख ।

इस प्रकार चाहे यज्ञविशेषों की दृष्टि से देखें अथवा समाजोत्थान के उपयोगी कार्यों की दृष्टि से देखें, यजुर्वेद जीवन की पूर्णता के लिये उपयोगी ग्रन्थ है जिसके अभाव की पूर्ति अन्य ग्रन्थ नहीं कर सकते ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंकर और दयानन्द

डा० विजयपाल शास्त्री
प्राध्यापक, दर्शन विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

एक ही लक्ष्य के दो व्युत्पन्न अन्वेषी अपनी निरन्तर अन्वेषण-साधना के अनन्तर जब मंजिल पर पहुँच कर दो विरुद्ध बातें कहते हैं तो उन बातों को सुनकर एक तटस्थ जिज्ञासु का मन संशय की स्थिति से उद्विग्न हो उठता है। ये अन्वेषी यदि अपारदृश्वा साधारणजन हों तब तो समीक्षक को कोई विशेष उलझन नहीं होती। दोनों की उपेक्षा करके संशय के गर्त से निकला जा सकता है। किन्तु जब दोनों ही साधक पारदृश्वा सिद्धयोगी और नीर-क्षीर विवेचन-पटु हों, तब उस समय जिज्ञासु के सामने यह बड़ी विकट स्थिति उपस्थित होती है कि किसके मत को उपेक्षित किया जाये और किसको निर्दुष्ट रूप से स्वीकृत किया जाये। उद्भट तार्किक श्री हर्ष ने इसी उलझन भरी स्थिति को इस रूप में व्यक्त किया है—

एकोऽनेक विशेषेऽर्थे विशेषो यत्र लक्ष्यते।
तद्विशेषान्तरान्यत्वात् दोषस्तत्रैव धावति ॥

(खण्ड नं० प्रथम परिच्छेद)

अर्थात् अनेक विशेषों वाले अर्थ में जब किसी एक विशेष को अन्य विशेषों से पृथक् लक्षित किया जाता है तो आत्माश्रयादि अनेक दोष पीछे दौड़ पड़ते हैं। जिनसे पिण्ड छुड़ाना सम्भव नहीं।

मैं यहाँ पर जिन दो दिग्गज पारदृश्वा महान् विभूतियों के मतों की समीक्षा करने चला हूँ वे हैं प्रातःस्मरणीय आचार्य शंकर और ऋषि दयानन्द। दोनों का एक ही लक्ष्य था—जन्म-जरा-मरणादि क्लेशों से पीड़ित मानवों को दुःखों से मुक्त करना। किन्तु इस लक्ष्य पर पहुँचने के मार्ग दोनों चिन्तकों के अनुसार पृथक्-पृथक् निर्दिष्ट किये गये हैं।

यहाँ पर इन दोनों महान् चिन्तकों के समस्त सिद्धान्तों का विश्लेषण और समीक्षण प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है। दयानन्द जी ने शांकर मत के निराकरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये जो तर्क प्रस्तुत किये हैं, उनमें से कतिपय की ही परिचर्चा यहाँ की जाती है।

शैली भेद—

दयानन्द जी की स्वमतप्रतिष्ठापन और परमतभञ्जन की शैली पूर्णतया तर्कप्रधान है। उनकी मान्यता है कि जिस सिद्धान्त की पुष्टि तर्क के द्वारा नहीं की जा सकती, वह सिद्धान्त स्वीकार करने योग्य नहीं है।

दूसरी ओर शंकर का मत पूर्णतया उपनिषदों पर आधारित है। उपनिषदों के वाक्यों की अद्वैतपरक संगति लगाना ही उनका ध्येय है। उपनिषदों का आधार तर्क नहीं बल्कि अन्तःस्थल को स्पर्श करने वाली हार्दिक अनुभूति है। वहाँ स्पष्ट उल्लिखित है—'नैषा तर्केण मतिरापनेया' अर्थात् यह अद्वैत-बुद्धि तर्क से प्राप्य नहीं है। और यह बुद्धि जब प्राप्त हो जाती है तो तर्क-सहस्रों से भी हटायी नहीं जा सकती। प्रारम्भ में यह उपनिषदों की अद्वैत मीमांसा तर्क से दूर थी। क्योंकि तर्क एक दुधारी कृपाण है जो पक्ष और विपक्ष दोनों का शातन करती है। किन्तु अनन्तर प्रतिपक्षियों के तर्कशरों के प्रहार से इस अद्वैतमीमांसा को सुरक्षित रखने के लिये इसके आचार्यों को भी अपने को तर्कवाणों से सज्जित करना पड़ा। इन तर्कों का एक ही आधारभूत ज्योतिस्तम्भ था—ब्रह्म। इसी ब्रह्मास्त्र को लेकर शांकरमतानुगामी श्री हर्ष ने तर्कतूणीर से सन्नद्ध होकर द्वैतवादी प्रतिपक्षियों के पक्षों का शातन किया था। उन्होंने घोषणा की थी—

एकं ब्रह्मास्त्र मादाय नान्यं गणयतः क्वचित्।
आस्ते न धीरवीरस्य भङ्गः संगरकेलिषु ॥

सिद्धान्त भेद—

शांकर मत

आचार्य शंकर और दयानन्द जी की दार्शनिक मान्यताओं का भेद समस्त विद्वत्वर्ग के लिये अज्ञात नहीं है। संक्षेप में शांकर सिद्धान्तों का सार यह है कि एक निर्विशेष अद्वैततत्त्व ब्रह्म ही सर्वत्र व्याप्त है। ब्रह्म ही एकमात्र सत्य पदार्थ है। ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं है। यह दृश्यमान प्रपञ्च का नानात्व कल्पित एवं आरोपित है। आरोपित होने के कारण मिथ्या है। वस्तुतः यह सोपाधिक ब्रह्म का ही रूपान्तर है। ब्रह्म में जगत् का जो भिन्नत्वेन बोध होता है, यह अविद्याकृत है, व्यावहारिक है, पारमार्थिक नहीं है। अविद्या सद् और असद् से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विलक्षण एक अनिर्वचनीय तत्त्व है, जो त्रिगुणात्मक है, ज्ञानविरोधी है और भावात्मक है।

ब्रह्म के दो रूप हैं निरुपाधिक और सोपाधिक। विशुद्ध चैतन्यरूप ब्रह्म निरुपाधिक है। सोपाधिक चैतन्यरूप ब्रह्म जीव है। अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य को जीव कहते हैं। ब्रह्म में कोई गुण या विशेष नहीं रहता, इसलिये यह निर्विशेष कहलाता है और इसीलिये शंकर का मत निर्विशेषाद्वैतवाद कहलाता है।

अविद्यावश अन्तःकरणोपाधिक जीव चैतन्य का संसारचक्र में आना बन्धन है। तथा अविद्या के नाशपूर्वक ब्रह्म के साक्षात्कार से ब्रह्मरूप हो जाना मोक्ष है। ब्रह्मवित् ब्रह्म ही हो जाता है। यह मुक्ति आत्यन्तिक होती है। आत्यन्तिक का अर्थ है कि मुक्त होने के पश्चात् पुनः इस संसार में जन्म नहीं होता।

यह मुक्ति केवल ज्ञान से होती है, कर्म से नहीं। कर्म केवल चित्त शुद्धि में ही सहायता करता है। ब्रह्म के साक्षात्कार में उसका तनिक भी उपयोग नहीं है। कर्म चार प्रकार के हैं—उत्पादक, प्रापक, संस्कारक और विकारक। किन्तु मोक्ष न तो उत्पाद्य है, न प्राप्य है, न संस्कार्य है और न विकार्य है। इसलिये कर्म से मुक्ति नहीं होती। कर्ममार्ग पृथक् है और ज्ञानमार्ग पृथक् है। पूर्व समुद्र की ओर जाने वाले तथा पश्चिम समुद्र की ओर जाने वाले दो व्यक्तियों का मार्ग और लक्ष्य एक नहीं हो सकता। शांकर मत का यही संक्षिप्त सार है।

दयानन्द मत

दयानन्द जी के दार्शनिक विचार शांकरमत से बहुत विरोध रखते हैं। दयानन्द जी के कथनानुसार ईश्वर, जीव और प्रकृति तीन तत्त्व अनादि और अनन्त हैं। सृष्टिकाल और प्रलयकाल दोनों अवस्थाओं में इन तीनों का सद्भाव बना रहता है। मुक्ति में भी जीव का लय नहीं होता। ब्रह्म कभी जीव नहीं होता और जीव कभी ब्रह्म नहीं होता।

जगत् ब्रह्म में आरोपित नहीं है बल्कि जगत् का प्रवाह नित्य है। जिस रूप में यह दिखाई दे रहा है उसी रूप में सत्य है। जन्ममरण का चक्र सदैव चलता रहता है।

स्वामी जी के अनुसार जीव और ब्रह्म एक नहीं। यदि ऐसा न होता, तो "रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति" यहाँ प्राप्तिविषय ब्रह्म और प्राप्त करने वाले जीव का निरूपण नहीं घट सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द जी शंकराभिमत माया के स्वरूप को नहीं मानते। उनका कथन है कि जो वस्तु नहीं उसका भासमान होना सर्वथा असम्भव है, जैसे वन्ध्या के पुत्र का प्रतिबिम्ब कभी नहीं हो सकता।

मुक्ति में जीव का भौतिक शरीर से संग नहीं रहता, किन्तु सत्य संकल्पादि स्वाभाविक गुण सामर्थ्य सब रहते हैं जिनसे वह आनन्द भोगता है।

मुक्त जीव फिर से संसार में आते हैं। आत्यन्तिक अपवर्ग कभी नहीं होता। यदि जीव मुक्ति से न लौटे तो संसार का उच्छेद हो जाये। ३१ नील, ४० खरब, ४० अरब मानुषवर्ष मुक्तिसुख का भोग करके जीव पुनः संसार में आता है।

"तदत्यन्त विमोक्षोऽपवर्गः" इस न्यायसूत्र में अत्यन्त का अर्थ अत्यन्ताभाव नहीं बल्कि 'बहुत' अर्थ है।

'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्' इस पातञ्जल सूत्र का अर्थ स्वामी जी करते हैं कि जब चित्त एकाग्र और निरुद्ध होता है तब द्रष्टा ईश्वर के स्वरूप में जीवात्मा की स्थिति होती है। भाष्यकार व्यास के अनुसार इस सूत्र का अर्थ है कि द्रष्टा जीव का अपने स्वरूप में अवस्थान होता है।

मुक्ति कर्मानुष्ठान से होती है, ज्ञान से नहीं। स्वामी जी के अनुसार मुक्ति के साधन इस प्रकार हैं—"परमेश्वर की आज्ञा पालने, अधर्म, अविद्या, कुसंग, कुसंस्कार, बुरे व्यसनों से अलग रहने और सत्यभाषण, परोपकार, विद्या, पक्षपातरहित न्यायधर्म की वृद्धि करने, पूर्वोक्त प्रकार से परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना अर्थात् योगाभ्यास करने, विद्या पढ़ने-पढ़ाने और धर्म से पुरुषार्थ कर ज्ञान की उन्नति करने, सबसे उत्तम साधनों को करने और जो कुछ करे वह सब पक्षपातरहित, न्याय, धर्मानुसार ही करे, इत्यादि साधनों से मुक्ति और इनसे विपरीत ईश्वराज्ञाभङ्ग करने आदि काम से बन्ध होता है।"

ये मुक्ति के सामान्य साधन हैं। दयानन्द जी ने मुख्य साधन—विवेक, वैराग्य, षट्क सम्पत्ति, मुमुक्षुत्व और श्रवण-चतुष्टय के अनुष्ठान को बताया है। संक्षेप में दयानन्द जी के दार्शनिक विचारों का यही सार है।

तर्क एवं समीक्षा—

अद्वैतवाद के प्रतिपादनार्थ शंकर का तर्क यह है कि द्वैतवाद में भय बना रहता है—द्वितीयाद्वै भयं भवति। एकत्व का अनुभव करने वाले को शोक, मोह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और भय नहीं होता—तत्र को मोहः कः शोक एकत्व मनुपश्यतः। द्वैत भावना का उपादान कारण अविद्या है। अविद्या के नाशपूर्वक जब एकत्व का भान होता है तब द्रष्टा-दृश्य, भोक्ता-भोग्य तथा ज्ञाता–ज्ञेय का भेद समाप्त हो जाता है—यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत् तत् केन कं पश्येत् केन कं विजानीयात्।

यदि अद्वैत भाव को न माना जाये तो अद्वैत प्रतिपादक श्रुतियों की अनुपपत्ति होगी। जगत् के व्यवहार के लिये शंकराचार्य ने प्रातिभासिक, व्या–वहारिक और पारमार्थिक इस त्रिविध सत्ता की परिकल्पना की है।

आत्यन्तिक मुक्ति के सन्दर्भ में शंकर कहते हैं कि यदि मुक्ति से वापिस आना अनिवार्य हो तो मुक्ति अनित्य हो जायेगी। ऐसी मुक्ति के अधिगम के लिये सुधीजन प्रवृत्त न होंगे। "यद् गत्त्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं गम" यह श्रुति इसमें प्रमाण है।

स्वामी दयानन्द जी कहते हैं कि ईश्वर एक है तथा दया, ज्ञान, अनन्त-शक्ति, न्याय, जगत्कर्तृत्व आदि अनेक गुणों से भरपूर है। जीव सीमित गुणों वाला है। वह ईश्वर के तुल्य कभी भी नहीं हो सकता। ईश्वर निराकार और निर्विकार है।

यहाँ यह चिन्तनीय है कि निराकार शब्द का क्या अर्थ है–शरीररहित होना? या सूक्ष्म आकार वाला होना? या सर्वथा आकार से रहित होना? यदि प्रथम अर्थ स्वीकार किया जाये तब तो शांकर मत और दयानन्द मत में कोई विरोध नहीं। शंकर भी विशुद्ध ब्रह्म को शरीररहित और गुणरहित मानते हैं। यदि द्वितीय अर्थ स्वीकार किया जाये तब ईश्वर सर्वथा आकारशून्य तो न रहा। सूक्ष्म ही सही, आकार तो है। तृतीय अर्थ स्वीकार करने पर यह जिज्ञासा होती है कि सब प्रकार के आकार के अभाव में ईश्वर के गुण किसको आधार बनाकर स्थित रहेंगे। गुणों का कोई आधार तो होना चाहिये।

निर्विकार पद भी विचारणीय है। जिज्ञासा होती है कि ईश्वर के गुण अपने आश्रय में कोई अतिशय उत्पन्न करते हैं या नहीं। यदि नहीं करते तब तो उनका रहना, न रहना समान है। यदि करते हैं तब ईश्वर विकाररहित तो न रहा। यदि कहो कि ये गुण ईश्वरोपाधि चित्त के धर्म हैं ईश्वर के नहीं, तब तो फिर शंकर ने ही क्या अपराध किया है जो अन्तःकरणरूप उपाधिभेद से चैतन्य में काल्पनिक भेद मानते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी का यह कहना भी संगत प्रतीत नहीं होता कि ब्रह्म का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता क्योंकि वह निराकार है। ईश्वर यदि निराकार होकर भी सगुण हो सकता है तो निराकार ब्रह्म का प्रतिबिम्ब क्यों नहीं हो सकता।

स्वामी जी अद्वैतवाद का खण्डन करते हुए कहते हैं कि "यदि ब्रह्म निष्कलंक है और जीवरूप में अज्ञान का आश्रय है तब तो ब्रह्म अज्ञानी हो गया।" यह मत चिन्तनीय है। शंका होती है कि जीव का स्वभाव क्या है? अज्ञानी होना या अज्ञानरहित होना? प्रथम पक्ष मानने पर मुक्ति नहीं होगी। क्योंकि अज्ञानी को मुक्ति नहीं होती। ऐसा मानने पर सिद्धान्त हानि भी होती है, क्योंकि स्वामी जी ने जीव में सत्य, संकल्प, ज्ञान आदि गुण स्वाभाविक स्वीकार किये हैं। दूसरा पक्ष स्वीकार करने पर जिज्ञासा होती है कि यदि जीव स्वभाव से अविद्या मुक्त है तो संसारी जीव अज्ञानी कैसे बना। कोई न कोई कारण तो अवश्य होगा। यही तो शंकर कहते हैं कि ब्रह्म स्वभाव से विशुद्ध होते हुए भी उपाधिवश अविद्याग्रस्त होकर जीव कहलाता है। उपाधि सर्वव्यापक तो होती नहीं कि एक अंश के सोपाधिक होने से सम्पूर्ण चैतन्य अज्ञानी हो जाये।

स्वामी जी का मत है कि "जीव मुक्त होकर भी शुद्धस्वरूप, अल्पज्ञ और परिमित गुण वाला होता है।" यह कथन विरुद्ध प्रतीत होता है। शुद्ध स्वरूप आत्मा अल्पज्ञ नहीं रह सकता। सर्वज्ञता का प्रतिबन्धक आवरण होता है। आवरण के हटने पर शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति होती है। तब सर्वज्ञ होने में कोई रुकावट नहीं। यदि मुक्त होकर भी अल्पज्ञ ही रहा तो मुक्ति का कोई लाभ नहीं। दूसरी बात यह है कि अल्पज्ञ को मुक्ति कदापि नहीं हो सकती।

स्वामी जी का यह मत भी विचारणीय है कि जीव मुक्ति से लौटकर पुनः संसार में आता है। यदि मुक्ति से लौटना अनिवार्य है तब तो उसके लिये विशेष प्रयास की आवश्यकता नहीं। संसार में रहकर ही सुख की प्राप्ति हो सकती है। स्वामी जी तर्क प्रस्तुत करते हैं—"जैसे मरना अवश्य है तो भी जीवन के लिये उपाय किया जाता है, वैसे ही मुक्ति से लौटकर जन्म में आना है तथापि उसका उपाय करना आवश्यक है।"

यहाँ दृष्टान्त और दार्ष्टान्त में वैषम्य है। देहपात अवश्यम्भावी है इसलिये कर्म के सम्पादनार्थ दीर्घ जीवन का प्रयास किया जाता है, किन्तु मृत्यु के पश्चात् इस क्लेश-बहुल जीवन में कोई नहीं आना चाहता। ऐसे ही मुक्ति प्राप्त करके जीव इस क्लेशपूर्ण संसार में क्यों आना चाहेगा। ऐसे नश्वर और अनित्य मोक्ष के लिये विद्वानों की प्रवृत्ति क्यों होगी। दूसरी बात यह कि यदि अमृत से पुनः मृत्यु को लौटना अनिवार्य है तो 'मृत्योर्माऽमृतं गमय' यह प्रार्थना किसलिये?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बात यह भी जिज्ञास्य है कि स्वामी जी मुक्ति में जिस आनन्द को भोग्य मानते हैं वह आनन्द इन्द्रियजन्य तथा धन्नपानादि विषयजन्य सुख जैसा ही है या इससे कोई विलक्षण सुख है। यदि लौकिक सुख के तुल्य ही मोक्ष सुख है तब तो वह बन्धन का ही कारण है। तब तो मुक्ति भी प्राप्ति के योग्य नहीं। किसी विलक्षण सुख को स्वामी जी स्वीकार नहीं करते।

अन्त में एक बात और। मुक्ति के बाद संसार में लौटने के लिये जीव के पास क्या सामग्री है? जन्म के लिये तो दोषकर्म ही कारण होते हैं। उनका क्षय हो ही चुका है। उनका क्षय होने पर ही मुक्ति मिली है। 'क्षीयन्ते चास्य कर्माणि' यह बात स्वामी जी भी स्वीकार करते हैं। कर्म के अभाव में जन्म कैसे होगा।

अतः शंकर के तर्कों से प्रतिपादित अद्वैतवाद निरवद्य प्रतीत होता है। अद्वैतवाद के साथ स्वामी जी के तर्क न्याय करते हुए-से प्रतीत नहीं होते। मुझे ज्ञात है सभी विचारक इस मत से सहमत नहीं होंगे। किन्तु स्वतन्त्र चिन्तन की धारा को अवरुद्ध नहीं किया जा सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कीर्ति-शेष
आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र

डा० जगदीश वाजपेयी
पूर्व रीडर तथा अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
सनातन धर्म कालेज, मुजफ्फरनगर

आज हमारे मन पर आधुनिक काल, आधुनिक कविता और खड़ी बोली का रंग इतना गहरा चढ़ा है कि हम रीतिकाल और उसकी कविता तथा हिन्दी की बोलियों में ही एक होती हुई भी 'भाषा' का प्रतिष्ठित पद पा जाने वाली ब्रजभाषा (और यदि आचार्य मिश्र की शब्दावली में कहें, तो 'ब्रजी') को कतई भूलते जा रहे हैं। मिश्र जी उन विद्वानों में अप्रतिम थे, जिन्होंने खड़ी बोली की चकाचौंध के इस युग में उपेक्षिता ब्रजवाणी और प्राय:तिरस्कृत रीतिकालीन कविता को एक बार फिर सशक्त शब्दों और तर्क-परिपुष्ट ढंग से पुन: गरिमा-मण्डित करने का सफल प्रयास किया था। उनकी पीढ़ी के ऐसे अन्य विद्वानों में डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल', डा० भगीरथ मिश्र, डा० दीनदयालु गुप्त आदि के नाम लिये जा सकते हैं, परन्तु आचार्य मिश्र इस श्रेणी के विद्वानों में अप्रतिम थे।

हिन्दी का यह परम दुर्भाग्य रहा है कि खड़ी बोली कविता की हिमायत में कवि इतने मुखर हो जाते थे कि उनकी आँखों पर पक्षपात का चश्मा चढ़ जाता था और तब अपना सहज विवेक भी विस्मृत कर देते थे। विचित्रता यह है कि जिन्होंने ब्रजभाषा कविता को पानी पी-पीकर जी भर कोसा है, स्वयं उनकी कविता की सरस-मधुर शब्दावली पर ब्रजभाषा की मृदु-मृसल पदावली का गहरा रंग देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए छायावादी कविता के घोषणा-पत्र (Manifesto) कहे जाने वाले 'पल्लव' की पाण्डित्यपूर्ण भूमिका में स्व० सुमित्रानन्दन पंत ने एक ओर तो ब्रजभाषा कविता को स्त्रैण आदि कहकर उसकी यथासम्भव निंदा की है, दूसरी ओर उनके 'पल्लव' ही क्या 'गुंजन' 'युगान्त' जैसे कई कविता-संग्रहों की भाषा पर ब्रजभाषा की मधुरता का जादू सिर चढ़कर बोलता-सा प्रतीत होता है, यथा—

धूम धुँआरे काजर-कारे, हम ही बिकरारे बादर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह तो रही खड़ी बोली के एक महाकवि की बात। परन्तु हिंदी के कई दिग्गज समीक्षकों ने भी ब्रजभाषा के 'दिन लद जाने' की बात कही है और इनमें समीक्षक-शिरोमणि आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल का स्वर सब से प्रखर तथा मुखर था। जिन्होंने सत्यनारायण कविरत्न, जगन्नाथ रत्नाकर तथा वियोगहरि जी को ब्रजभाषा कविता के अंतिम श्रेष्ठ कवि घोषित किया है। यह एक विचित्र संयोग था कि आचार्य मिश्र शुक्ल जी के न केवल पट्ट शिष्यों में से एक थे, अपितु उन्होंने शुक्ल जी के कई अधूरे कामों को पूरा कर अपने सुयोग्य शिष्य होने का परिचय दिया है।

हाँ, मिश्र जी के गुरुजनों में पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' और लाला भगवानदीन 'दीन'—दो ऐसे गुरु भी थे, जिन्होंने खड़ी बोली में कविता करके अतुल ख्याति अर्जित करने के बावजूद भी ब्रजभाषा की गौरव-गरिमा को विस्मृत नहीं किया और उसके लिए जीवन भर प्रयत्नशील रहे। इन दोनों ही महारथियों ने आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी के साहित्यिक अधिनायकत्व के युग में रचना करते हुये भी उनके कोप-कृशानु से रंचक भयभीत न होकर ब्रजभाषा की पुरज़ोर वकालत की।

कुछ समय तक सूर और तुलसी के पश्चात् हिन्दी कविता के तीसरे ज्योतिर्मय नक्षत्र-कविवर केशवदास को इतना तिरस्कृत और लांछित किया गया कि उन्हें महाकवि कहना तो दूर, सुकवि भी न कहकर 'एक हृदय-हीन' कवि तक कहा गया और 'कठिन काव्य के प्रेत' कहकर उनकी खिल्ली उड़ाई गई। आचार्य मिश्र को इस बात का श्रेय देना होगा कि उन्होंने केशव की कीर्ति-कौमुदी को अधिकाधिक प्रसरित करने में भरपूर योग दिया और अपने प्रबल प्रमाणों तथा अकाट्य तर्कों के आधार पर उन्हें पुनः खोया हुआ गौरव वापस दिलाया। इतना ही नहीं उन्होंने रीतिकाल (उनके मतानुसार 'श्रृंगार-काल') की रीति-नीति को भी पुनः प्रतिष्ठित कराया।

जिन लोगों ने आचार्य मिश्र के 'हिन्दी साहित्य का अतीत' के दो खण्डों में से किसी एक खण्ड को भी आधा-परधा पढ़ा है, वे उनकी गहरी शोध-दृष्टि तथा तर्क-पुष्ट निष्कर्षों को नकार न सकेंगे। आचार्य मिश्र, वस्तुतः विलक्षण सूझ-बूझ के धनी थे और साहित्यिक अनुसन्धान के क्षेत्र में उन्हें विचक्षण दृष्टि प्राप्त थी। वैसे तो डा० नगेन्द्र, डा० भगीरथ मिश्र और आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने भी ब्रजभाषा और रीति-काल की खुलकर हिमायत की है, परन्तु उनमें आचार्य मिश्र जैसी अकाट्य तर्क-शक्ति और जीवन्तपक्षप्रतिपादन शैली कहाँ। रीतिकाल के ही कवि बिहारी की भरपूर वकालत पं० पद्मसिंह शर्मा, लाला भगवानदीन 'दीन' ने भी डटकर की है और देव को मिश्र बन्धुओं, पं० कृष्ण बिहारी मिश्र तथा डा० नगेन्द्र ने जमकर सराहा है, परन्तु इन दोनों सुकवियों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ मतिराम और पद्माकर को भी आचार्य मिश्र ने उनका न्यायोचित स्थान दिलाने में अपनी प्रतिभा का पूर्ण प्रयोग किया है। उन्होंने घनानन्द, आलम, वोधा, ठाकुर और रसलीन को भी उनका उचित प्राप्य पुनः प्राप्त कराया। आचार्य मिश्र एक साथ ही प्राचीन काव्य-ग्रन्थों के शुद्ध संपादन, साहित्य-शोध और कविता की विवेकपूर्ण समीक्षा में परम निष्णात थे। सूर, तुलसी, केशव, बिहारी, घनानन्द आदि कवियों के बारे में उनकी आलोचनादृष्टि परम निर्भ्रान्त तथा अत्यन्त निर्भीक थी। कहीं–कहीं तो इसी कारण उन्हें अपने श्रद्धेय गुरु आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल से भी विनम्र मतभेद व्यक्त करना पड़ा है। उन्हीं के समकालीन आचार्य पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पं० नन्ददुलारे वाजपेयी और डा० नगेन्द्र जैसे समर्थ समीक्षकों ने आचार्य शुक्ल से अपने मतभेद व्यक्त किये हैं; परन्तु इन तीनों में मिश्र जी जैसी विनम्रता-वलित और हास्य-व्यंग्य मिश्रित मधुतिक्त शैली का समुचित अभाव है।

मुझे कभी उनके चरणों में बैठकर अध्ययन करने का सुयोग-सौभाग्य तो नहीं मिला है परन्तु दो-तीन बार उनके संक्षिप्त सामीप्य का लाभ उठाकर उनकी स्वच्छ तथा मुकुरोज्ज्वल समीक्षा-दृष्टि को निखरने-परखने का अवसर मिला, वह एक दैव-प्रदत्त वरदान तुल्य था। ऐसे यश-शेष आचार्यश्री के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि समर्पित करते हुये मुझे पं० सुमित्रानन्दन पंत के आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रति कहे हुये ये शब्द बरबस स्मरण आ जाते हैं—

'पद–पूजन का भी क्या उपाय,
तुम गौरव-गिरि अत्तुंग–काय।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुहेलखण्ड का प्राचीन सांस्कृतिक केन्द्र

अहिच्छत्रा

डा० श्यामनारायण सिंह
रीडर, प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

प्राचीन भारतीय इतिहास में पंचाल जनपद का अपना एक विशेष महत्व है। प्राचीन साहित्य में पंचाल के विषय में जो वर्णन उपलब्ध है, उससे इस जनपद के राजनैतिक इतिहास के साथ-साथ धर्म, दर्शन, कला एवं साहित्य की झलक भी मिलती है। ऋग्वैदिक आर्य अनेक जनों में विभक्त थे किन्तु इनमें पंचाल का उल्लेख नहीं मिलता। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार पंचाल का प्राचीन नाम क्रिवि था।

"क्रिविय इति ह वै पुरा पञ्चालानामचक्षते"। १३,५,४,७

ऋग्वेद में क्रिवि का उल्लेख एक जन के रूप में मिलता है जिसका निवास-स्थान सिन्धु तथा अस्थिनी (वर्तमान चिनाब नदियों के प्रदेश) में था[1]। संभव है कालान्तर में जब पंचनद प्रदेश से आगे बढ़ने के पश्चात् आर्यों ने विभिन्न क्षेत्रों को अपना केन्द्र बनाया तब क्रिविजन गंगा–यमुना के उस प्रदेश में जा बसा हो जो बाद में पंचाल नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस जनपद का नाम क्रिवि तुर्वस, केशिन्, श्रृंजय और सोमक नामक पाँच जनसमुदायों की निवासभूमि होने के कारण पंचाल पड़ा। जिनमें क्रिविजन प्रमुख था। पुराणों में इस जनपद के पंचाल नाम पड़ने का कारण यह बताया गया है कि यहाँ के एक राजा भृम्यइव (जो अजमीढ़ की छठी पीढ़ी में थे) के पाँच पुत्र थे। उन पाँच पुत्रों में यह राज्य बढ़ने के कारण पंचाल कहलाया[2]।

पंचाल की भौगोलिक सीमा के विषय में ब्राह्मणग्रन्थों, महाभारत, पुराणों तथा बौद्ध ग्रन्थों से कुछ प्रकाश पड़ता है। ऐतरेय ब्राह्मण (८।३।३) में पंचाल को मध्यमा प्रतिष्ठादिश में अवस्थित बताया गया है जिसे कालान्तर में मध्यप्रदेश के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा। बोधायन धर्मसूत्र में आर्य देश, जो वस्तुतः उत्तरकालीन मध्यप्रदेश ही है, सरस्वती नदी के विनशन प्रदेश के पूर्व, प्रयाग के निकट कहीं पर स्थित कालक वनक्षेत्र के पश्चिम परिपात्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण में स्थित था[3]। मनुस्मृति (२।२१) में मध्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश की सीमाएँ उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्य, पश्चिम में विनशन तथा पूर्व में प्रयाग बतायी गई हैं। पुराणों के अनुसार मध्य देश की सीमा उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्य, पश्चिम में कुरु भूमि तथा पूर्व में काशी व कौशल का भू–भाग था। बौद्ध ग्रन्थ दिव्यावदान में तो मध्य देश की पूर्वी सीमा मगध और उससे भी आगे बतायी गयी है। महाभारत के आदि पर्व में उद्धृत एक कथा के अनुसार पंचाल इस काल में क्रमशः उत्तर पंचाल तथा दक्षिण पंचाल नामक दो भागों में विभाजित हो गया था। उत्तर पंचाल की राजधानी अहिच्छत्रा बनी तथा दक्षिण पंचाल की राजधानी काम्पिल्य। दोनों राज्यों के मध्य गंगा नदी विभाजन रेखा थी। काठक संहिता (३०।२) में दाल्म्य पांचालों से संबंधित बताये गये हैं। ऋग्वेद (५।६१।१७-१९) में दाल्म्य के वंशज रथवीति का गोमती के तट पर निवास करने का उल्लेख मिलता है। राय चौधरी ने उपर्युक्त नदी का समीकरण वर्तमान जिला सीतापुर (उत्तर प्रदेश) में निमिसार नामक स्थान के निकट से बहने वाली गोमती नदी से किया। इस आधार पर पंचाल जनपद की पूर्वी सीमा गोमती नदी तक विस्तृत प्रतीत होती है। यजुर्वेद संहिताओं में काम्पीलवासिनी शब्द का उल्लेख मिलता है जो संभवतः किसी राजमहिषि के लिए प्रयुक्त हुआ है। काम्पील वस्तुतः काम्पिल्य नगर का ही बोध कराता है जो महाभारत काल में दक्षिण पंचाल की राजधानी बनी। प्राचीन काम्पिल्य नगर वर्तमान बदायूँ तथा फरूखाबाद (उ०प्र०) के मध्य गंगा के तट पर अवस्थित कम्पिल ही है[4]।

प्राचीन अहिच्छत्रा की समता वर्तमान बरेली जिले के आंवका तहसील में स्थित रामनगर ग्राम के समीप अहिछतर नामक स्थान से की गई है। स्थानीय लोग आज भी इसे पाण्डव किला, आदि कोट अथवा अहिछतर आदि नामों से संबोधित करते हैं। चीनी यात्री ह्वेन-सांग ने इस स्थान (अ–हि–चि–ता–लो) का भ्रमण किया था। उसके विवरण तथा प्राचीन अहिच्छत्रा के ध्वंसावशेषों में इतनी अधिक समता है कि इस स्थान के समीकरण में कोई संदेह नहीं रह जाता। अहिच्छत्रा के विषय में उपलब्ध साहित्यिक साक्ष्यों की पुष्टि पुरातात्विक साक्ष्यों से भी होती है। इस स्थान से प्राप्त अभिलेखयुक्त यक्ष की प्रतिमा[5] तथा एक गुप्तकालीन अभिलेखयुक्त मिट्टी की मुद्रा उल्लेखनीय है जिस पर अहिच्छत्रा नाम अंकित है—

श्री अहिच्छत्रा मुक्तौ कुमारामात्याधिकरणस्यं।

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि सम्पूर्ण पंचाल जनपद का विस्तार वर्तमान रुहेलखण्ड तथा गंगा-यमुना के दोआब के मध्यवर्ती भाग में रहा होगा जिसमें प्रमुखरूप से बरेली, फरूखाबाद, बदायूँ तथा इनके निकटवर्ती जिले सम्मिलित रहे होंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहिच्छत्रा का उत्कर्ष—

अहिच्छत्रा का उत्कर्ष महाभारत काल से प्रारम्भ होता है, जब पंचाल राज्य के विभाजन के पश्चात् यह उत्तर पंचाल की राजधानी बनी। कुछ ऐसे साहित्यिक साक्ष्य उपलब्ध हैं जिनसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रारम्भ में यह स्थान किसी अन्य नाम से सम्बोधित किया जाता था। शतपथ ब्राह्मण (१३।५।४।७) में पंचाल के एक नगर परिचक्रा का उल्लेख है जहाँ पर क्रैव्य पंचाल ने अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया था। मूर्तिकला की दृष्टि से परिचक्रा का अभिप्राय वृत्ताकार पट अथवा फलक से होता है। चैतिय जातक[6] के अनुसार चेदि राजकुमार को पुरोहित के निर्देश पर ऐसे स्थान पर पूजा करनी थी जहाँ पर रत्नजटित चक्र मिले। संभव है नगर का स्वरूप चक्राकार अथवा गोलाकार होने के कारण इसका नाम परिचक्रा रहा हो और कालान्तर में अहिच्छत्रा के नाम से संबोधित किया जाने लगा हो।

जैनग्रन्थ विविधतीर्थकल्प के अनुसार इस नगरी का प्राचीन नाम संख्यावती था। इस संदर्भ में वर्णित कथा के अनुसार एक बार भगवान पार्श्व-नाथ को कमठासुर के प्रकोप से बचाने के लिए नागराज द्वारा उनके ऊपर फणों का छत्र लगाकर उनके शरीर को कुण्डली से आवृत्त करने के फलस्वरूप इस नगरी का नाम संख्यावती के स्थान पर अहिच्छत्रा पड़ा। यह कथा स्थानीय जनश्रुति से समता रखती है जिसके अनुसार एक दिन एक अहीर भूमि पर सोया हुआ था और एक नाग ने उसके मस्तक पर अपने फण फैलाकर छाया कर दी थी। ऐसा देखकर द्रोणाचार्य ने भविष्यवाणी की थी कि एक दिन वह व्यक्ति सार्वभौम शासक बनेगा। यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई और वह व्यक्ति राजा आदि के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार अहि के छत्र के कारण इस स्थान का नाम अहिच्छत्र पड़ा। ऐसी भी मान्यता है कि इसका प्राचीन दुर्ग राजा आदि द्वारा बनवाया गया था जिसे आदिकोट के नाम से सम्बोधित किया जाता रहा है। इसी प्रकार की एक कथा बौद्ध ग्रन्थ में भी मिलती है जिसके अनुसार भगवान बुद्ध ने नागराज को धर्मोपदेश दिया था। चीनी यात्री ह्वेन-सांग के अनुसार इस स्थान को स्मृति में अशोक ने यहाँ एक स्तूप बनवाया था। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि इस नगर का अहिच्छत्रा नामकरण बाद में प्रचलित हुआ। किन्तु यह भी स्पष्ट है कि महाभारत काल के पूर्व ही यह नगर इस नाम से प्रसिद्ध हो चुका था। महाभारत में इस नगरी को अहिच्छत्रा, अहिक्षेत्र, छत्रवती आदि नामों से संबोधित किया गया है। पाणिनि ने (४।१।१७३) प्रत्याग्रथ का उल्लेख किया है जो हेमचन्द्र अभिधान चिन्तामणि (४।२६) के अनुसार प्रत्याग्रथ अहिच्छत्रा का ही दूसरा नाम था (प्रत्याग्रथास्तु अहिच्छत्र:)। सातवीं शताब्दी ई० में जब चीनी यात्री ह्वेन-सांग ने इस नगर का भ्रमण किया उस समय अहिच्छत्रा में बौद्धों के १० संघाराम तथा ९ देव मंदिर थे जिनमें क्रमशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०० हीनयानी सम्प्रदाय के भिक्षु तथा ३०० ईश्वर देव (शिव) के भक्त साधु रहते थे। ह्वेन-सांग ने अहिच्छत्रा को अ-हि-चि-ता-लो के नाम से संबोधित किया है जिसका क्षेत्रफल १७-१८ ली० (लगभग ३ मी०) तथा राज्य का क्षेत्रफल ३००० ली० (ल० ५०० मी०) था। टालेमी[8] ने अहिच्छत्रा को अदिसद्र के नाम से संबोधित किया है।

अहिच्छत्रा के विषय में वर्णित साहित्यिक साक्ष्यों की पुष्टि पुरातात्विक स्रोतों से भी होती है। जिनसे यह आभास होता है कि यह एक वैभवशाली सांस्कृतिक केन्द्र था। पुरातात्विक दृष्टि से सर्वप्रथम कैप्टन हागसन ने १९ वीं शताब्दी में अहिच्छत्रा के ध्वंसावशेषों का सर्वेक्षण किया। उस समय यह पाण्डव का किला के रूप में जाना जाता था। हागसन ने ३४ परकोटों का उल्लेख किया है। इसके पश्चात् १८६१-६२ ई० में कनिंघम ने यहाँ के पुराने टीलों का सर्वेक्षण तथा कुछ टीलों का उत्खनन कार्य कराया। उत्खनन कराने का उनका प्रमुख उद्देश्य संभवत: चीनी यात्री ह्वेन-सांग द्वारा वर्णित बौद्ध स्तूप के सम्भावित स्थल की खोज करना था। कनिंघम ने इस स्थल के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए अपने विवरण में लगभग २० मंदिरों के संभावित भग्नावशेषों तथा ३२ परकोटों का उल्लेख किया है[9]। कनिंघम के पश्चात् १८८८ ई० में एक स्थानीय जमींदार ने इस स्थल पर उत्खनन कार्य कराया जिसमें अनेक अलंकृत ईंटें तथा लाल बलुआ पत्थर से निर्मित पाषाण मूर्तियाँ तथा बौद्ध वेदिकायें प्राप्त हुईं। १८९१-९२ में फ्यूहरर ने इन टीलों पर उत्खनन कार्य करके कतिपय मंदिरों के भग्नावशेषों का अनावरण किया।

अन्ततः अहिच्छत्रा के ऐतिहासिक महत्व को दृष्टिगत रखते हुए भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग ने क्रमश: १९४०-४४, १९६३-६४ तथा ६४-६५ में इस स्थल का विधिवत् उत्खनन किया। इन उत्खननों में उपलब्ध पुरावशेषों से अहिच्छत्रा के गेरुये मृद्भाण्ड संस्कृति (लग० १९०० ई० पू० से ११०० ई० तक) के क्रमिक इतिहास एव संस्कृति पर प्रकाश पड़ा है। अहिच्छत्रा की ही भाँति हस्तिनापुर में भी प्रारम्भिक दो स्तरों से क्रमश: गेरुये मृद्भाण्ड एवं चित्रित धूसर मृद्भाण्ड संस्कृति के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इन उपलब्धियों से जहाँ ब्राह्मण ग्रन्थों, पुराणों, महाभारत, बौद्ध एवं जैन ग्रन्थों के उन विवरणों की पुष्टि होती है जिनमें पंचाल तथा कुरु की महत्वपूर्ण जनपदों में गणना की गई है अथवा इन दोनों राज्यों के पारस्परिक सम्बन्धों की चर्चा की गई है। वहीं यह भी प्रमाणित होता है कि अहिच्छत्रा महाभारत युद्ध के पूर्व भी पंचाल जनपद का एक प्रमुख केन्द्र था जहाँ राजनैतिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियाँ सक्रिय रही होंगी।

अहिच्छत्रा ने वैदिक काल से ही एक सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में ख्याति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्जित कर ली थी। शतपथ ब्राह्मण (१३।५।४।६,७,१६) से विदित होता है कि यहाँ के एक राजा क्रैव्य ने परिचक्रा में अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया था। परिचक्रा, अहिच्छत्रा का ही पूर्व नाम था, इसमें कोई संदेह प्रतीत नहीं होता। पंचाल नरेशों की यज्ञपद्धति श्रेष्ठ बताई गई है तथा इनकी भूमि भाषा की जननी एवं दूसरे प्रदेशों के लिए आदर्श थी (शत० ब्रा० ३।२।३।१५)। अनेक प्राचीन गाथाओं का निर्माण यहीं हुआ। ऋक् प्रतिशाख्य में बाभ्रव्य का उल्लेख मिलता है। शांख्ययन आरण्यक में बाभ्रव्य को पांचाल चण्ड के नाम से विभूषित किया गया है[10]। बेवर ने बाभ्रव्य पंचाल को ऋग्वेद के क्रम विभाग निर्धारण में अग्रणी बताया है। महाभारत में पंचाल के एक अन्य विद्वान शालव को, जो ब्राभ्रव्य गौत्र का ही था वेद का क्रम विभाग निर्धारण करने का श्रेय दिया है (शा०प० ३४२।१०३-४)। कामसूत्र के रचयिता वात्स्यायन ने यह स्वीकार किया है उनका ग्रन्थ बाभ्रव्य पंचाल के कामसूत्र पर आधारित था। इसमें यह उल्लेख मिलता है कि अहिच्छत्रा के निवासी वेश्यागमन से दूर रहते थे[11]। जातक ग्रन्थों से विदित होता है कि उत्तर पंचाल में राजा साहित्य के सृजन में विशेष रुचि लेते थे[12]। राजशेखर[13] में पंचाल के कवियों की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि उनकी रचनायें मधुर एवं कर्णप्रिय होती थीं। वे उच्च स्तर के शास्त्रीय एवं लौकिक अर्थों को भव्य उक्तियों द्वारा ग्रंथित करते थे। उनकी काव्यपाठ प्रणाली सर्वोत्कृष्ट थी। पाठस्वर काव्य रीति के अनुसार तथा वर्णों का उच्चारण समुचित ढंग से किया जाता था।

अहिच्छत्रा के उत्खनन में जो कलाकृतियाँ उपलब्ध हुई हैं वे यहाँ के निवासियों की धार्मिक प्रवृत्ति की द्योतक हैं। वैदिक साहित्य से विदित होता है कि पांचाल वैदिक धर्म के अनुयायी थे। ह्वेनसांग के विवरण के अनुसार ७वीं श० में अहिच्छत्रा एक भव्य नगर के रूप में अपना अस्तितव बनाये हुए था। यहाँ के निवासी धार्मिक प्रवृत्ति के तथा सत्यनिष्ठ थे। जैन ग्रन्थ विविधतीर्थ कल्प के अनुसार यहाँ पार्श्वनाथ की कमठ नामक असुर के उपद्रवों से रक्षा हुई थी। इसी ग्रन्थ से यह भी विदित होता है कि हिन्दू देवी-देवताओं में अम्बिका के अलावा हरिहर तथा चंडिका के मन्दिर भी संख्यावती (अहिच्छत्रा में विद्यमान थे)। ह्वेन-सांग ने भी एक उल्लेख किया है जिसमें कि भगवान बुद्ध ने नागराज को सात दिन तक शिक्षा दी थी। पुरातात्विक स्रोतों से यह प्रमाणित होता है कि अहिच्छत्रा में हिन्दू धर्म के साथ-२ बौद्ध एवं जैन धर्म सामान्य रूप से प्रचलित थे। हिन्दू देवी–देवताओं में अहिच्छत्रा से प्राप्त मातृदेवी, विष्णु, सूर्य, अग्नि, शिव, पार्वती, गणेश, कार्त्तिकेय, कुबेर, महिषासुर आर्द्धनी आदि की मूर्तियाँ तथा भीमगण का शिव मन्दिर एवं पार्वती मन्दिर आदि के भग्नावशेष उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार बोधिसत्व की मूर्तियाँ तथा उनके जीबन से सम्बन्धित शिला पट्ट तथा कतिपय जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ भी अहिच्छत्रा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से उपलब्ध हुई हैं। रामनगर में जैन मन्दिर आज भी स्थित है तथा इस बात का प्रमाण है कि यह जैन धर्म का भी एक प्रमुख केन्द्र रहा होगा। पुरातात्विक स्रोत इस बात के संकेत देते हैं कि यहाँ के शासकों में धार्मिक सहिष्णुता विद्यमान थी। अहिच्छत्रा से कतिपय ऐसे मुद्रांक मिले हैं जिन पर "धर्म रक्षति रक्षित" लेख अंकित है[14]। संभव है लोगों को धर्मपूर्वक आचरण करने हेतु प्रोत्साहित करने के लिए ऐसे माध्यम अपनाये जाते रहे हों। साहित्य एवं धर्म के अतिरिक्त अहिच्छत्रा दार्शनिक चिंतन एवं आध्यात्मिक ज्ञान का भी महत्वपूर्ण केन्द्र थी। उपनिषदों में यहाँ के राजा प्रवाहण जावलि को महान् दार्शनिक तथा विद्या का संरक्षक बताया गया है। इसकी पंचाल परिषद् ज्ञान-परिचर्चा का विशेष केन्द्र था जिसमें दूर-दूर से ऋषि-मुनि तत्वचिंतन में भाग लेने आते थे। छांदोग्य उपनिषद् (१।८।१) के अनुसार उद्यालक ऋषि के पुत्र श्वेतकेतु प्रवाहण जावलि की सभा में ज्ञान की परीक्षा देने पधारे थे। जावाली के अतिरिक्त शिलक शालावत्य, चैकितायन, दाल्म्य, बाभ्रव्य, गालव, पंचाल, चंड आदि विद्वान तथा तत्ववेत्ता इसी जनपद के निवासी थे। वस्तुत: दार्शनिक चिंतन तथा आध्यात्मिक ज्ञान का मनन तभी संभव है जब सुख व शांति का वातावरण हो। अत: स्पष्ट है कि यह जनपद समृद्ध रहा होगा तथा नागरिक अपना शांतिमय जीवनयापन करते होंगे तभी स्वय राजा विद्वानों की परिषदों का अग्रणी बना हुआ था।

संदर्भ ग्रन्थ—

१. ऋग्वेद–८।२०।२५, ८।२२।१२
२. मा०पु० अ० २१, विष्णु–पु० अ० १६।४, वायु–पु० ६६, अग्नि पु० २७८
३. ला० बी० सी०–हिस्टोरिकल जियोग्राफी आफ एनशियन्ट इंडिया (हिन्दी अनुवाद) पृ० २०
४. कनिंघम–एंशियेंट जियोग्राफी आफ इंडिया–पृ० ४१३
५. वाजपेयी–कृष्णदत्त–अहिच्छत्रा–पृ० १२
६. कावेल जातक, भाग ३-पृष्ठ २७५
७. कनिंघम–एंशियेंट जियोग्राफी आफ इंडिया–पृ० ४१४
८. मैक्रिंडल–इंडिया एज डिस्क्राइब्ड बाइ टालेमी–पृ० १३३
९. आर्क्योलाजिकल सर्वे आफ इंडिया रिपोर्ट, खण्ड–१–पृ० २५५
१०. मीमांसक युधिष्ठिर–संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास–पृ० ६०
११. उपाध्याय एस०सी०, कामसूत्र आफ वात्स्यायन।
१२. कावेल–जातक, भाग-६ पृ० २१०
१३. बाल रामायण (१०।८), काव्य मीमांसा–अनु० केदारनाथ शर्मा–पृ० ८३
१४. जे० एन० एस० आई०–भाग २८–खण्ड २ पृ० १८८। स्वामी ओमानन्द–हरियाणे के मुद्रांक पृ० १४५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रासायनिक-क्रिया-भविष्य

—डा० रजनीशदत्त कौशिक
प्रवक्ता, भौतिक रसायन
गु० कां० वि०, हरिद्वार

आधुनिक युग को यदि रासायनिक युग कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। रसायन विज्ञान की आत्मा रासायनिक क्रियाएँ हैं। ये क्रियाएँ हमें जिन्दा रखने व हमारी रक्षा के लिए आवश्यक हैं। यदि रासायनिक क्रियाएँ न हों तो हमारा जीवन विस्मयजनक होगा।

आखिर रासायनिक क्रियाएँ क्या हैं ? क्यों होती हैं ? जितनी देर में यह प्रश्न पूछा जाता है, उतने समय में हमारे मस्तिष्क में अनेकानेक रासायनिक क्रियाएँ घटित हो जाती हैं। हमारे द्वारा किये गये प्रत्येक कार्य के पीछे रासायनिक क्रियाओं का हाथ होता है। इनमें से अधिकतर तो देखी ही नहीं जा सकतीं। फिर भी बहुत सी क्रियाएँ हम दिन-प्रतिदिन देखते हैं, जैसे सूर्य के प्रकाश व क्लोरोफिल की उपस्थिति में कार्बन डाइ आक्साइड तथा पानी से शर्करा का निर्माण। शर्करा का श्वसन द्वारा ग्रहण की गई आक्सीजन से, आक्सीकरण करके ऊर्जा का उत्पादन एवं गैसोलिन के जलने से आटोमोबाइल्स के चलने के लिए ऊर्जा उत्पादन आदि २।

यह तो सर्वविदित है कि रासायनिक क्रिया में परमाणुओं द्वारा नये रूप में व्यवस्थित होकर उत्पाद बनाये जाते हैं। परन्तु एक दिलचस्प व महत्त्वपूर्ण प्रश्न बार २ हमारे सामने आ खड़ा होता है कि आखिर रासायनिक क्रियाएँ क्यों होती हैं ? प्रत्येक क्रियाकारक पदार्थ से प्रत्येक उत्पाद क्यों नहीं बनता ? इस प्रश्न का उत्तर सरल तो नहीं फिर भी वैज्ञानिकों के प्रयासों से इसका उत्तर जुटाया जा सका है।

रासायनिक क्रियाएँ मन्द गति, मध्यम गति व तीव्र गति–तीनों ही प्रकार की हो सकती हैं। उदाहरण के लिए विस्फोट, गन पॉवडर का दहन, आदि क्रियाएँ एक सेकेन्ड से भी कम समय में हो जाती हैं तथा इन क्रियाओं में अत्यधिक गैसें निकलती हैं। अधिकतर क्रियाएँ कुछ समय लेती हैं। जबकि कुछ क्रियाएँ इतनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्द गति से होतो हैं कि पता ही नहीं चलता कि क्रिया हो भी रही है या नहीं। उदाहरणस्वरूप हाइड्रोजन व ऑक्सीजन गैसों को यदि सामान्य कमरे के ताप पर एक काँच के बर्तन में बन्द कर दें, तब सैंकड़ों वर्षों तक एक बूंद पानी भी न पायेगा एवं ऐसा प्रतीत होगा कि क्रिया नहीं हो रही। जबकि क्रिया होती है परन्तु अत्यन्त मन्द गति से। ताप बढ़ाने पर यह क्रिया कितनी तीव्र हो जाती है इसका अनुमान ५५०°C ताप रखते हुए लगाया जा सकता है जबकि कांच का पात्र भी टुकड़े २ होकर उड़ जायेगा।

अब प्रश्न उठता है कि उष्मा किस प्रकार से इस क्रिया को तीव्र करती है। ५००°C ताप पर हाइड्रोजन व ऑक्सीजन के अणु परमाणुओं में टूटते हैं। परमाणु, अणु की तुलना में अधिक क्रियाशील होता है। अतः यह क्रिया बहुत वेग से होती है।

रासायनिक क्रियाओं पर ताप का प्रभाव सामान्यतः एक्टिवेशन ऊर्जा के आधार पर बताया जा सकता है। किसी रासायनिक क्रिया में केवल वे अणु भाग लेते हैं जिनकी ऊर्जा, इस क्रिया के लिए निर्धारित ऊर्जा (एक्टिवेशन ऊर्जा) के बराबर अथवा अधिक होती है। उच्च ताप पर अधिक अणु इस निर्धारित ऊर्जा को प्राप्त कर लेते हैं तथा क्रिया तीव्र हो जाती है।

यह एक्टिवेशन ऊर्जा रूपी चुंगी या पहाड़ की चोटी ही सृष्टि को प्रलय से बचाए हुए है। क्योंकि यदि समस्त पदार्थ एक दूसरे से क्रिया करने लगेंगे, तो रासायनिक क्रियाएँ होती ही चली जायेंगी। अर्थात् जो वस्तु हमें जैसी दृष्टिगोचर होती है, वैसी नहीं रहेगी। अन्ततः, इन क्रियाओं में ऊर्जा का आदान-प्रदान, सृष्टि का महाविनाश करने के लिए पर्याप्त होगा। साथ ही पूर्णरूप से स्थायी वस्तुओं का निर्माण हो जाने के कारण जीवन क्रियाहीन रह जायेगा। उदाहरण के रूप में, जरा सोचिए, ऐसा होने पर पृथ्वी की समस्त हाइड्रोजन व आक्सीजन पानी बना लेंगी। धातुएँ अपने आक्साइडों के रूप में मिलेंगी। जटिल कार्बन रसायन, साधारण व स्थायी यौगिक बना लेंगे। हमारा शरीर जटिल कार्बनिक पदार्थों से मिलकर बना है तथा इसमें बहुत सी धातुएँ होती हैं जो विभिन्न शारीरिक क्रियाओं में सहायक हैं। आप अनुमान लगा सकते हैं कि उपरोक्त स्थिति में हमारा क्या होगा? सौभाग्य से एक्टिवेशन ऊर्जा संसार व इसके प्राणियों की रक्षा करती आ रही है।

रासायनिक क्रियाओं के वेग निर्धारण के बहुत से उपाय उपलब्ध हैं। परन्तु वेग निर्धारण से हमारे मूल प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता अर्थात् "कुछ विशेष क्रियाकारक पदार्थ ही क्यों एक निश्चित क्रिया करके नये पदार्थ बनाते हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह क्रियाएँ जो बिना किसी बाह्य सहायता के, स्वतः एवं प्राकृतिक रूप से हो जाती हैं, स्वभावसिद्ध, प्राकृतिक, स्वयंक्रिय या स्पान्टेनियस क्रियाओं के नाम से जानी जाती हैं। आइये देखें इस प्रकार की रासायनिक क्रियाओं के पीछे किसका हाथ है।

यदि हम इतने सक्षम होते कि अपनी आँखों से देख पाते कि रासायनिक क्रियाओं में क्या हो रहा है, तब हमारा कार्य सरल हो जाता। परन्तु यह असम्भव है। अतः हमें प्रयोगों पर निर्भर रहना पड़ता है, जिनमें क्रियाशील पदार्थों व परिणामी पदार्थों का अध्ययन किया जाता है। एक आसान उपाय है कि साधारण प्राकृतिक क्रियाओं का अध्ययन कर उनकी रासायनिक क्रियाओं से तुलना की जाय तथा उनकी स्वभावसिद्ध प्रकृति के बारे में भविष्यवाणी की जाय। उदाहरण के रूप में पहाड़ी से नीचे गिरता पानी, खिंची हुई रबर का सिकुड़ना, पैन का मेज से नीचे गिरना आदि स्वभावसिद्ध क्रियाएँ हैं। इसके विपरीत पानी का स्वयं पहाड़ी पर चढ़ना, पत्थर का स्वयं ऊपर उठना आदि अस्वभावसिद्ध क्रियाएँ हैं।

यदि भली-भाँति देखा जाय तो उपरोक्त सभी स्वभावसिद्ध क्रियाओं में कुल स्थैतिज ऊर्जा क्रिया की दिशा में कम होती जाती है। अतः यह कहा जा सकता है कि जिन क्रियाओं में स्थैतिज ऊर्जा कम होती जाती है, वे स्वभावसिद्ध ही होंगी। अर्थात् अपने आप हो सकती हैं। इस स्थैतिज ऊर्जा की कमी की जाँच, उष्मा के रूप में की जा सकती है। इस बात को डेनिश वैज्ञानिक थोमसन व फ्रेंच वैज्ञानिक बर्थेलॉट ने १८७८ ई० में बताया। उनके अनुसार उष्मा उत्सर्जी क्रियाओं में प्रकट होने वाली उष्मा ही इन क्रियाओं के घटित होने का कारण है क्योंकि इन क्रियाओं में ऊर्जा कम हो जाती है।

परन्तु उष्माक्षेपी क्रियाओं के बारे में क्या कहें ? जिनमें उष्मा का शोषण अर्थात् ऊर्जा में वृद्धि होती है फिर भी ये स्वभावसिद्ध हो सकती हैं। जैसे बर्फ का पिघलकर पानी बनना। अतः यह स्पष्ट हो चुका है कि ऊर्जा में होने वाली कमी के कारणमात्र से स्वभावसिद्ध क्रियाएँ नहीं होतीं वरन् कुछ अन्य कारण भी इनके पीछे कार्य करते हैं। यद्यपि ऊर्जा में होने वाली कमी भी एक कारण है। आइये अन्य कारणों पर भी विचार करें। इसके लिए आवश्यक है कि कुछ ऐसे उदाहरण देखें जायें जिनमें कुल ऊर्जा में कोई परिवर्तन नहीं आता। यदि दो गैसों को एक ही बन्द पात्र में भर दिया जाय तथा इस पात्र को थर्मस की दीवारों की तरह बना दिया जाय तब न यह उष्मा बाहर निकालेगा व न ही शोषण करेगा। अब ये दोनों गैसें एक दूसरे में विसरित होंगी तथा इस प्रकार एक दूसरे में मिलेंगी। अतः किसी एक गैस के किसी एक अणु के एक नियत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान पर पाये जाने की सम्भावना कम हो जायेगी। अर्थात् अब इस अणु के बारे में भविष्यवाणी करना असम्भव है क्योंकि शोर-शराबा, कोलाहल या कहिये अनुशासनहीनता बढ़ गई है।

एक अन्य उदाहरण है किसी गैस का निर्वात अर्थात् खाली स्थान में फैलना। यह स्वयंसिद्ध क्रिया होगी तथा इसमें भी अनुशासनहीनता में वृद्धि होगी। इस अनुशासनहीनता को एन्ट्रोपी (S) द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। जितनी अधिक अनुशासनहीनता होगी उतनी ही एन्ट्रोपी बढ़ेगी। अब यह तो स्पष्ट हो ही गया है कि स्वयंसिद्ध क्रियाओं में एन्ट्रोपी में वृद्धि होनी चाहिए।

अभी तक हमने ऐसी क्रियाएँ देखीं जिनमें या तो स्थैतिज ऊर्जा या एन्ट्रोपी में परिवर्तन होता है। परन्तु कुछ रासायनिक क्रियाएँ ऐसी भी हैं जिनमें ये दोनों बातें होती हैं। उदाहरण के रूप में आइये अमोनियम नाइट्रेट को पानी में घोला जाय। यह एक उष्माक्षेपी क्रिया है अर्थात् इसमें उर्जा बढ़ती है। साथ ही अमोनियम व नाइट्रेट आयन क्रिस्टल से निकलकर पानी में इधर-उधर भागते हैं जिससे एन्ट्रोपी या अनुशासनहीनता बढ़ती है। एक अन्य सरल उदाहरण है बर्फ का स्वयं पिघलना। बर्फ में पानी के अणु सुव्यवस्थित ढंग से लगे रहते हैं तथा अधिक भाग-दौड़ नहीं करते अर्थात् अनुशासन काफी होता है। बर्फ द्वारा पिघलने के लिए कुछ उष्मा बाहर से शोषित कर ली जाती है जिससे अणुओं की ऊर्जा बढ़ती है तथा अनुशासनहीनता की स्थिति प्राप्त होती है। इस प्रकार से एन्ट्रोपी बढ़ती है। इन उदाहरणों में उष्मा शोषण स्वयंसिद्ध क्रियाओं का विरोधी है जबकि एन्ट्रोपी में वृद्धि इनको स्वयंसिद्ध क्रिया होने का प्रमाणपत्र देती है। अब हमें क्रिया के स्वयंसिद्ध स्वभाव की भविष्यवाणी करते समय ये दोनों कारण ध्यान में रखने होंगे।

समस्या अभी तक गम्भीर लगती है परन्तु एक समीकरण के प्रयोग से यह भविष्यवाणी सरल रूप से की जा सकती है।

$$\Delta G = \Delta H - T \Delta S$$

यहाँ ΔG, ΔH व ΔS क्रमशः फ्री ऊर्जा, कुल ऊर्जा व एन्ट्रोपी में परिवर्तन का प्रतिनिधित्व करते हैं। जबकि T, एब्सोल्यूट ताप (२७३+डिग्री सेन्टीग्रेड में ताप) है जिस पर क्रिया हो रही है। उपरोक्त समीकरण से स्पष्ट है:

१—यदि ΔH का मान ऋणात्मक व ΔS का धनात्मक हो तो ΔG का मान ऋणात्मक होगा क्योंकि T का मान तो सामान्य रूप से धनात्मक ही होता है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि ΔH का मान ऋणात्मक, केवल उष्मा-उत्सर्जी अर्थात् स्वयंसिद्ध क्रियाओं में ही होता है। अतः उपरोक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीकरण से यदि $\triangle G$ का मान किसी रासायनिक क्रिया के लिए ऋणात्मक है तो यह क्रिया स्वयंसिद्ध होगी ।

२—इसके बिपरीत यदि $\triangle G$ का मान धनात्मक है तो यह क्रिया स्वयं नहीं होगी ।

३—यदि $\triangle H$ व $\triangle S$ दोनों धनात्मक हैं तो $\triangle G$ भी कमरे के ताप पर धनात्मक होगा । अतः यह क्रिया कमरे के ताप पर तो नहीं होगी । परन्तु यह स्पष्ट है कि उच्च ताप पर (जबकि T का मान अधिक है), $\triangle G$ के ऋणात्मक होने की सम्भावना होगी व क्रिया हो सकती है । यहाँ रासायनिक क्रियाओं पर ताप का प्रभाव भी स्पष्ट हो जाता है एवं हम ऐसी क्रियाओं को मात्र ताप बढ़ाकर करा सकते हैं जो अन्यथा हम सोचते हैं कि नहीं हो रहीं या हो सकतीं ।

अब यदि आपको किसी रासायनिक क्रिया के लिए $\triangle H$, $\triangle S$ या $\triangle G$ का मान बता दिया जाय तो आप भविष्यवाणी कर सकते हैं कि वह क्रिया स्वयं हो जायेगी अथवा नहीं । या फिर किस ताप पर उसके होने की सम्भावना है । यदि उक्त कारणों को किसी रासायनिक क्रिया की जन्मकुण्डली के ग्रह कहा जाय तो अनुचित न होगा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिसर-परिक्रमा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीय पुस्तकालयाध्यक्ष संगोष्ठी

२३ मई, १९८५

राष्ट्रीय पुस्तकालयाध्यक्ष संघ के तत्वावधान में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार में पाँचवीं राष्ट्रस्तरीय पुस्तकालय संगोष्ठी का शुभारम्भ २३ मई १९८५ को हुआ। सम्मेलन में देश के विभिन्न पुस्तकालयों से लगभग ६० पुस्तकालयाध्यक्षों ने भाग लिया। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलपति श्री बलभद्रकुमार हूजा ने सम्मेलन में आए प्रतिनिधियों का स्वागत करते हुए कहा कि आज गुरुकुल को देश के अनेक भागों से आए हुए पुस्तकालयाध्यक्षों के सम्मेलन के आतिथ्य का गौरव प्राप्त हो रहा है। श्री हूजा जी ने याद दिलाया कि स्वामी दयानन्द सरस्वती इस युग के सर्वप्रथम जननायक थे जिन्होंने राष्ट्रीय जीवनधारा में पुस्तकालय के महत्व को समझा तथा आर्य समाज के संविधान में उन्होंने जिन कुछ पदों का गठन किया उनमें एक पद पुस्तकालयाध्यक्ष का भी था। स्वामी जी की मान्यताओं के अनुसार एक आदर्श समाज के लिए पुस्तकालय का उतना ही महत्व है जितना कि जीने के लिए अच्छे वातावरण की आवश्यकता होती है। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय एक ऐसा ऐतिहासिक स्थान है जिसके संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द जी ने लोगों में स्वाध्याय को जागृत किया तथा उन्होंने गुरुकुल के द्वारा स्वाध्याय की परम्परा को जारी रखने के लिये पुस्तकालय की महत्ता को सर्वोपरि रखा। जिसके परिणामस्वरूप गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय पुस्तकालय का भारत के ५ विश्वविद्यालय पुस्तकालयों में एक प्रमुख स्थान है। श्री हूजा जी ने उपस्थित जन-समुदाय को सम्बोधित करते हुए कहा कि "मुझे आज भी अपने कालेज के पुस्तकालयाध्यक्ष की याद है जिनके दर्शन होने पर उनके पैर छूने में मुझे कुछ भी संकोच नहीं होगा। एक अच्छा पुस्तकालयाध्यक्ष विश्वविद्यालय के आधार को सुदृढ़ करता है। किसी विश्वविद्यालय के स्तर की जानकारी आप उस विश्वविद्यालय के पुस्तकालय से आसानी से लगा सकते हैं।"

राष्ट्रीय पुस्तकालय सम्मेलन के इस अवसर पर गुरुकुल कांगड़ी में इस पुस्तकालय के अतिथि, प्राध्यापक श्री डा० आर० कालिया को भारत सरकार पुस्तकालयाध्यक्ष संघ की ओर से एक मानपत्र भी भेंट किया गया। इनको ये मानपत्र जीवनपर्यन्त पुस्तकालय की सेवाओं के संदर्भ में दिया गया।

सम्मेलन के मुख्य अतिथि श्री सी०पी० गुप्ता, कुलपति रुड़की विश्व-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यालय ने कहा "पुस्तकालय ज्ञान का एक ऐसा आगार है जहाँ शोध एवं शिक्षा का निरन्तर उन्नयन होता रहता है। एक अच्छा पुस्तकालय शोध एवं शिक्षा को जारी रखने में सबसे अधिक योगदान देता है। पुस्तकालय की भूमिका पूरे शैक्षणिक वातावरण में शरीर में रक्त के समान महत्वपूर्ण होती है।"

इस सम्मेलन का उद्‌घाटन श्री टी० आर० चन्द्रशेखरन, महाप्रबन्धक, भेल, रानीपुर-हरिद्वार द्वारा किया गया। उन्होंने प्रतिनिधियों को सम्बोधित करते हुए कहा कि "पुस्तकालय की भूमिका जीवन के हर क्षेत्र में व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र को एक उचित निर्णय लेने में सहायता करती है। ज्ञानसम्पदा के इस वातायन से हर व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र को निर्णनय सामग्री प्राप्त होती है। आज आवश्यकता इस बात की है कि पुस्तकालय वैज्ञानिक शोधकार्यरत लाखों वैज्ञानिकों को उनके विषय से सम्बन्धित नवीनतम सूचना सामग्री उनके प्रयोगशाला तक पहुँचाएँ।"

भारत सरकार पुस्तकालयाध्यक्ष संघ के अध्यक्ष, श्री एम०के० जैन ने प्रतिनिधियों को कहा कि अब धीरे–धीरे शैक्षणिक वातावरण में तो पुस्तकालय वैज्ञानिकी की उपयोगिता महसूस की जाने लगी। ज्ञान का बिस्तार इतनी तेजी से हो रहा है कि पुस्तकालयो पर उसे विश्लेषित करने की जिम्मेदारी आ गई है। पुस्तकालय राष्ट्रीय ज्ञान सम्पदा के प्रतीक हैं। आवश्यकता इस बात की है कि राष्ट्रीय ज्ञान सम्पदा को पुस्तकालय संदर्भ सेवा के मानदण्ड में एकीकृत करके राष्ट्रीय सूचना सेवाओं की सुनियोजित प्रणाली अपनाई जाए। पुस्तकालयाध्यक्ष का प्रारम्भिक दायित्व पुस्तकालय वैज्ञानिकी द्वारा सम्पादित साहित्य की सुलभ जानकारी सम्बन्धित व्यक्तियों तक पहुँचाने की हो गयी है।

इस समारोह के उद्‌घाटन के अवसर पर गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री जगदीश विद्यालंकार ने विश्वविद्यालय के कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा जी को भारत सरकार राष्ट्रीय पुस्तकालयाध्यक्ष संघ की ओर से यह विश्वास दिलाया कि महर्षि दयानन्द सरस्वती ने पुस्तकालयों के महत्व को सर्वोपरि करने का जो जनमत बनाया था, उस भावना को कायम रखा जाएगा।

उक्त सम्मेलन में अनेक तकनीकी गोष्ठियाँ हुईं। जिनकी अध्यक्षता श्री टी० एस० राजगोपालन, निर्देशक राष्ट्रीय विज्ञान प्रलेखन संस्थान, श्री एस०एस० मूर्ति, निर्देशक राष्ट्रीय रक्षा प्रलेखन संस्थान एवं श्री पी०वी० मंगला, डीन, कला-संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय ने को।

सम्मेलन में सबसे अधिक जोर इस बात पर दिया गया कि विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं शोध संस्थानों में पुस्तकालय की बदली भूमिकाओं को स्वीकार किया जाना चाहिए। पुस्तकालय वैज्ञानिकों की सेवाएँ शोध प्रयोगशाला में कार्यरत वैज्ञानिकों को उनके विषय से सम्बन्धित सूचनाएँ पहुँचाने की है। इसीलिये प्रत्येक शोध संस्थानों में कम्प्यूटरों द्वारा सूचना-सेवाओं को प्रारम्भ किया चाहिये।

प्रस्तुति :
जगदीश विद्यालंकार

× ×

प्रौढ़-शिक्षा प्रशिक्षण शिविर

प्रौढ़, सतत शिक्षा एवं विस्तार कार्यक्रम में नियुक्त प्रशिक्षक, प्रशिक्षिकाओं एवं पर्यवेक्षकों का छहदिवसीय प्रशिक्षण शिविर २ जून से ७ जून १९८५ तक विश्वविद्यालय के प्रांगण में लगाया गया। शिविर का उद्घाटन एस०डी०एम० हरिद्वार, श्री अशोककुमार सिंह द्वारा किया गया। शिविर में दिल्ली से आए विशेषज्ञ श्री एस०यू० अनसारी द्वारा विशिष्ट प्रशिक्षण दिया गया। इसमें आस-पास के गाँवों से आये प्रशिक्षक एवं प्रशिक्षिकाओं को निरक्षरता को दूर करने, जनसंख्या पर नियन्त्रण के महत्व, पर्यावरण के महत्व, राष्ट्रीय एकता तथा नैतिक मूल्यों पर विशेष प्रशिक्षण दिया गया।

यह शिविर विश्वविद्यालय के कुलपति श्री जी० बी० के० हूजा की प्रेरणा से लगाया गया। कुलपति जी ने नित्य–प्रति स्वयं प्रशिक्षण का निरीक्षण किया। शिविर में स्वास्थ्य एवं चिकित्सा की ओर भी ध्यान आकर्षित किया गया। सभी प्रतिभागियों ने ५ जून को हरमिलाप मिशन चिकित्सालय में परिवार कल्याण शिविर का अवलोकन भी किया। शिविर में वृक्षारोपण का कार्यक्रम भी रखा गया। शिविर का संचालन डा० ए०के० इन्द्रायन द्वारा किया गया।

७ जून को हुए समापन समारोह में सभी प्रतिभागियों ने एक आदर्श नागरिक बनने की शपथ ग्रहण की। श्री हूजा ने प्रशिक्षार्थियों को सम्बोधित करते हुए कहा कि हम सत्य को समझें, शिव संकल्प करें तथा सौन्दर्य की रचना में सचेष्ट हों, सामूहिक काम करने की प्रेरणा लें। आजादी की लड़ाई इसी सामूहिक प्रयत्न के अनुसार लड़ी गई। अंधविश्वास और पाखण्ड राष्ट्र की नींव को घुन की तरह खा रहे हैं। साक्षरता इस घुन को नष्ट करने का साधन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वविद्यालयीय शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य सतत शिक्षा एवं प्रसार के कार्यक्रमों को सक्रियता के साथ पूर्ण करना होना चाहिए । गुरुकुल अपनी परम्परित अध्ययन-अनुसंधान की सीमाओं को तोड़कर जनजीवन से जुड़ रहा है। आशा है, अन्य विश्व-विद्यालय भी लोकसेवा के अभियान में रुचि दिखायेंगे । अज्ञान, अन्याय और अभाव के विरुद्ध जो लड़ाई आर्य समाज ने शुरू की थी, प्रसन्नता है अब उसे समूचे राष्ट्र ने स्वीकार कर लिया है। अज्ञान को दूर करने वाला ही सच्चा ब्राह्मण है, अन्याय को दूर करने वाला ही सच्चा क्षत्रिय है, अभाव को दूर करने वाला ही सच्चा वैश्य है और कल्याणकारी योजनाओं को क्रियान्वित करने वाला लोक-सेवक ही सच्चा शूद्र है। छुआछूत और आर्थिक वैषम्य पर आधारित ढाँचा वेदमूलक नहीं है। हम सच्चे मानव की खोज करें और उसे ही विज्ञान, कला, साहित्य के माध्यम से प्रतिष्ठित करने का संकल्प लें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकष पर

(पुस्तक समीक्षा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक का नाम—**बौद्ध कापालिक साधना और साहित्य**
लेखक —**डा० नागेन्द्रनाथ उपाध्याय**
प्रकाशक —**स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद**
पृष्ठ संख्या —**३३७**
मूल्य —**७५-००**

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में जिन धर्मसाधनाओं का बोलबाला था, उनमें सिद्ध और नाथ साधनाएँ चर्चित रही हैं। बौद्ध सिद्धों की अपभ्रंश रचनाओं का हिन्दी साहित्य के इतिहास में विनियोग महापण्डित राहुल तथा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अथक परिश्रम तथा अनुसन्धानमूलक अध्ययन के परिणामस्वरूप हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तो अपने इतिहास में इनकी साहित्यिक चेतना ही संदिग्ध मान ली। फलतः परवर्ती इतिहासकारों ने साहित्यिक मूल्यों से पृथक् होने के कारण इन्हें साहित्येतिहास से ही खारिज कर दिया।

अध्ययन और सम्पादन की दृष्टि से सर्वप्रथम बंगला में १९१६ में महा-महोपाध्याय पण्डित हरप्रसाद शास्त्री ने 'बौद्धगान ओ दोहा' द्वारा सिद्ध रचनाओं का उद्धार किया। इसमें संकलित चर्याचर्यविनिश्चय को उन्होंने बंगला सहजियामत का गान माना। फिर तो डा० शहीदुल्ला ने फ्रेंच में 'ले शां मिस्तीक्स', डा० विनयतोष भट्टाचार्य ने अंग्रेजी में 'टू वज्रयान वर्क्स', डा० प्रबोधचन्द्र बागची ने 'चर्यागीति कोश कौलज्ञाननिर्णय' तथा बंगला में डा० कल्याणी मल्लिक ने 'नाथ सम्प्रदायेक इतिहास, दर्शन ओ साधना प्रणाली' लिखकर तांत्रिक बौद्ध साहित्य पर शोधकार्य को अग्रसर करने में अविस्मरणीय योगदान किया। हिन्दी में राहुल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० धर्मवीर भारती, डा० रांगेय राघव तथा डा० नागेन्द्रनाथ उपाध्याय का कार्य स्तर का है। इधर अंग्रेजी में टोनी स्किमिड़ की 'द एटीफाइव महासिद्धाज' पुस्तक स्टाकहोम से, डा० ग्विसेपतुसी की 'द थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस आव मण्डल' पुस्तक लंदन से तथा डी० एल० स्नेलग्रोव की पुस्तक 'द हे वज्र तंत्र : ए क्रिटिकल स्टडी' न्यूयार्क से प्रकाशित हुई हैं। इनमें भारतीय तांत्रिकधारा—विशेषतः बौद्ध और इतर धाराओं के पूर्वापरत्व के निर्णय के साथ तांत्रिक तत्वों की विवेचना की गई है।

डा० उपाध्याय ने इस सारी सामग्री का अध्ययन-मनन करने के बाद अपने ग्रन्थ की रचना की है। इस ग्रन्थ पर कानपुर विश्वविद्यालय ने उन्हें डी० लिट्० की उपाधि से सम्मानित किया है। उपाधि सापेक्ष होने के कारण इस ग्रन्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में शोधप्रविधि का ध्यान भी उपाध्याय जी ने रखा है। ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड में कृष्ण वज्रपाद के पदों का पहली बार भाष्य दिया है। इनकी हिन्दी टीका इससे पूर्व उपलब्ध न थी। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने भी 'बौद्ध सिद्धों के चर्यापद' पुस्तक में केवल मूलपद ही संकलित किए थे। हाँ इनके साहित्यिक, सामाजिक तथा दार्शनिक मूल्यांकन के प्रसंग में कुछ पदों तथा पंक्तियों का भावार्थ उन्होंने स्पष्ट कर दिया था। कृष्णपाद के इसमें १२ पद संकलित थे। डा० उपाध्याय ने कृष्णपाद के कापालिकतत्त्वसम्पन्न केवल ४ पदों का भाष्य किया है। यदि वह कृष्णव्रज के अन्य पदों की भी व्याख्या कर देते तो शोधार्थियों का मार्ग प्रशस्त होता। तदुपरान्त सरहपादरचित 'बुद्धकपाल साधन नाम' का तिब्बती से अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। परिशिष्ट तीन में साधनमाला से 'बुद्धकपाल साधन' अवतरित किया गया है। चौथे में बौद्ध देव-देवीमण्डल के आयुध, उपादान, वाहन, साधन-विधान तथा कापालिक उपकरणों का विवरण देकर इनके क्रियाशील सिद्धान्तों की जानकारी दी गई है। पाँचवे में कापालिक तत्त्वों से सम्बन्धित अंशों का हे वज्रतंत्र से अवतरण किया गया है। इन तत्त्वों की व्याख्या कृष्णवज्र की हे वज्रपंजिका अथवा योग रत्नमाला टीका में मिलती है। छटे परिशिष्ट में लेखक ने चाण्डाली, श्मशान, मण्डल आदि शब्दों पर टिप्पणियाँ लिखी हैं। सातवें में आश्चर्यचर्याचय की टीका के सहारे कापालिक संदर्भ दिए गए हैं। आठवें में तालिका बनाकर ध्यानीबुद्धों–अक्षोभ्य, अमोघसिद्धि, अमिताभ, रत्नसंभव तथा वैरोचन के स्कंध, कुलवर्ण, मुद्रा, वाहन, प्रतीक चिह्न, बोधिसत्व तथा शक्ति का परिचय दिया गया है। यह विवरण डा० विनयतोष भट्टाचार्य की सामग्री के आधार पर है। लेखक का यह सब सामग्री जुटाने का उद्देश्य यह सिद्ध करना है कि तांत्रिक बौद्ध साधना के पारिभाषिक शब्द जुगुप्साव्यजंक तथा अश्लील देखने में लगते हैं, वस्तुतः प्रतीक शैलो के कारण इनके साधनात्मक अर्थ भिन्न हैं। इन व्याख्याओं को देखने-सुनने से उन भ्रमों का निराकरण हो सकता है जो प्रमाद और अज्ञानवश सिद्धकवियों के बारे में फैलाए गए हैं। संदर्भ साहित्य की सूची देखने से भी यह पता चलता है कि लेखक ने इस विषय की सभी प्रकाशित-अप्रकाशित कृतियों का उपयोग कर इसे अद्यतन बनाने का प्रयत्न किया है। १९१६ से लेकर १९७१ तक प्रकाशित हिन्दी, संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी तथा तिब्बती सामग्री के विनियोग से लेखक की निरन्तर अध्ययनशीलता का परिचय मिलता है। अन्त में १२ चित्रों के पटल संकलित हैं जिनमें बुद्धकपाल के दो चित्र डा० लोकेशचन्द्र के सरस्वतीविहार तथा बड़ौदा संग्रहालय से लिए गए हैं। बड़ौदा का चित्र एकाकी है किन्तु सरस्वतीविहार का मूर्त्तिचित्र 'चित्रसेना से आलिंगित हेरुक' का युगनद्ध मुद्रा में उपलब्ध हुआ है। सरहपाद और जालंधर-पाद के चित्र राहुलसम्पादित पुरातत्त्व निबन्धावली में प्रकाशित चित्रों की प्रतिच्छाया हैं। जालंधरपाद का एक चित्र टोनी स्किमिड़ की पुस्तक के आधार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर तथा दूसरा टिबट हाउस म्यूजियम के आधार पर है। कृष्णपाद के दोनों चित्र स्किमिड़ तथा टिबट हाउस म्यूजियम के आधार पर हैं, इनमें डमरुक और छत्र दोनों स्थानों पर दिए गए हैं। कृष्णपाद का एक चित्र पुरातत्त्व निबन्धावली की प्रतिच्छाया है तो दूसरा मेखला—कनखला का संयुक्त चित्र टिबट हाउस म्यूजियम के फलक के अनुसार है। राहुल जी ने इनके पृथक्-पृथक् चित्र दिए थे। मेखला के चित्र में कटा हुआ सिर दिखाया गया है जिसे डा० उपाध्याय ने मेखला द्वारा स्वयं सिर काट कर गुरु को समर्पण कर दिया जाना माना है। द्विवेदी जी ने इसे छिन्नमस्ता का प्रतीक बताया था। यह तथ्य ठोस प्रमाण के अभाव में अभी अनुमानाश्रित है, पर इस पर शोधकार्य होना चाहिए।

डा० उपाध्याय बौद्धतंत्रसाधना का दीर्घकाल से अध्ययन कर रहे हैं। इससे पूर्व 'तांत्रिक बौद्ध साधना और साहित्य' तथा 'गोरक्षनाथ : नाथ सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में' उनकी रचनाएँ नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हो चुकी हैं। इन दोनों ही ग्रन्थों का हिन्दी जगत् में समुचित आदर हुआ। कारण यह है कि अन्य ग्रन्थों में इन सम्प्रदायों के ऐतिहासिक विकासक्रम पर जितना ध्यान दिया गया था, साधनात्मक और दार्शनिक पक्षों का वैसा गहरा और शास्त्रसम्मत उद्घाटन नहीं हो सका था। शास्त्रीयदृष्टि से पुराविद्याओं के पण्डितों में महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराज, हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा बलदेव उपाध्याय ने इस पक्ष पर गम्भीरता से विचार किया था। डा० उपाध्याय में इतिहास और दर्शन की विविधआयामी धाराओं का अद्भुत सम्मिश्रण है। तभी तो वह बौद्ध, शैव स्रोतों की तटस्थ परीक्षा कर सके हैं और द्विवेदी जी की धारणाओं के विपरीत यह घोषणा कर सके हैं—'कापालिक मार्ग शैवों में वाम मार्ग है अतः उसे संशुद्ध कर आधे सम्प्रदाय के रूप में गोरक्षनाथ ने अन्तर्मुक्त होने की स्वीकृति प्रदान कर दी। प्राचीन शैव कापालिक सम्प्रदाय की तरह ही बौद्धों में भी कापालिक मार्ग की कल्पना की जा सकती है जो आधा बौद्ध रहा हो क्योंकि उसने बौद्ध देवता हेरुक के विशेषरूप बुद्ध कपाल को उपास्य मान लिया था। यद्यपि उसने साधना-पद्धति और वेशभूषा शैव कापालिकों के समान ही स्वीकार कर ली थी। तांत्रिक तत्त्वों की समानता, वेशभूषा की समानता, बौद्ध देवता, बुद्ध कपाल को लेकर समानान्तर बौद्ध कापालिक उपयान का समारंभ, शैव-नाथ सिद्धों के साथ सम्पर्क और जीवनयापन—ये सारी बातें जालंधरपाद और कृष्णपाद के आधे शैवत्व और आधे बौद्धत्व की ओर ही संकेत करती हैं किन्तु शैव रचनाओं के अभाव में इन दोनों सिद्धों का बौद्ध सिद्धत्व अधिक प्रबल हो जाता है और पुष्ट पमाणों के अभाव में नाथ सिद्धत्व दुर्बल हो जाता है। अतः कृष्णपाद का कापालिकत्व एक ऐसा सधिस्थल है जहाँ बौद्ध और शैव कापालिक साधनाधाराएँ मिलती हैं। अतः विविध कापालिक स्रोतों और सूत्रों के आधार पर कापालिक तत्त्वों का संग्रह कर बौद्ध स्रोतों के कापालिक तत्त्वों के साथ उनका तुलनात्मक समीक्षण आवश्यक है।[1]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य द्विवेदी की यह धारणा थी कि बौद्ध और शैव कापालिक बाह्यवेश तथा बाह्याचार के कारण समान रहे हैं तथा ईसा की चौथी शताब्दी के लगभग रचित हरिवर्मन के तत्त्वसिद्धि ग्रन्थ में नवसौममत के रूप में इनका प्रामाणिक उल्लेख मिलता है। पण्डित गोपीनाथ कविराज ने मैत्री उपनिषद में कापालिकों का उल्लेख माना है।[2] डा० विनयतोष भट्टाचार्य तथा श्री राहुल, असंग को इसका पुरस्कर्त्ता मानते हैं। असंग के भाई वसुबन्धु का समय ४, ५ वीं शती का मध्य है, अतः यही समय असंग का भी माना जाता है। ललितविस्तर पुराना ग्रन्थ है, उसमें वज्रपाणि का उल्लेख है पर कापालिक शब्द वहाँ नहीं मिलता। अतः कविराज जी ने मैत्री उपनिषद् को इस साक्ष्य का प्राचीनतम स्रोत माना है। डा० उपाध्याय ने इस सम्बन्ध में कोई निजी मन्तव्य नहीं दिया। हाँ, एक बात से वह सहमत हैं कि 'तंत्रवाद न तो मूलतः बौद्ध है और न मूलतः हिन्दू। यह एक ऐसी साधनात्मक और वैचारिक अन्तर्धारा है जो बहुत प्राचीनकाल से और सम्भवतः वेदों के समानान्तर ही प्रवाहित होती चली आ रही है। शैवों, शाक्तों, वैष्णवों, जैनों और बौद्धों का कालक्रम से इसके साथ सम्पर्क हुआ और इस प्रकार इन सम्प्रदायों के तांत्रिकस्वरूप का प्रकाशन होता गया।" सभी धर्ममतों ने अपने-अपने सिद्धान्तों और लक्ष्यों के अनुसार तांत्रिक तत्त्वों को ग्रहण किया। इसके लिए उन्होंने बलदेव उपाध्याय के भारतीय दर्शन तथा आर्थर एवलेन के प्रिंसिपल्स आव तंत्र के उद्धरण भी दिए। मेरा कहना है कि शैव, शाक्त, गाणपत्य तथा सौर सभी सम्प्रदाय तंत्र के साथ इसलिए जुड़े कि वैदिकी तथा तांत्रिकी दोनों प्रकार की श्रुतियाँ संहिताओं, ब्राह्मणों तथा आरण्यकों में मिलती हैं। कपाल तथा वनिता या मुद्रासाधना अंधकारपूर्ण भारतीय इतिहास के युग में भी विद्यमान थीं तभी वेद में कपालपाक का सांकेतिक विधान उपलब्ध होता है। प्रजापति वालाचरु प्राणरूपा चिन्मयी शक्ति विष्णुपत्नी के लिए तथा मनुष्यों में प्रकाशमान विद्युत्रूपा अग्नि के लिए बारह कपालों में पका हुआ और पीछे अनुकरण करने वालों के लिए आठ कपालों में सिद्ध किया हुआ पाक बनना चाहिए।

प्राजापत्यश्चरुरादित्यै विष्णुपत्न्यै चरुरग्नये वैश्वानराय द्वादश कपालोऽनुमत्याऽष्टा कपालः। यजु० २९/६०

अर्थात् अदिति प्राणरूपा है, द्यौ से लेकर सब जड़-चेतन जगत् अदिति का ही रूप है।

प्राणेन संभवस्यदिति देवतामयी
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्ती या भूतेभिर्व्यजायत। कठ ४/७

इनमें ७ व्याहृतियाँ अदिति के ७ पुत्र हैं तथा आठवाँ कपाल प्राणों का प्राण ब्रह्म है। सृष्टि का निर्माण और ध्वंस इन्हीं आठ कपालों में होता है। सूर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रादुर्भाव से पूर्व आकार नहीं था। वे शक्तियाँ परमाणुमात्र थीं, सूर्य प्रथम आकारमय निर्माण है जो काल गणना में द्वादश संवत्सरों का प्रतीक है। अर्थात् जन्म-मरण का कार्य इसी काल-माप में होता है। प्रजापति की सृष्टि का पाक द्वादश संवत्सरों के कपालों में पकता है और विष्णुपत्नी अदिति संरचनार्थ अनेक रूपों में विभक्त और संकुचित होती हुई सृष्टि-कपाल को प्राणियों के रुधिर से भरती रहती है। शतपथ ब्राह्मण में आया है—

एष वै मृत्यु संवत्सरः एष हि मर्त्यानामहोरात्राभ्यामायुः क्षिणोति (१०/४/३)

अर्थात् उसका नाम मृत्यु भी है क्योंकि वह सभी भूतों के जीवन को क्षीण करता है। अहोरात्र उसके सूचक हैं जिनके द्वारा जीव अन्त में संवत्सर में ही विश्राम पाते हैं। सारे जीव संवत्सर में ही चक्कर काटते रहते हैं अतः संवत्सर का नाम सरावत्सर भी है। उसे ही विष्णुपत्नी अदिति, विराड् दिशा को प्रकाशित करने वाली ईशाना तथा मनोता नाम से स्मरण किया गया है। कृष्ण यजुर्वेद की काठक संहिता (२२ स्था. १, २ अनु० ४६, ५०) में मंत्र आया है :

विराड्दिशां विष्णुपत्न्यघोरास्येशाना सहसो या मनोता
विश्वव्यचा इषयन्ती सुभूता शिवानो अस्तु अदितिरूपस्थे।

मनोता का अर्थ है वाक्, अग्नि और पृथ्वी में ओतप्रोत। ईशाना का अर्थ है नियंत्रण करने वाली तथा विश्वव्यचा का अर्थ है प्रकाशित करने वाली। अतः कपालपाक का अर्थ हुआ—सृष्टि यज्ञ में जगत् की छवि। तात्पर्य यह है कि जन्म और मृत्यु, सृष्टि तथा लय का सूचक ही कपाल है। व्रात्य मुनि कपाल को काल का पर्याय मानकर उसी को सृष्टि तथा प्रलय का हेतु मानते थे, वही उनका उपास्य था। ताण्ड्य ब्राह्मण में व्रात्य मुनि हाथ में प्याले के रूप में कपाल रखते दिखाई पड़ते हैं। कपाल को इसीलिए शिव, शक्ति, गणेश तथा हेरुक के हाथ में शैव तथा बौद्ध साधकों ने प्रतिष्ठित किया है। पुराणों में शिव को कपाली तथा शिवा को कपालिनी इसीलिए कहा गया है। प्रकृति ही अदिति है और पुरुष कपाली। ईश्वररूपी कपाली अदिति के साथ काल का कपाल धारण करता है। यही शक्ति लिंगित रुद्र है तथा यही वज्रवाराही द्वारा आलिंगित हेरुक है। साधनमाला के द्वितीय खण्ड की ३०७ वीं साधना में गणपति; ३०६ वीं साधना में महाकाल तथा ३४१ वीं साधना में हेरुक के हाथ में शोणित भरा कपाल देकर प्रलयतत्त्व का संकेत दिया गया है। कहने का आशय यह कि वैदिक कपाल साधना एक सांकेतिक अर्थसम्पन्न व्याख्या थी जिसे प्रतीक साधना के रूप में तांत्रिकों ने ग्रहण किया तथा भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों से जोड़कर इसका विकास भिन्न-भिन्न रूपों में किया। हे वज्रतंत्र की कपालसाधना का भी मूलस्रोत यही है। इसको 'आगम' या बाहर से आया हुआ मानना मेरी दृष्टि में संगत नहीं जान पड़ता। डा०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपाध्याय स्रोत के मूल की खोज में न पड़कर बौद्ध कापालिक साधना और दर्शन के स्वीकृत तथा परम्परानुमोदित पक्ष तक ही सीमित रहे हैं और शायद प्रबन्ध की प्रतिज्ञा की दृष्टि से यह ठीक भी था। पर जब वह बौद्ध कापालिक की खोज में प्रवृत्त होकर शैव तथा बौद्ध कापालिक साधना की चर्चा करते हैं तब वैदिक कपालसाधना के स्रोतों का भी दिग्दर्शन और विश्लेषण होना चाहिए। काल चक्रयान इसी संदर्भ में विकसित हुआ है।

सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध दो खण्डों में विभाजित है। पहले खण्ड में ५ परिच्छेद हैं जिनमें क्रमशः कापालिक मत सम्बन्धी अध्ययनों की आलोचना, कापालिक आचार्यों की परम्परा, शैव-शाक्त-बौद्ध तंत्र, आचारत्रय, कापालिक आम्नाय, तांत्रिक बौद्धदर्शन और कापालिक विचारधाराएँ तथा बौद्ध तांत्रिक साधना और बौद्ध कापालिक साधना का उल्लेख और उनकी मीमांसा हुई है। लेखक ने नेपाली, तिब्बती और भारतीय स्रोतों से प्राप्त सामग्री का भी जमकर आलोड़न किया है। कृष्णवज्रपाद के सम्बन्ध में अधिकृत सामग्री सर्वप्रथम इसी शोधप्रबन्ध में देखने को मिलती है। जालंधरपाद के सम्बन्ध में, जो बौद्ध कपाल साधना के व्यवस्थापक आचार्य कृष्णपाद के गुरु थे, बंगाली तथा तिब्बती स्रोतों से प्राप्त सामग्री भी यहीं उपलब्ध होती है। इस सारी परम्परा के अध्ययन का निष्कर्ष यही है कि बौद्ध कापालिक साधना के पुरस्कर्ता सरहपाद थे। पद्मवज्र उनका नामान्तर है किन्तु बौद्ध कापालिक मत के स्वरूप तथा निर्वाचन के लिए कृष्णपाद के चर्यापदों और दोहा कोश को ही आधार बनाना युक्तिसंगत है। इस धारा के मत, सिद्धान्त और साधना इन्हीं रचनाओं से स्पष्ट होते हैं। कृष्णपाद के चर्यापदों पर मुनिदत तथा दोहाकोश पर मेखला की संस्कृत टीकाएँ इस कार्य में बड़ी सहायक हैं। फिर मेखला तो कृष्णपाद की शिष्या ही थी, अतः कृष्ण-पाद के आशय का मेखला अधिकृत स्पष्टीकरण कर सकती है, इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता।

दार्शनिक दृष्टिकोण तथा साधनात्मक पक्ष को भी डा० उपाध्याय ने प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत किया है। हे वज्रतंत्र, योग रत्नमाला जैसे मूल ग्रन्थों को देख-पढ़कर ही उन्होंने अन्य विद्वानों के विवरणों से मतभेद बताया है। स्नेलग्रोव ने मुद्राओं का जो विवेचन किया था, उससे डा० उपाध्याय ने क्रम की दृष्टि से विमति व्यक्त की है और डा० उपाध्याय का पक्ष ग्रन्थानुसारी होने से ठीक है। हे वज्रतंत्रसम्मत चक्रयोजना का पटल देकर लेखक ने विषय को स्पष्ट कर दिया है। इसी प्रकार वज्रयान चक्रयोजना का पटल देकर विषय का स्पष्टीकरण किया गया है। योगविवेचन में सेकोद्देश टीका ग्रन्थ का उपयोग किया गया है और यह उचित भी था। सेकोद्देश नड़पाद का ग्रन्थ है और नड़पाद कृष्णपाद की चौथी पीढ़ी में वज्रयानी सिद्ध थे। लेखक ने जालंधरपाद की वंश-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परम्परा देकर सिद्ध किया है कि इन्होंने स्वतंत्र परम्परा का प्रवर्त्तन किया जिसमें बौद्ध और शैव दोनों परम्पराओं का सामंजस्य है। सरहपाद की परम्परा में नागार्जुन—शवरपाद, वज्र घंटापाद, कच्छपाद तथा जालंधरपाद का उल्लेख है पर यह परम्परा शुद्ध वज्रयानी बौद्ध परम्परा है, कापालिक नाथपंथ के साथ इसका विशेष सम्बन्ध नहीं। राहुल तथा स्नेलग्रेव जैसे विद्वानों में उत्पन्न मत-वैभिन्य पर भी लेखक ने विचार किया है तथा इसका कारण यह बताया है कि राहुल जी ने सरह की अपभ्रंश रचनाओं के आधार पर अपना मत स्थिर किया है तथा स्नेलग्रोव ने हे वज्रतंत्र के (संस्कृत) आधार पर अपने निष्कर्ष निकाले हैं पर यह कारण ठोस नहीं। अभिनव के तंत्रालोक तथा नड़पाद के सेकोद्देश टीका ग्रन्थ संस्कृत में हैं, उनमें यथास्थान अपभ्रंश के पद उद्धृत हैं, उनमें कहीं भी विचार-भेद नहीं है। दार्शनिक मत और सिद्धान्त की अपेक्षा मेरी दृष्टि में इन सिद्धों ने साधनाक्रम को ही अधिक महत्त्व दिया है अतः विज्ञानवाद या माध्यमिक-वाद के गम्भीर तत्त्वों का विवेचन और प्रस्थानभेद यहाँ नहीं मिलता। साधन, समय, चर्या, तांत्रिक आचार और भाव के साथ गुरु-शिष्य भेद, अधिकार भेद, देवता, योग, तथा कापालिक तत्त्वों का लेखक ने बड़ी योग्यता के साथ विवेचन किया है। काल चक्रयान को उन्होंने स्पष्ट हिन्दू धारणा स्वीकार किया है।[3] एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि लेखक ने इस समग्र साधना की व्याख्या अन्तस्साधना के रूप में ही की है। मैं उनके इस निष्कर्ष से पूर्ण सहमत हूँ कि सामान्यतया कापालिक के बाह्याचार का ही लोग विचार करते हैं और उसी के आधार पर उसके कापालिकत्व का निर्णय करते हैं किन्तु कृष्णपाद जिस साधना का विवेचन करते हैं, वह अन्तस्साधना है।[4]

कुल मिलाकर यह अपने विषय का मौलिक तथा प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसमें एक मध्यकालीन धर्मसाधना का व्यवस्थित रूप से विवेचन हुआ है। अतः जहाँ इस कृति से बौद्धसिद्धों के विचारपक्ष को समझने का अवसर मिलता है, वहीं उसके साहित्यिक पक्ष का उद्घाटन भी होता है। पर साहित्यिक पक्ष का विवेचन अन्य शोध प्रबन्धों में भी हुआ है, अतः लेखक की दृष्टि सिद्धान्तपक्ष में ही रमी है। इस कृति से डा० उपाध्याय के वैदुष्य की छाप बरबस हृदय पर पड़ती है।

—डा० विष्णुदत्त राकेश

१—बौद्ध कापालिक साधना और साहित्य—पृष्ठ १२
२— तांत्रिक साहित्य —पृष्ठ ५१
३—बौद्ध कापालिक साधना और साहित्य—पृष्ठ २४०
४— वही —पृष्ठ २५४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक का नाम—**पातंजल योगदर्शन भाष्य**

भाष्यकार—**श्री राजवीर शास्त्री**

प्रकाशक—**आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट**

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित "पातंजल योगदशन भाष्यम्" नामक ग्रन्थ पढ़कर हार्दिक प्रसन्नता हुई। इसके व्याख्याता एवं सम्पादक श्री राजवीर शास्त्री (सं०—दयानन्द सन्देश) हैं। यद्यपि वैदिक वांगमय में छः दर्शनों का विशिष्ट स्थान है, पुनरपि वर्तमान समय में योगदर्शन का पठन-पाठन विशेष रूप से प्रतिष्ठा को प्राप्त हुआ है। आस्तिक तथा नास्तिक (जैन दर्शनादि) दोनों वर्गों में यौगिक मान्यताओं का प्रचार बढ़ता दिखाई दे रहा है और भौतिक उन्नति से विमुख व अशान्त पाश्चात्य देशों में भी आध्यात्मिक एवं योगसाधना के प्रति उत्तरोत्तर रुचि बढ़ती दिखाई दे रही है। इसीलिए भारत देश से आज पश्चिमी देशों में जाने वाले साधु-महात्मा, विद्वान् आदि उनके लिए एक आकर्षण का केन्द्र बने हुए हैं। इसी प्रकार मध्यकाल में भी राजयोग, हठयोग, कुण्डलिनी योग, नाद योग, मन्त्र योग, आदि अनेक सम्प्रदायों ने योग के नाम से काल्पनिक एवं अनुपयोगी मान्यताओं का प्रचार किया है।

किन्तु सच्चा योग क्या है? प्राचीन एवं सर्वमान्य महर्षि पतंजलि और महर्षि व्यास ने वेदादिशास्त्रों का अनुशीलन तथा योग साधना करके जो योग का स्वरूप बताया था, वह क्या है? वास्तव में मध्यवर्ती और आधुनिक योग सम्प्रदायों के तथाकथित आचार्यों ने योग के सच्चे स्वरूप को न समझकर उसके स्थान पर नाम तो योग का ही लिया है, किन्तु योगविरुद्ध कल्पनाओं का ही प्रचार किया है। ऐसा लगता है कि यदि इन्हें नहीं रोका गया तो वास्तविक योगविद्या पर आवरण पड़ने से वह विद्या लुप्त हो जायेगी और योग का यथार्थ लाभ न मिलने से लोगों में योग के प्रति घृणाभाव ही पैदा हो जायेगा।

आचार्य राजवीर जी द्वारा सम्पादित तथा व्याख्यात "पातंजल योगदर्शन भाष्य" योग विद्या के यथार्थ स्वरूप को अनावृत करने में पर्याप्त सहायक होगा, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। क्योंकि प्रस्तुत पुस्तक में महर्षि पतंजलि, महर्षि व्यास और महर्षि दयानन्द के मन्तव्यों का संगमन होने से यह भाष्य त्रिवेणी संगम की भाँति पवित्रतम बन गया है। विद्वान भाष्यकार ने इन ऋषियों की मान्यताओं को अतीव सरल और सुगम ढंग से समझाने का प्रशंस्य प्रयास किया है। पातंजल सूत्रों के पदों की विशेष व्याख्याओं को यथास्थान अनुस्यूत करना, संदिग्ध स्थलों पर शास्त्र की अन्तःसाक्षी एवं अन्य शास्त्रों के प्रमाणों से योगशास्त्रकार के सिद्धान्त को स्पष्ट करना, छः दर्शनों के विषय में परस्पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरोध की मान्यता का परिहार करना, वैदिक त्रैतवाद आदि सिद्धान्तों की पुष्टि करना[1], योगविषयक भ्रांतियों का स्थान-स्थान पर योगशास्त्र की अन्तःसाक्षी से ही निराकरण करना, इत्यादि इस भाष्य की अन्यतम मुख्य विशेषताएँ हैं। इनके साथ ही व्यास भाष्य में किये गये परवर्ती प्रक्षेपों को भी पृथक् से दिखाकर विद्वान् एवं योगिजनों को अनुसन्धान के लिए आह्वान करके प्राचार्य प्रवर ने अपनी विनम्र अभिमानवृत्ति का भी प्रदर्शन करने में संकोच नहीं किया है। क्योंकि योग जैसे साधनासाध्य गूढ़ व सूक्ष्म विषय पर एकाधिपत्य भाव से कौन लिख सकता है ? भाष्य के साथ ही एक विस्तृत विषयसूची का संयोजन करके अनुसन्धान-कर्त्ता एवं गवेषक विद्वद्जनों के लिए विषयावलोकन को अतीव सरलता प्राप्त कराकर भाष्यकार ने अपनी सुजनता और सिद्धान्तप्रियता का भी प्रदर्शन कर दिया है।

मुझे पूरा विश्वास है कि अध्येतृवर्ग तथा योगजिज्ञासु इस योगभाष्य का अनुशीलन करते हुए पातंजल योग सूत्रों के वास्तविक ज्ञान को प्राप्त करके योग के सच्चे स्वरूप को जानने से भ्रान्त धारणाओं से बच सकेंगे। अपने गहन अध्ययन से दूसरों को भी लाभान्वित करने की सत्प्रेरणा से लिखे इस योगभाष्य के लिए आचार्य राजवीर शास्त्री का मैं हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ और साधुवाद देता हूँ। परमात्मा उन्हें दीर्घ जीवन व उत्तम स्वास्थ्य देकर शास्त्रचर्चा की ओर प्रेरित करते रहें, यही मेरी शुभकामना है।

—रामप्रसाद वेदालंकार
आचार्य एवं उप-कुलपति

१—यहां आदि शब्द से मोक्ष से आवृत्ति न मानना, मोक्ष में जीव का लय मानना, स्वर्ग-नरक को स्थानविशेष स्वीकारना, आयु को निश्चित मानना, ईश्वर का अवतारवाद या साकार रूप मानना, जीव-ब्रह्म की एकता मानना, इत्यादि अवैदिक मान्यताओं का निराकरण करना समझना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रह्लाद

(प्राच्यविद्याओं की प्रमुख त्रैमासिक हिन्दी-पत्रिका)
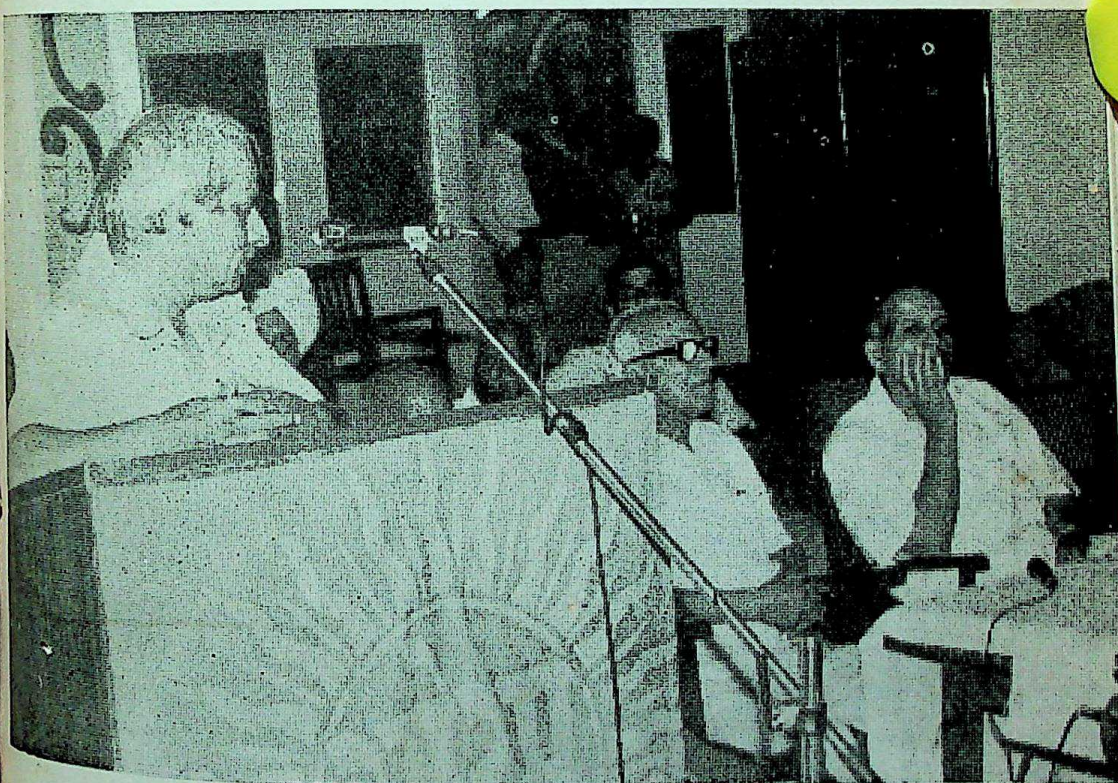
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ष : १९८५] (जौलाई से सितम्बर तक) [अङ्क : ३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रह्लाद

(प्राच्यविद्याओं की त्रैमासिक शोध-पत्रिका)

सम्पादक

डॉ० विष्णुदत्त 'राकेश'
पी-एच.डी., डी.लिट्.
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग

संयुक्त-सम्पादक

डॉ० विनोदचन्द्र सिन्हा
एम.ए., पी-एच.डी.
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष,
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व

वर्ष : १९८५] (जौलाई से सितम्बर तक) [अङ्कः ३

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रधान संरक्षक

डॉ० सत्यकाम वर्मा

कुलपति

संरक्षक

श्री रामप्रसाद वेदालंकार

आचार्य एवं उप-कुलपति

प्रकाशक

मेजर वीरेन्द्र अरोड़ा

कुल-सचिव

व्यवस्थापक

जगदीश विद्यालंकार

पुस्तकालयाध्यक्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* विषय-सूची *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'प्रह्लाद' के मुख-पृष्ठ पर अंकित चित्र का परिचय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के नये कुलपति, संस्कृत-साहित्य और भाषाशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् डॉ० सत्यकाम जी वर्मा का सार्वजनिक भावभीना अभिनन्दन १३ सितम्बर १९८५ को आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा एवं डी० ए० वी० कालेज प्रबन्धक समिति के संयुक्त तत्वावधान में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर प्रसिद्ध आर्य-संन्यासी स्वामी ओमानन्द जी महाराज, हरियाणा आर्य प्रतिनिधि सभा के पदाधिकारी तथा दिल्ली आर्य-समाजों और हरियाणा आर्य-समाजों के अनेक आर्य-बन्धु सपरिवार उपस्थित थे। समारोह की अध्यक्षता दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व-संस्कृत-विभागाध्यक्ष तथा जगन्नाथ पुरी विश्वविद्यालय के पूर्व-कुलपति डॉ० सत्यव्रत शास्त्री ने की। (चित्र में) अभिनन्दन का उत्तर देते हुए कुलपति डॉ० सत्यकाम तथा चिन्तनरत डॉ० सत्यव्रत शास्त्री दिखाई दे रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती का सम्मान

१२ सितम्बर '८५ को अपराह्न तीन बजे आर्य-बन्धुओं तथा नगर के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधियों, सम्भ्रान्त नागरिकों, पत्रकारों, अध्यापकों, कर्मचारियों, तथा फार्मेसी के प्रबन्धकों-कर्मचारियों एवं ब्रह्मचारियों से खचाखच भरे वेदमन्दिर में विश्वविद्यालय के नवनियुक्त कुलाधिपति डा० सत्यकेतु विद्यालंकार तथा कुलपति डा० सत्यकाम वर्मा का भावभीना अभिनन्दन किया गया। समारोह की अध्यक्षता सुप्रसिद्ध वैदिक-विद्वान् आचार्य प्रियव्रत वेदमार्तण्ड ने की तथा संयोजन गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता डा० हरिप्रकाश आयुर्वेदालंकार ने किया। परिवर्त्तन एक नये चरण का संकेत था और प्रशासनिक पदों पर दो विश्रुत शिक्षा-शास्त्रियों की नियुक्ति सरस्वती का सच्चा सम्मान लग रही थी। डा० सत्यकेतु तथा डा० सत्यकाम दोनों ही गुरुकुल के स्नातक हैं और महर्षि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द तथा वैदिक-जीवन-मूल्यों के प्रचार-प्रसार के साथ रचनात्मक लेखन, उच्चतर अध्यापन तथा अनुसन्धान कार्य के साथ जुड़े रहे हैं।

डा० सत्यकेतु विद्यालंकार—एक व्यक्ति, एक संस्था

डा० सत्यकेतु प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति और पुरातत्व के अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिलब्ध विद्वान् हैं। गुरुकुल कांगड़ी की परीक्षाओं की, अंग्रेजी शासन के दौरान मान्यता अपने देश में ही नहीं थी फिर विदेशी विश्वविद्यालयों में मान्यता कहाँ से होती? डा० सत्यकेतु पेरिस में शोधकार्य के लिए गए तो उन्हें इस संकट का सामना करना पड़ा। अपनी योग्यता और विद्वत्ता से यूनिवर्सिटी के अधिकारियों को असाधारणरूप से प्रभावित कर जहाँ उन्होंने सर्वोच्च उपाधि डी० लिट्० प्राप्त की, वहाँ गुरुकुल की परीक्षाओं की मान्यता भी दिलवा दी। पराधीन भारत में गुरुकुल के गौरव की वृद्धि स्नातक के रूप में विदेशी विश्वविद्यालय में डा० सत्यकेतु ने अपने असाधारण ज्ञान से की, यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। डा० सत्यकेतु गुरुकुल के विजयकेतु सिद्ध हुए। हिन्दी में जिन दिनों इतिहास पर मानक-ग्रन्थ लिखने में भारतीय विद्वानों को भी संकोच होता था, उन दिनों 'मौर्य साम्राज्य का इतिहास' लिखकर डा० विद्यालंकार ने उस सीमा को तोड़ा और शोधपूर्ण उत्कृष्ट ग्रन्थ के रूप में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने उस पर मंगला प्रसाद पारितोषिक प्रदान कर, डा० विद्यालंकार की सेवाओं का हिन्दी-जगत् की ओर से अभिनन्दन किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० सत्यकेतु इतिहास-लेखक के साथ-साथ उत्कृष्ट कोटि के साहित्यकार भी हैं। उन्होंने मोपाँसा की कहानियों का अनुवाद भी किया। आचार्य चाणक्य, पतन और उत्थान, अन्तर्दाह, सेनानी पुष्यमित्र उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। पाटलिपुत्र की कथा, हिन्दुस्तानी एकेडमी से प्रकाशित रचना है और गुरुकुल कांगड़ी प्रकाशन मन्दिर से उनकी पुस्तक अपने देश की कथा भी प्रकाशित हुई। शेष सभी पुस्तकें सरस्वती सदन तथा आर्य स्वाध्याय केन्द्र से छपी हैं। प्राचीन भारत के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन का उन्होंने गहरा अध्ययन किया है। विश्व की राजनीति और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों, विदेशी राज्यों की शासन-विधियों, प्रमुख विदेशी राज्यों के संविधानों तथा योरुप के आधुनिक इतिहास के वह विख्यात पण्डित हैं। दक्षिण-पूर्व और दक्षिण एशिया में तथा मध्य-एशिया और चीन में भारतीय संस्कृति का अध्ययन कर उन्होंने बृहत्तर भारत के सम्बन्ध में शोधपूर्ण जानकारियाँ दी हैं। प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिकयुग, प्राचीन भारत की शासन-संस्थाएँ और आर्य समाज का इतिहास (अब तक चार खण्ड प्रकाशित) उनके बहुचर्चित ग्रन्थ हैं। उन्होंने पेरिस, लंदन, चीन तथा थाइलैण्ड की यात्रा के दौरान अपने भाषणों से भारतीय गौरव की वृद्धि की। इन सांस्कृतिक यात्राओं में पाश्चात्य तथा भारतीय शिक्षा-दर्शन की समस्याओं को परखा और समझा। ऐसे अनुभवी विद्वान् को कुलाधिपति के रूप में पाकर विश्वविद्यालय निश्चित रूप से आगे बढ़ेगा, इसका हमें पूर्ण विश्वास है। आज हमें व्यक्ति नहीं, व्यक्ति के रूप में एक संस्था मिल गई है।

डा० सत्यकाम वर्मा : एक और पतंजलि

डा० सत्यकाम वर्मा गुरुकुल कांगड़ी के यशस्वी स्नातक हैं और दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के आचार्य एवं अध्यक्ष रह चुके हैं। १९४८ में उन्होंने गुरुकुल से आयुर्वेदालंकार की उपाधि, प्राचीन भारतीय तथा आधुनिक चिकित्सा और शल्य विषय लेकर प्राप्त की। उनकी योग्यता से प्रभावित होकर भारत में आयुर्वेद के प्रथम निदेशक कविराज प्रतापसिंह ने उन्हें राजकुमार सिंह आयुर्वेदिक कालेज इन्दौर में शल्य, रसतंत्र, द्रव्यगुण तथा तुलनात्मक चिकित्सा के अध्यापन के लिए आमंत्रित किया। डा० वर्मा यहीं तक सीमित न रहे। उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय की शास्त्री परीक्षा दी और उसमें सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। फिर संस्कृत तथा हिन्दी में एम०ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में ससम्मान उत्तीर्ण की। पंजाब की ही एम०ओ०एल० परीक्षा उत्तीर्ण कर भर्तृहरि के ग्रन्थ वाक्यपदीय का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत कर आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त की।

१९६० में वह प्रमुख प्राच्य-विद्याविशारद प्रो०जी० तुची के आमंत्रण पर रोम गए। शारदालिपि में विशेष दक्षता प्राप्त होने के कारण वहाँ उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसिद्ध गिलगित मैनस्क्रिप्ट का सम्पादन किया। रोम विश्वविद्यालय के प्राच्य अध्ययन विभाग में उन्होंने महाभाष्य तथा पुरालेखशास्त्र का अध्यापन किया। १६८२ में वह योरुप की यात्रा पर गए तथा एम०ई०आर० यूनिवर्सिटीज़ द्वारा आयोजित वैदिक विज्ञान संगोष्ठियों में उनके पाण्डित्य को धाक जम गई। १६८३ में दक्षिण अफ्रीका की यात्रा के दौरान उन्होंने वैदिकसाहित्य, उपनिषद्, गीता, तथा षड्दर्शनों पर अपने विद्वत्तापूर्ण प्रवचनों से भारतीय ज्ञान की धूम मचा दी। संस्कृत, वैदिकसाहित्य, भारतीय पुराविद्याएँ तथा इतिहास–पुरातत्व की व्यापक जानकारी एवं विद्वता के कारण डा० वर्मा को देश-विदेश में बड़ी ख्याति मिली। रायल एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता तथा प्राच्य संस्थान जापान, टोकियो ने उन्हें मानद सदस्यता प्रदान की। इसके अतिरिक्त वह अनेक भारतीय विश्वविद्यालयों की पाठ्यक्रम तथा शोध समितियों के भी सदस्य रहे हैं। भारतीय पुरालेखशास्त्र, भारतीय भाषाशास्त्र, भारतीय दर्शन, वैदिक विज्ञान, आयुर्वेद दर्शन तथा योग के डा० वर्मा अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान् हैं। संस्कृत, अंग्रेजी तथा हिन्दी में आपकी अबाध गति है और इटेलियन, फ्रेंच, स्पेनिश तथा जर्मनी भाषा की भी जानकारी है।

व्याकरण और प्रातिशाख्यों की दुरूह ग्रन्थियों का उन्होंने निराकरण किया है। पाणिनि के व्याख्याताओं में वें आधुनिक पतंजलि हैं। उनकी प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं—

(१) उपनिषद् संग्रह (२) वेद वाटिका (३) वैदिक व्याकरण कोश (४) संस्कृत व्याकरण का उद्भव और विकास (५) भाषातत्त्व और वाक्यपदीय (६) व्याकरण की दार्शनिक भूमिका (७) वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड (८) स्टडीज इन इन्डोलाजी (६) वैदिक स्टडीज़ (१०) प्राचीन भारत (११) सिंधुकालीन सभ्यता (१२) प्राच्य विद्या, कुछ निबन्ध (१३) हिन्दी साहित्यानुशीलन (१४) हिन्दी का आधुनिक साहित्य (१५) युगकवि तुलसी (१६) महाकवि प्रसाद (१७) महाकवि पंत (१८) जनकवि दिनकर (१६) संस्कृत के चार कवि।

डा० वर्मा जैसे वैयाकरण तथा भाषा-शास्त्री को कुलपति के रूप में पाकर विश्वविद्यालय का गौरव बढ़ा है। यह गौरव इसलिए तो है ही कि प्राच्यविद्याज्ञान के कारण उनके व्यापक सम्मान और अनुभव का लाभ विश्व-विद्यालय को मिलेगा; इसलिए भी है कि वह इसी विश्वविद्यालय के स्नातक हैं और इसके क्रोड़ में रहकर जो साधना उन्होंने की है, वह समय की कसौटी पर उत्तरोत्तर खरी उतरती रही है। सरस्वती की साधना तो बहुत करते हैं पर गुरुकुल में परिश्रम से अध्ययन करने वाला यह सत्यकाम वस्तुतः सरस्वती के रहस्य को जानता है। समुद्र का संतरण तो सभी कर जाते हैं पर समुद्र की गंभीरता को अकेला मेरुपर्वत ही जानता है, जो अपने पुष्ट शरीर से पाताल तक समुद्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में डूब चुका है।

अस्तु, सगर्व कहा जा सकता है कि कुलाधिपति डा० सत्यकेतु विद्यालंकार तथा कुलपति डा० सत्यकाम वर्मा का सम्मान सरस्वती का सम्मान है। कुलवासियों की ओर से इस अवसर पर इस मनीषी-युगल का हार्दिक अभिनन्दन।

पं० गिरिधर शर्मा नवरत्न शताब्दी-स्मरण

राजस्थान साहित्य अकादमी इस वर्ष बहुभाषाविद् साहित्यकार पण्डित गिरिधर शर्मा नवरत्न का शताब्दी समारोह धूम-धाम से मना रही है। पण्डित जी का जन्म ज्येष्ठ शुक्ला अष्टमी वि० सं० १९३८, ईसवी सन् १८८१ में हुआ था। इनके पिता ब्रजेश्वर भट्ट झालावाड़ के राजगुरु थे। इनका जन्म-स्थान झालरा पाटन है जो राजस्थान और मालवा का संगम-स्थल है। नागर ब्राह्मण होने के कारण इनकी मातृभाषा गुजराती थी पर जयपुर और काशी में संस्कृत का विधिवत अध्ययन कर, संस्कृत साहित्य और भाषा पर भी इनका असाधारण अधिकार हो गया। तदुपरान्त आपने हिन्दी, उर्दू, फारसी, प्राकृत, अपभ्रंश, बंगला तथा अंग्रेजी में महारथ हासिल की। अनुवाद करने में आप बड़े सिद्धहस्त थे। उमर खैयाम की रूबाइयों का आपने संस्कृत में अनुवाद किया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीतांजलि का हिन्दी में अनुवाद किया। गीतांजलि का हिन्दी में यह प्रथम रूपान्तरण कहा जा सकता है। गुजराती के लेखक नान्हालाल की रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद किया जिनमें जय जयंत प्रमुख है। माघप्रणीत शिशुपाल वध महाकाव्य का हिन्दी में अनुवाद इसी नाम से किया। झालावाड़ नरेश श्री राजेन्द्र सिंह सुधाकर इन्हीं की प्रेरणा से हिन्दी-लेखन में प्रवृत्त हुए। श्री राजेन्द्रसिंह उर्दू में 'मखमूर' नाम से काव्य-रचना करते थे। 'नवरत्न' जी से प्रभावित होकर आपने मधुशाला, मधुबाला, सुधाकर काव्य-कला तथा शंकर-शतक की रचना की। महारानी श्रीमती हीराकुँवरि देवी गुजराती साहित्य की मर्मज्ञा थीं। महारानी की प्रेरणा से नवरत्न जी ने गुजराती रचनाओं को हिन्दी में अनूदित करने का काम शुरू किया। इससे प्रभावित होकर महाराज राजेन्द्रसिंह ने भी गुजराती के प्रतिष्ठित कवि कलापी की रचनाओं का हिन्दी रूपान्तरण प्रस्तुत किया। मध्यभारत साहित्य समिति ने गीतांजलि के अनुवाद पर एक हजार रुपये का पुरस्कार देकर पण्डित जी को सम्मानित किया था।

पण्डित जी की राई का पर्वत, प्रेमकुंज, युग पलटा, महा सुदर्शन, हिन्दी माघ, उषा, चित्रांगदा, भीष्म प्रतिज्ञा, बागबान, फलसंचय, गुरु महिमा, आरोग्य-दिग्दर्शन, सरस्वती यश, सुकन्या, सती सावित्री, ऋतु विनोद, मातृ वन्दना, शुद्धाद्वैत, सिद्धान्त रहस्य, रत्न करंड, अर्थशास्त्र, व्यापार शिक्षा, प्रमुख रचनाएँ हैं। पण्डित जी नाटक-लेखक होने के साथ-साथ कुशल निर्देशक और सफल अभिनेता भी थे। १९२१ में झालावाड़ में ओपेरा शैली की अंडाकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाट्यशाला उनकी अपूर्व सूझ-बूझ का परिणाम है। 'विद्या भास्कर' नामक पत्र का सम्पादन भी आपने किया। आप एक ओर 'संस्कृत चन्द्रिका' तथा 'संस्कृत रत्नाकर' जैसे पत्रों में संस्कृत में लेख लिखा करते थे तो दूसरी ओर काव्य सुधाधर, सरस्वती, मर्यादा, सुधा, माधुरी तथा श्री वेंकटेश्वर पत्रों में हिन्दी में लिखा करते थे। हिन्दी प्रचार के लिए कोटा में भारतेन्दु समिति, झालरा पाटन में राजपूताना हिन्दी साहित्य सभा तथा इन्दौर में मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति की आपने स्थापना कराई। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने साहित्यवाचस्पति तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय ने प्राच्यविद्यामहार्णव की उपाधि से पण्डित जी को विभूषित कर उनके अगाध ज्ञान के प्रति श्रद्धा व्यक्त की। १९३१ में उनकी नेत्रज्योति चली गई। उनकी पत्नी 'रत्न ज्योत्स्ना' लगभग ३० वर्ष तक पण्डित जी से डिक्टेशन लेकर रचनाएँ लिखतीं और प्रकाशनार्थ भेजती रहीं। ३० जून १९६१ में झालरा पाटन में ही पण्डित जी का देहावसान हुआ।

सामन्ती समाज में रहते हुए भी आप राष्ट्रीय भावनाओं तथा समाज-सुधार की चेतना से आकंठ अनुप्राणित रहे। झालरा पाटन के द्वारिकाधीश मन्दिर में १९४२ में हरिजनों के प्रवेश का समर्थन आपने किया तथा झालावाड़ नरेश महाराणा राजेन्द्रसिंह जी, श्रीमती रामेश्वरी नेहरू के साथ हरिजन-बन्धुओं को लेकर दर्शनार्थ स्वयं गए फिर तो रियासत के सभी सार्वजनिक स्थान हरिजनों के लिए खोल दिए गए। राजर्षि टंडन, महामना मालवीय तथा कन्हैयालाल मुंशी से उनके घनिष्ट सम्बन्ध थे। पण्डित जी भाषण बड़े प्रभावशाली ढंग से करते थे। काशी के विद्वत्समाज ने इन्हें 'नवरत्न', भारतधर्म महामण्डल ने 'महोपदेशक', चतुः सम्प्रदाय वैष्णव महासभा ने 'व्याख्यान भास्कर' की उपाधि इनकी वाग्मिता से प्रभावित होकर ही दी।

द्विवेदीयुगीन कवियों में पण्डित जी ने हिन्दी, भारतीयता, राष्ट्रीय एकता तथा सामाजिक कुरीतियों के विरोध पर महत्वपूर्ण कविताएँ लिखीं। खड़ी बोली में घनाक्षरी तथा अतुकान्त रचनाएँ और वर्णिकछन्द उन्होंने लिखे। एक देशभक्तिपरक घनाक्षरी देखिए—

> मेरा देश, देश का मैं, देश मेरा-जीव प्रान,
> मेरा सनमान मेरे देश की बड़ाई में।
> जियूँगा स्वदेश हित, मरूँगा स्वदेश काज,
> देश के लिए न कभी करूँगा बुराई मैं।
> भीषण भयंकर प्रसंग में भी भूल के भी,
> भूलूँगा न देशहित राम की दुहाई मैं।
> जब लौं रहेगी साँस सर्वस भी लुटा दूँगा,
> ईश को भी झुका लूँगा देश की भलाई में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के प्रति उनकी इतनी निष्ठा थी कि १९१८ में बम्बई में आयोजित सभा में सभाध्यक्ष मालवीय जी से उन्होंने कहा था कि आप हिन्दू यूनिवर्सिटी को हिन्दी विश्वविद्यालय बना दें तो मैं वहाँ आऊँ। हिन्दी की आवश्यकता पर उन्होंने एक छन्द पण्डित रामनरेश त्रिपाठी को लिखकर भेजा था—

अंगरेजी, जरमन फ्रेंच ग्रीक लैटिन त्यों,
रसियन जपानी चीनी प्राकृत प्रमानी हो।
तामिल तैलंगी तुलू द्राविड़ी मराठी ब्राह्मी,
उड़िया बंगाली पाली गुजराती छानी हो।
जितनी अनार्य आर्य भाषा जग जाहिर हैं,
फारसी ऐराबी तुर्की सब मन आनी हो।
जनम वृथा है तो भी मेरे जान मानव को,
हिन्द में जनम पाके हिन्दी जो न जानी हो।।

आज चार वर्ष बाद उनके जन्म-शताब्दी वर्ष के मनाये जाने की घोषणा सुनकर आश्चर्य होता है। हम अपने पूर्वज साहित्यकारों को भुलाते जा रहे हैं। फिर भी कोटा, भरतपुर, झालावाड़, दिल्ली तथा जयपुर में शताब्दी-समारोहों के आयोजनों का समाचार सुनकर प्रसन्न होना स्वाभाविक है। देर से आए पर ठीक आए। आवश्यकता इस बात की है कि नवरत्न जी की रचनाओं का ग्रन्थावली के रूप में प्रकाशन हो अन्यथा ये आयोजन हवा में उड़कर रह जायेंगे।

इन शब्दों के साथ हिन्दी-दिवस पर प्रकाशित यह अंक सहृदय पाठकों के हाथों में सादर समर्पित है।

—विष्णुदत्त राकेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक वन्दना

ॐ यतो यत: समीहसे, ततो नो अभय कुरु
शं न: कुरु प्रजाभ्यो–अभयं न: पशुभ्य: । यजु० ३६/२२

हिन्दी अर्थ—हे परमात्मन् ! आप जिधर से चाहते हो, उधर से हमें निर्भय करो । हमारी संतानों को सुख दो । हमारे पशुओं को निर्भय करो ।

इस मंत्र में निर्भय होने के लिए प्रार्थना की गई है । साहस, मनोबल और शुभ-संकल्प का उदय निर्भय होने के कारण ही हो सकता है । भय के मूल में अनिष्ट की आशंका रहती है और अनिष्ट पाप की भावना का परिणाम है । पाप की भावना से मुक्ति पाये बिना निर्भय नहीं हुआ जा सकता । आस्तिकता से आत्मबल की वृद्धि होती है, पाप की भावना नष्ट होती है तथा सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलती है । प्रजा का अकल्याण और जीवहिंसा पाप के मुख्य रूप हैं । अत: मनुष्य से लेकर पशु तक समान भावना का प्रसार होना चाहिए । 'साईं के सब जीव हैं कीरी कुंजर दोइ' । प्राणिमात्र भयरहित होकर इस पृथ्वी पर विचरण करे, यही आदर्शसमाज का लक्ष्य होना चाहिए । आइए, हम मिलकर प्रार्थना करें ।

हे परमात्मन् आप जिधर से चाहें, निर्भय हमें करें ।
संततियों को मिले परम सुख, पशु निर्भय भू पर विचरें ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषाई क्रान्ति में महर्षि दयानन्द का योगदान

—डॉ० नरेश मिश्र
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,
रोहतक

स्वामी दयानन्द का जन्म उस समय हुआ जब देश गुलामी की जंजीर में जकड़ा जा चुका था। लम्बे समय की दासता में हम जीने का अधिकार भी खो चुके थे। पैरों में पड़ी हुई दासता की बेड़ी ने हमें पूरी तरह से पंगु बना दिया था। परतंत्रता के उस वातावरण में चारों तरफ अन्धकार ही अन्धकार फैला हुआ था। ऐसी विषम परिस्थिति, निराशा भरे वातावरण में आवश्यकता थी गिरतों को उठाने वाले की, दलितों को उठाकर गले लगाने वाले की तथा भटके राहियों को सन्मार्ग पर लाने वाले की। इस महाविभूति ने आर्य जगत में पदार्पण कर मात्र हमारा खोया हुआ मार्ग ही नहीं दिखाया वरन् हमारी संस्कृति, सभ्यता तथा भाषा को नवजीवन प्रदान किया। वर्तमान समय में भारत की अनगिनत समस्याओं में भाषा–समस्या एक विकराल समस्या है। भाषाई क्रांति में अनेक संस्थाओं तथा व्यक्तियों की महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ रही हैं। आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती का भाषाई क्रांति में योगदान एक विचारणीय विषय है।

भारतवर्ष पर मुसलमानों ने लगभग छः सौ वर्षों तक राज्य किया, जिसके कारण हिन्दी भाषा पर मुसलमानी प्रभाव अत्यन्त गहरा हो गया। इस काल के हिन्दी-साहित्य में अरबी, फारसी और तुर्की भाषा के शब्दों की बहुलता का यही मुख्य कारण है। हिन्दू धर्म की उदारता की भाँति हिन्दी भाषा ने भी खुले दिल से सभी विदेशी-भाषाओं के शब्दों का स्वागत किया। समय परिवर्तन के साथ मुसलमानी शासन का अवसान हुआ, किन्तु इसका लाभ हमें न मिल सका। मुसलमानों के बाद अंग्रेज़ हमारे शासक बन गये। "आये थे व्यापार करन को बन गये ठेकेदार।" वे हमारी भाषा पर सीधा प्रहार करते थे, क्योंकि उनका सिद्धान्त था— "किसी देश को नष्ट करना है तो उसकी भाषा को नष्ट कर दो, देश स्वतः ही नष्ट हो जायेगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतवर्ष में अंग्रेज़ी शासन की ओर से अंग्रेज़ी प्रचार-प्रसार के लिए सशक्त प्रयत्न किया जा रहा था, वहीं हिन्दी को घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। एक तरफ मुसलमानी प्रभाव से हिन्दी की गतिमयता पर गहरा प्रभाव पड़ा तो दूसरी तरफ यूरोपीय प्रभाव से हिन्दी बोझिल हो गयी। इस समय हिन्दी में उसके ही मूलाधार संस्कृत के आगत शब्दों की लगातार कम होती स्थिति अखरने लगी। सस्कृत-हिन्दी का निकट सम्बन्ध धुंधला होने लगा। संस्कृत के आगत तत्सम शब्दों में भारतीय संस्कृति तथा आदर्श भाव-वहन ही अपूर्व क्षमता होती है। विदेशी भाषा के आगत शब्दों के माध्यम से उक्त भावागम दुष्कर ही नहीं, असम्भव-सा है।

स्वामी दयानन्द के दिल में राष्ट्रीय भावना की अपूर्व लहर झूमती थी। हिन्दी, हिन्दुस्तान तथा हिन्दुस्तानवासियों की उन्नति के लिए स्वामी जी ने क्या नहीं किया। हिन्दी पर अरबी-फारसी के बाद अंग्रेज़ी के बढ़ते प्रभाव को देखकर उन्होंने संस्कृत के साथ हिन्दी के प्रचार-प्रसार का सतत प्रयत्न किया। इसी प्रक्रिया से हिन्दी का भाषाई रूप उन्नतिशील तथा परिमार्जित होता ही गया। तत्कालीन भाषाई क्रांति में महर्षि स्वामी दयानन्द का योगदान विचारणीय है।

युग और गतिशील समय की सच्ची पहचान रखने वाले स्वामी जी भारतवासियों की भावना को भी अपूर्वरूप से आदर देते थे। जनसामान्य की हिन्दी को अपना कर जैसा आकर्षक, भावात्मक तथा सरल भाषा-शैली का प्रयोग किया, वह इनकी अपनी कला थी। भाषा-शैली के मोहक प्रयोग से इनका भाषाई-प्रेम सुस्पष्ट हो जाता है।

(अ) भाषा—

मानवभावाभिव्यक्ति के साधन को भाषा की संज्ञा दी जाती है। मानव-जीवन के सरल तथा सहज विचारों से लेकर वेद के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा जटिल भावों को स्वामी जी ने अत्यन्त अनूठे ढंग से प्रस्तुत किया है। उन्होंने आध्यात्मिक विचारों को साहित्यिक तथा संस्कृतनिष्ठ भाषा में प्रस्तुत करने की परम्परा को नया रूप प्रदान किया। सरल भाषा में अर्थ की गम्भीरता स्वामी जी की अपनी विशेषता है। संस्कार-विधि के पृष्ठ २०७ पर श्लोकार्थ द्रष्टव्य है—

"परित्यजेदर्थकामौ यौ स्माता धर्म वर्जितो।
धर्मं चाप्यसुखोदकं लोकविकष्टमेव च ॥"

"जो धर्म से वर्जित धनादि पदार्थ और काम हों उनको सर्वथा शीघ्र छोड़ देवें और जो धर्माभास अर्थात् उत्तरकाल में दुखदायक कर्म हैं और जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगों को निन्दित कर्म में प्रवृत्त करने वाले कर्म हैं उनसे भी दूर रहें।" ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के पृष्ठ १२६ की पंक्ति इसी प्रकार की भाषा का प्रतिनिधित्व करती है—

"तस्यास्यपुरुषस्य मनसो मननशीलात्साम र्थ्याचन्द्रमा जात उत्पन्नोस्ति।"

"उस पुरुष के मनन अर्थात् ज्ञानस्वरूप सामर्थ्य से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ है।"

गुजरातीभाषी स्वामी जी ने संस्कृत के प्रकाण्ड-पण्डित होते हुए राष्ट्रीय-भावना से प्रेरित होकर आर्यभाषा (हिन्दी) को राष्ट्र-भाषा की कल्पना का आकर्षक मूर्त्तरूप प्रदान किया। हिन्दी भाषा के सरल रूप को अपना कर गुरुकुलों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी ही रखा।

१. भावानुकूल भाषा :

स्वामी जी ने सूक्ष्मातिसूक्ष्म और अपूर्व विस्तृत भावों को प्रकट करने के लिए उसके अनुसार भाषा का प्रयोग किया है। जीवन के क्रियाकलाप के विशेष दृष्टिकोण को समझाने के लिए हृदय तथा मन को छूने वाली भाषा का कितना सफल प्रयोग करते हैं? उदाहरणार्थ सत्यार्थ प्रकाश में अष्टमसमुल्लास, पृष्ठ १६१ पर कारणविवेचन संदर्भ की पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

"अरे भोले भाइयो! कुछ अपनी बुद्धि को काम में क्यों नहीं लाते? संसार में दो पदार्थ होते हैं, एक कारण—दूसरा कार्य। जो कारण है वह कार्य नहीं और जो कार्य है वह कारण नहीं।"

स्वामी दयानन्द की सभी रचनाओं में भाषा का यह विशिष्ट रूप प्रत्येक अनुच्छेद में देख सकते हैं। स्वामी जी द्वारा भाषा का ऐसा प्रयोग जन-मानस के अन्दर तथा हिन्दी भाषा के उत्थान के लिए किया गया है।

२. शब्द-चयन—

भाषा की लघुतम, स्वतंत्र तथा अर्थवान इकाई को शब्द की संज्ञा दी जाती है। भावाभिव्यक्ति के मूलाधार के कारण शब्द को ब्रह्म कहा गया है। स्वामी जी ने अपने उद्देश्य की पूर्ति तथा अपनी राष्ट्रीयभावना को जन-जन में आन्दोलित करने के लिए जनसामान्य में प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया। अपनी संस्कृति, सभ्यता तथा भाषा के साथ भारतीय आदर्शों की रक्षा के लिए अपनी रचना में तत्सम शब्दों का बहुल प्रयोग किया। तद्भव के साथ तत्सम शब्दों का प्रयोग मणि-कांचन-योग सिद्ध हुआ है। ईश्वर, उपासना, उत्पत्ति, काल,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जड़, जिह्वा, पुत्र, प्रलय, शब्द, शीतल तथा हस्त आदि तत्सम शब्दों के साथ किसान (कृषक), कुम्हार (कुम्भकार), घी (घृत), पत्तल (पत्र), पिया (पान), बनिया (वाणिक) तथा सोना (स्वर्ण) आदि तद्भव शब्दों का आकर्षक प्रयोग उनकी भाषा में आद्योपान्त देखा जा सकता है। तत्सम शब्दावली के प्रयोग के विषय में श्री भगवद्दत्त ने अपना विचार सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका के पृष्ठ १० पर प्रस्तुत किया है—

"ऋषि का जीवन प्राचीन आर्ष विद्या के संस्कारों से ओत-प्रोत था। अत: उनकी भाषा में संस्कृतशब्दरूपों की अपूर्व छाया मिलती है।"

स्वामी जी की भाषा में संस्कृत के कुछ विशिष्ट शब्दों का प्रयोग हुआ है। संस्कृत में "अथवा" के स्थान पर "वा" शब्द का प्रयोग होता है। उर्दू में भी इसी के निकटस्थ रूपों "व" और "या" शब्द के प्रयोग होते थे किन्तु स्वामी जी ने "वा" का ही प्रयोग किया है; यथा—

सत्यार्थ प्रकाश के एकादशसमुल्लास के पृष्ठ ३०२ पर— "मध्यम वह है जो कीर्ति वा स्वार्थ के लिए दान करें।"

स्वामी जी द्वारा शब्दों के शुद्ध प्रयोग पर विशेष बल दिया गया है। जैसे—सामान्य भाषा में यत्र-तत्र महत्त्व का महत्व कर दिया जाता है, किन्तु स्वामी जी शब्द के मूल तथा शुद्ध रूप को ही अपनाते हैं।

तत्सम तथा तद्भव शब्दों के बहुल प्रयोग के आधार पर यह नहीं कह सकते कि स्वामी जी के मन में किसी भाषा या उसके शब्दों के प्रति उपेक्षा या हेय भाव था। जो शब्द बहुप्रचलन में थे, उनकी भाषा में ऐसे शब्दों का बहुल प्रयोग मिलता है। उर्दू भाषा के प्रयुक्त कुछ प्रमुख शब्द निम्नलिखित हैं—

१—आदमी–उदा. "एक दूसरा **आदमी** उसके पीछे..................बन ठन गए।" सत्यार्थ प्रकाश, पृ० ३२६।

२—केवल–उदा. "जड़ पदार्थों को प्रत्यक्ष कराके **केवल** उनसे..............है।" ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ३५३।

३—जगह–उदा. "प्रथम, मध्यम और उत्तम अपनी-अपनी **जगह** होते हैं।" ऋग्वेद०, पृ० ३५३।

४—जिमीदार–उदा. "गदडे का भूमिया (**जिमिदार**) था।" सत्यार्थ प्रकाश, पृ० ३२६।

५—बराबर–उदा. "वे **बराबर** वेदों के सब प्रयोगों में लगता है।" ऋग्वेद० पृ० ३५२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६—मालूम-उदा. "**मालूम** होता है कि उनको..................होगा।" ऋग्वेद०, पृ० १६।

७—मुसलमान-उदा. "वैसे ही **मुसलमान** सातवें असमान...............मानते हैं।" सत्यार्थ०, पृ० २१४।

८—साथी-उदा. "न युद्ध करते हुओं को..............न **शत्रु** के साथी।" सत्यार्थ०, पृ० १२८।

९—हजार-उदा. "इन चारों युगों के तितालीस लाख बीस **हजार** वर्ष होते हैं।" ऋग्वेद०, पृ० २३।

स्वामी दयानन्द की दृष्टि में अंग्रेज़ी तथा अंग्रेज़ी की दासता का भाव अत्यन्त खटकता रहा, अतः अंग्रेज़ी के शब्दों के प्रयोग से यथासम्भव बचते रहे हैं। कुछ एक शब्द विवशतावश आ गए हैं। यह विवशता थी, जनसामान्य में उनका बहुप्रचलन। स्वामी जी की भाषा में प्रयुक्त कुछ-एक शब्द द्रष्टव्य हैं—

अंग्रेज़ी-जर्मनी–उदा. "जो-जो इन नवीन भाष्यों के अनुसार अंग्रेज़ी जर्मनी.........बने हैं।" ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ० ३२२।

लालटेन–उदा. "लालटेन से कोठरी के अन्दर उजाला किया।" सत्यार्थ प्रकाश, पृ० ३२६।

स्वामी जी ने भावाभिव्यक्ति के लिए अनुकरणात्मक तथा प्रतिध्वन्यात्मक, युग्म आदि शब्दों के भी यत्र-तत्र प्रयोग किये हैं; जैसे—

१—जटा-जूट—उदा. "उस लिङ्ग में से एक जटा-जूट मूर्ति निकल आई।" सत्यार्थ प्रकाश, पृ० २९०।

२—झूठ-मूठ—उदा. "हम अधर्मी नहीं हैं, जो झूठ-मूठ लें।" सत्यार्थ प्रकाश, पृ० ३०९।

३—टट्टू— उदा. "आप पराधीन भटियारे के टट्टू।" सत्यार्थ प्रकाश, पृ० २७५।

४—भोला-भाला—उदा. "यह देश मूर्ख और भोला-भाला है"—सत्यार्थ प्रकाश, पृ० ३२६।

५—हल्ला-गुल्ला–उदा. "पुनः बड़ा हल्ला-गुल्ला हुआ।" सत्यार्थ प्रकाश, पृ० २५।

६—अण्ड-बण्ड—उदा. "ऐसी अण्ड-बण्ड कथा गाई।" सत्यार्थ प्रकाश, पृ० ४४९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी ने नये शब्दों के भी प्रयोग किये हैं। उक्त शब्दों के भाव-स्पष्टता के लिए उनके साथ पर्याय रूप भी देते हैं, यथा—

भूमिया—उदा. "गदडे का भूमिया (जिमिदार) था।" सत्यार्थ प्रकाश, पृ० ३२६।

३. प्रतीक योजना—

साहित्य में भावाभिव्यक्ति के लिए प्रतीक योजना का आधार लिया जाता है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने प्रतीक योजना के विषय में अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा—

"जब लेखक अपनी भावना और भाषा को समानान्तर नहीं पाता है तो वह ऐसी कलात्मक युक्ति की खोज करता है जो उसकी अनुभूति को सफलतापूर्वक व्यक्त कर चिरस्थायी बना सके। प्रतीकों की भाषा एक ऐसी ही युक्ति है जिसे कुशल लेखक अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति को व्यापक एवं पूर्ण बनाने के लिए व्यक्त करता है।"

स्वामी दयानन्द के साहित्य में सर्वत्र प्रतीकों का कोई न कोई रूप मिलता है। उन प्रतीकों के माध्यम से सूक्ष्म भावों को प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किये हैं; यथा—

१. **आर्य** [सज्जनता का प्रतीक] उदा. "इसलिए मनुष्यों के योग्य है कि सत्य, धर्म और आर्य अर्थात् उत्तम पुरुषों के आचरणों और भीतर-बाहर की पवित्रता में सदा रमण करें।" संस्कारविधि, पृ० २०६-२०७।

२. **अग्नि** [स्वप्रकाशस्वरूप] उदा. "हे [अग्ने] स्वप्रकाशस्वरूप............पाप-कर्म को दूर रखिए।" संस्कारविधि, पृ० २४४।

३. **आकाश** [अति विस्तृत या असीम] उदा. "सबसे श्रेष्ठ आकाशवत्, व्यापक, सबमें रहने वाला परमेश्वर है।" ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृ०, ३१८।

४. दीमक [सतत निर्माणकार्यरत] उदा. "जैसे दीमक धीरे-धीरे बड़े भारी घर को भी बना लेती है............।" संस्कारविधि, पृ० २०७।

इस प्रकार स्वामी जी के साहित्य में विभिन्न प्रकार के प्रतीकों का आकर्षक प्रयोग किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. मुहावरे-कहावतें—

भाषा-अलंकरणों में मुहावरे तथा कहावतों का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। इनके प्रयोग से सूक्ष्म-भावों को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया जाता है तथा भावाभिव्यक्ति में सरलता होती है। इनके प्रयोग से, जहाँ भाषा का आन्तरिक पक्ष निखरता है, वहीं बाह्यरूप भी सँवरता है। स्वामी जी ने यत्र-तत्र सहज-रूप में मुहावरों तथा कहावतों के प्रयोग किये हैं—

१. कुम्हार का गधा— उदा० "कुम्हार के गधे के समान शत्रुओं के वश में होकर अनेक विध दुःख पाते हैं।" सत्यार्थ प्रकाश, पृ० २७५।

२. भठियारे का टट्टू— उदा. "आप पराधीन भठियारे के टट्टू...... दुःख पाते हैं।" सत्यार्थ प्रकाश, पृ० २७५।

३. मुर्दे जिलाना— उदा. "ईसा को मुर्दे जिलाने आदि का काम-कर्त्ता मान लेवें ?" सत्यार्थ प्रकाश, पृ० ४४७।

४. संतों की गति— उदा. "संतों की गति अपार है।" सत्यार्थ प्रकाश, पृ० ३४४।

१. सेवा से मेवा मिलना— उदा. "तन, मन, धन से सेवा करो, क्योंकि सेवा से मेवा मिलता है।" सत्यार्थ प्रकाश, पृ० ३४४।

६. हिये की आँख फूटना— उदा. "किसकी हिये की आँख फूट गई है।" सत्यार्थ प्रकाश, पृ० ४४७।

५. सहज भाषा

सहजता मानव की अनूठी विशेषता है, जिसके कारण इसे मानव की परम निधि कह सकते हैं। महर्षि दयानन्द स्वभाव से अत्यन्त गम्भीर व्यक्ति थे। अपने विचार दूसरे के समक्ष रखने के लिए स्वामी जी सहज भाषा का प्रयोग करते थे। भाषा की सहजता के कारण प्रत्येक व्यक्ति उनके विचार सुनने के लिए उत्सुक रहता था। जो भी व्यक्ति उनका विचार सुनता वह उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था; उदाहरणार्थ—

"कुछ भी नहीं। ये अन्धे लोग भेड़ के तुल्य एक के पीछे दूसरे चलते हैं, कूप-खाड़े में गिरते हैं, हट नहीं सकते।" सत्यार्थ प्रकाश, पृ० २७८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य उदाहरण—

"जो दान लेना है वह नीचकर्म है, किन्तु पढ़ाके और यज्ञ कराके जीविका करनी उत्तम है।" संस्कारविधि, पृ. २००

(आ) शैली—

शैली के लिए 'रीति' शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। डॉ० विद्या-निवास मिश्र ने "रीति-विज्ञान" पुस्तक में अपना विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि शैली-विज्ञान के स्थान पर रीति-विज्ञान शब्द प्रयुक्त करना चाहिए, क्योंकि यह अधिक उपयोगी है। वि० कृष्णस्वामी अभ्यंगार ने विशेष दृष्टिकोण से इसे 'साहित्य शैली-विज्ञान' नाम दिया है—

"साहित्य की भाषा का विवेचन करने के कारण इसे 'साहित्यिक शैली-विज्ञान' कह सकते हैं।" शैली और शैली-विज्ञान, पृ. ८८

डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त ने शैली की परिभाषा करते हुए लिखा है—

"शैली का लेखक की आत्मिक या वैयक्तिक विशिष्टता, विचारधारा एवं उसकी विभिन्न प्रवृत्तियों से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। विचार या विषयवस्तु का माध्यम ही शैली है।" साहित्य की शैली (साहित्य विज्ञान-ग्रन्थमाला, खण्ड ३) पृ. २१५।

डॉ० कृष्णकुमार शर्मा शैली की परिभाषा करते हुए लिखते हैं— "शैली सन्दर्भों और भाषातात्त्विक रूपों को जोड़ने वाली कड़ी है।" शैली और शैली-विज्ञान, पृ० १२५

स्वामी दयानन्द ने भाव को प्रवाहमय रूप देने के लिए सहज भाषा के साथ माधुर्य, प्रसाद तथा ओज गुणसम्पन्नता को जिस प्रकार से अपनाया है वह स्वामी जी की अपनी विशिष्टता है। इन गुणों में भी शैली-विज्ञान के तत्त्व समाहित होते हैं।

दयानन्द सरस्वतीरचित साहित्य का विवेचन करने से उसकी निम्न-लिखित विशिष्टताएँ सामने आ जाती हैं।

१. चयन—

जब कोई साहित्यकार एकाधिक ध्वनि-शब्द आदि में से किसी एक का बहुल प्रयोग करता है, तो उसे चयन की संज्ञा दी जाती है। स्वामी दयानन्द व्याव-हारिक पक्ष को ध्यान में रखकर ध्वनि-शब्द आदि का चयन करते रहे हैं। भाषाई क्रांति की प्रबल भावना के कारण उन्होंने तत्सम तथा तद्भव शब्दों को अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनाया है। यथा 'पश्चात्' तथा 'बाद' में से 'पश्चात्', 'मनुष्य' तथा 'आदमी' में से 'मनुष्य', 'वा' और 'या' में से 'वा', 'क्षमा' और 'माफ' में से 'क्षमा' शब्द का चयन किया है। उनका सारा साहित्य ऐसे प्रयोगों से भरा है। उन्होंने चयनपद्धति में सरलता तथा प्रचलनभाव को भी विशेष महत्त्व दिया है, यही कारण है कि उनकी सरल तथा व्यावहारिक शैली में गूढ़ तथ्य भी सहजरूप से स्पष्ट हो गये हैं। शब्दों के साथ पदों का चयन तथा भावात्मक जोड़ के लिए उनका समायोजन भी अत्यन्त अनूठा है। एक वाक्य के पश्चात् दूसरे वाक्य तथा एक अनुच्छेद के पश्चात् दूसरे अनुच्छेद के चयन भी अपने आदर्श को बनाये हुए दिखाई पड़ते हैं। इससे भाव के प्रवाह में प्रबलता दिखाई पड़ती है।

२. विचलन—

भाषा के मानकरूप से भिन्न प्रयोग को विचलन की संज्ञा दी जाती है। प्रत्येक साहित्यकार के साहित्य में समय, परिस्थिति, क्षेत्रीयता, विशेष आकर्षण, विशिष्टता, अज्ञानता में से किसी न किसी के प्रभाव से विचलन का रूप अवश्य मिल जाता है। स्वामी दयानन्द का भाषाई क्रांति में अपूर्व योगदान रहा है। उनके समय में हिन्दी–अंग्रेज़ी का ही संघर्ष नहीं था, वरन् हिन्दी हिन्दुस्तानी का भी संघर्ष चल रहा था। स्वामी दयानन्द भाषाशुद्धता पर पूरा ध्यान दे रहे थे, क्योंकि उनका लक्ष्य हिन्दी को सम्माननीय स्थान दिलाना था, जिसके कारण उनके साहित्य में यत्र-तत्र विचलन के रूप देख सकते हैं।

भाषा के भावान्दोलन में स्वामी जी तेजी से आगे बढ़े। गुजरातीभाषी स्वामी जी संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। इस कारण गुजराती अथवा संस्कृत के नियम हिन्दी में आ गये हैं; यथा—संस्कृत में 'सन्तान' शब्द पुल्लिग माना जाता है, किन्तु हिन्दी में स्त्रीलिंग। स्वामी जी ने वही रूप प्रयोग किया, यथा—

"वह सन्तान बड़ा भाग्यशाली।" सत्यार्थप्रकाश, पृ० २५।
"सन्तान जितने भी होंगे वे भी सब उत्तम होंगे।"

सत्यार्थ प्रकाश, पृ० २६

'आयु' शब्द भी उनके द्वारा संस्कृत के अनुसार पुल्लिग रूप में ही प्रयुक्त किया गया है, जबकि हिन्दी में स्त्रीलिंग रूप है; यथा—

"जो ऐसा नहीं करते **उनके आयु** आदि चार नहीं बढ़ते।"

सत्यार्थ प्रकाश, पृ० ४४

'मेवा' शब्द हिन्दी में पुल्लिग के रूप में प्रयुक्त होता है, किन्तु सत्यार्थ प्रकाश में स्त्रीलिंग के रूप में प्रयुक्त है; यथा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सेवा से **मेवा मिलती है**।" सत्यार्थ प्रकाश, पृ० ३४४।

भावप्रबलता लाने के संदर्भ में भी व्याकरणिक विचलन आ गया है। जन-सामान्य के हृदय में बात बैठ जाये, इस उद्देश्य से हुआ यह विचलन—

"**सभों** ने उससे कहा वह क्रूश पर चढ़ावा जावे।" सत्यार्थ प्रकाश, पृ० ४४

स्वामी जी ने यत्र-तत्र विशिष्ट सन्दर्भ में भावाभिव्यक्ति हेतु कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, जो विचलन की श्रेणी में आ जाते हैं। उन्होंने चरित्र को विशेष महत्त्व दिया, जिसके कारण ही 'चरित्रहीन' के स्थान पर 'चरित्ररहित' शब्द प्रयोग किया है। माना किसी भी व्यक्ति का चरित्र अच्छे या बुरे से अलग हो नहीं सकता, किन्तु उन्होंने दुश्चरित्र भाव को विशेष बल देने के लिए ऐसा किया होगा। उदाहरण द्रष्टव्य है—

"श्रावक लोग जैनमत के साधुओं को चरित्ररहित, भ्रष्टाचारी देखें तो भी उनकी सेवा करनी चाहिए।" सत्यार्थ प्रकाश, पृ० ३९२

इस प्रकार विचलन के सन्दर्भ में स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि स्वामी जी ने विशेष समय को विशेष परिस्थिति, में विशेष भाव-अभिव्यक्ति के लिए यह रूप अपनाया है, जिसके कारण ये विचलन हुआ है।

३. समानान्तरता—

जब किसी साहित्यकार के द्वारा किसी ध्वनि, शब्द, पद या वाक्य का एकाधिक प्रयोग किया जाता है तो उसे समानान्तरता की संज्ञा दी जाती है। समानान्तरता का सहजरूप भाव को गहराई प्रदान करते हुए अभिव्यक्ति में भी परम सहायक सिद्ध होता है। महर्षि दयानन्द के साहित्य की यह एक अनूठी विशेषता है, उनके साहित्य में समानान्तरता के कई रूप मिलते हैं।

क. ध्वनि-समानान्तरता—

"जो तुम बैठे-बैठे व्यर्थ माल मारते हो तो विद्याभ्यास कर गृहस्थों के लड़के-लड़कियों को पढाओ।" सत्यार्थ प्रकाश, पृ० ३३९।

ख. शब्द-समानान्तरता—

स्वामी दयानन्द के साहित्य में शब्द-समानान्तरता का बहुल प्रयोग मिलता है। इसे इनके साहित्य की विशिष्ट साहित्यिक धरोहर कह सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलग-अलग-	ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका,	पृ० ९०
उस-उस	वही	पृ० ९०
कौन-कौन	वही	पृ० ३४९
जिस-जिस	वही	पृ० १०८
जो-जो	वही	पृ० ९०
दूर-दूर	वही	पृ० १५३
बड़ी-बड़ी	वही	पृ० २८४
सिमट-सिमट	वही	पृ० २८४
कहीं-कहीं	सत्यार्थ प्रकाश	पृ० ३१४
गुप्त-गुप्त	वही	पृ० ९७
ठीक-ठीक	वही	पृ० ४४९
दश-दश	वही	पृ० ९७
सच-सच	वही	पृ० ४४७
पीछे-पीछे	संस्कार विधि	पृ० २०५

ग. पद-समानान्तरता—

रोचकता बनाते हुए प्रवाहमयता लाने हेतु पद-समानान्तरता लाने का प्रयत्न किया जाता है। दयानन्द सरस्वती को इस दृष्टिकोण से भी अच्छी सफलता मिली है; यथा—

"धर्माचरण करने से.........हो जाते हैं.........यथावत् प्राप्त होते हैं। ....अधिकारों को प्राप्त होते हैं।" ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ० ३१३।

घ. वाक्य-समानान्तरता—

पद-समानान्तरता की भाँति ही वाक्य-समानान्तरता की प्रभावोत्पाद विशेषता है। स्वामी जी इस प्रकार की शैली के प्रयोग में भी सफल हैं। उदाहरण द्रष्टव्य है—

"सब तीर्थंकरों को नमस्कार। जैनमत के सब सिद्धों को नमस्कार। जैनमत के सब आचार्यों को नमस्कार। जैनमत के सब उपाध्यायों को नमस्कार।" सत्यार्थ प्रकाश, पृ० ३९२।

४. युग्म-शब्द—

सहज तथा स्वाभाविक रूप में भावाभिव्यक्ति के लिए विभिन्न वर्गों के शब्द-युग्मों का प्रयोग किया जाता है। दयानन्द के साहित्य में ऐसे शब्दों का बहुल प्रयोग सहज भावाभिव्यक्ति में वरदानस्वरूप है। उनके साहित्य में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयुक्त कुछ प्रमुख युग्म-शब्द निम्नलिखित हैं—

इधर–उधर	सत्यार्थ प्रकाश	पृ० ४४६
खाना–पीना	वही	पृ० २३६
चुप–चाप	वही	पृ० ३४४
झूठ–मूठ	वही	पृ० ४४४
दूध–घी	वही	पृ० २३३
नौकर–चाकर	वही	पृ० ५२५
वाद–विवाद	वही	पृ० २३७
सत्य–असत्य	वही	पृ० २३६
सोना–चाँदी	वही	पृ० ३१५
स्त्री–पुरुष	वही	पृ० ९६
कला–कौशल	ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	पृ० १५३
मल–मूत्र	वही	पृ० १८२
सूर्य–चन्द्र	संस्कार विधि	पृ० १७

५. शब्द-संघटना—

शैली के सन्दर्भ में सामासिकरूप का विवेचन भी आवश्यक है। ऋषि दयानन्द के साहित्य में दो पदों के सामासिकरूप पर्याप्त संख्या में मिलते हैं—

अपना–अपना	ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	पृ० १४२
जिस–जिस	वही	पृ० २४५
जो–जो	वही	पृ० २०४
वहाँ–वहाँ	ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	पृ० ३२२
उन–उन	संस्कार विधि	पृ० १२४
एक–एक	वही	पृ० १९६
पृथक–पृथक	वही	पृ० १९०
बड़े–बड़े	वही	पृ० १७२
एक–एक	सत्यार्थ प्रकाश	पृ० १३२
खाने–पीने	वही	पृ० ३५२
तनिक–सी	वही	पृ० ५०७
पाप–पुण्य	वही	पृ० ३५२
बड़े–बड़े	वही	पृ० १३२
बाहर–भीतर	वही	पृ० २५९
भिन्न–भिन्न	वही	पृ० १३२
माता–पिता	वही	पृ० २५२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम–राम	सत्यार्थ प्रकाश	पृ० ३१८
लड़ते–भिड़ते	वही	पृ० ३७०

इस प्रकार स्वामी दयानन्द की भाषा-शैली के अध्ययन से यह तथ्य सुस्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने समय, परिस्थिति, जनमानस की भावना तथा राष्ट्रीय विचारधारा को ध्यान में रखकर जिस सहज, स्वाभाविक भाषा के रूप को अपनाया है, वह राष्ट्रभाषा के लिए वरदान सिद्ध हुआ। महर्षि दयानन्द की सौम्यता तथा जीवन की शैली उनके साहित्य में चाँदनी-सी शीतलता तथा भगवान भास्कर के तेजवान प्रकाश के अनुपम संगम के साथ उतरी है। विषम वातावरण में भी भावनात्मक संघर्ष करते हुए आर्य समाज की स्थापना कर समाज-सुधार जैसा महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उसी प्रकार भाषाई क्रान्ति में स्वामी जी के योगदान की जितनी भी प्रशंसा की जाये, वह कम होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन भारत की चौंसठ कलाएँ

राघवेन्द्र मनोहर
प्राध्यापक, इतिहास विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दौसा

प्राचीन भारत में शिक्षा का क्षेत्र बहुत व्यापक था। पाठ्यक्रम ऐसा था कि उसमें प्रायः सभी विषयों का समावेश हो जाता था। शिक्षा का उद्देश्य यह माना गया कि उससे ज्ञान की वृद्धि हो, सदाचार में प्रवृत्ति हो और जीविकोपार्जन में सहायता मिले। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को ध्यान में रखकर ही शिक्षा का पाठ्यक्रम निश्चित किया गया था। इस प्रकार उस समय की शिक्षा का आदर्श उच्च और व्यावहारिक था।

शिक्षा में कलाओं की शिक्षा का अपना विशिष्ट स्थान था। कलाओं के सम्बन्ध में रामायण, महाभारत, पुराण आदि ग्रन्थों में विपुल सामग्री भरी पड़ी है। सर्वप्रथम वात्स्यायन के कामसूत्र में चौंसठ कलाओं का उल्लेख इस प्रकार हुआ है—

गायन, वाद्य, नृत्य, चित्रकला, छपाई, मांडना, पुष्पसज्जा, गन्धयुक्ति, फर्श सजाना, शय्या-सज्जा, तैरना, सामुद्रिक, विचित्र-वेशभूषा, द्वार-सज्जा, अभिनय, शरीर-प्रसाधन, शिरोवेष्टन, आभूषण, जादुई खेल, सौन्दर्य-प्रसाधन, श्रृंगार, हाथ की सफाई, पाकशास्त्र, सिलाई, बुनाई, बढ़ईगिरी, वास्तुकला, खिलौने बनाना, रत्नकला, धातुकर्म, जड़ाई, बागवानी, जानवर लड़ाना, मूकाभिनय, अनुवाद, समूहगान, मालिश, पक्षी पालना, केशसज्जा, गुप्त-भाषण, गुप्त-लेखन, कहावतें, कशीदाकारी, मशीन चलाना, कठिन बात याद करना, वाक-चातुर्य, पद्यनिर्माण, पर्यायकला, छन्दोज्ञान, कपट, सुई का काम, चौपड़, पान चबाना, पासे के खेल, बाल-मनोविनोद क्रीड़ायें तथा व्यायाम।

कामसूत्र के टीकाकार जयमंगल ने किंचित संशोधन के साथ चौंसठ कलाओं का जिक्र किया है—

(१) गीत (२) वाद्य (३) नृत्य (४) आलेख्य (५) विशेषकच्छेद्य (तिलक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगाने के लिए कागज काटकर आकृति बनाना) (६) तण्डुल-कुसुम बलिविकार (देवपूजन के लिए रंगे हुए चावल, जौ तथा फूलों को विविध प्रकार से सजाना) (७) पुष्पास्तरण (८) दशनवसनाङ्गराग (दांत, वस्त्र तथा शरीर के अन्य भागों को रंगना) (९) मणिभूमिकाकर्म (घर के फर्श की सफाई) (१०) शयनरचन (शय्या लगाना) (११) जलतरंग (१२) उदकाघात (हाथों या पिचकारी से जल की चोट मारना) (१३) चित्राश्व योगाः (शत्रु को निर्बल करने वाली औषधि तैयार करना) (१४) माल्यग्रथन विकल्प (माला गूंथना) (१५) शेखरकापीड़-योजन (स्त्रियों की चोटी पर अलंकारों के रूप में पुष्प गूंथना) (१६) नेपथ्य-प्रयोग (शरीर को वस्त्राभूषणों से संवारना) (१७) कर्णपत्रभङ्ग (हाथी-दाँत, सीप आदि के आभूषण बनाना) (१८) गन्धयुक्ति (सुगन्धित धूप बनाना) (१९) भूषणयोजन (२०) इन्द्रजाल (जादू के खेल) (२१) कौचुमारयोग (वीर्य बढ़ाने वाली औषधि बनाना) (२२) हस्तलाघव (हाथ के काम में तत्परता) (२३) पाकविद्या (२४) विभिन्न प्रकार के आसव बनाना (२५) सूचीवान कर्म (सुई का काम) (२६) सूत्रक्रीड़ा (कठपुतली आदि खेल) (२७) वीणाडमरुकवाद्य (२८) प्रहेलिका (पहेलियाँ बूझना) (२९) प्रतिमाला (कविता पढ़ने की रोचक विधि) (३०) दुर्वाचकयोग (कठिन उच्चारण वाले श्लोक) (३१) पुस्तकवाचन (३२) नाटकाख्यायिका-दर्शन (३३) काव्य (३४) पट्टिकावेत्रवानविकल्प (पीढ़ा, आसन आदि वस्तुयें बनाना) (३५) तक्षकर्म (३६) तक्षण (३७) वास्तुविद्या (३८) रत्नपरीक्षा (३९) धातुवाद (४०) मणिरागाकर ज्ञान (मणि आदि रंगना) (४१) वृक्षायुर्वेद योग (४२) मुर्गे, तीतर, बटेर लड़ाना (४३) शुक सारिका प्रलापन (४४) केशमर्दन कौशल (४५) अक्षरमुष्टि (गोपनीय संवाद) (४६) म्लेच्छित विकल्प (गूढ़ सांकेतिक अर्थ) (४७) देशभाषा विज्ञान (४८) पुष्पशकटिका (४९) शकुन जानना (५०) यन्त्र मातृका (कलपुर्जे बनाना) (५०) धारण मातृका (सुनी हुई बातों को याद रखना) (५२) संपाठ्य (५३) मानसी काव्य क्रिया (५४) अभिधानकोष (५५) छन्दोज्ञान (५६) क्रियाकल्प (५७) छलितक योग (रूप और बोली छिपाना) (५८) वस्त्रगोपन (५९) द्यूतविशेष (६०) पासों का खेल (६१) बाल क्रीडनक (६२) वैनयिकी ज्ञान (विनय व शिष्टाचार) (६३) शस्त्र विद्या (६४) व्यायाम।

इन कलाओं का उल्लेख थोड़े बहुत संशोधन के साथ अन्यत्र भी मिलता है। शुक्राचार्य के 'नीतिसार' में चौथे अध्याय के अन्तर्गत इन कलाओं का विवरण देते हुए कहा गया है—"कलायें अनन्त हैं, उन सबके नाम भी नहीं गिनाये जा सकते, लेकिन उनमें चौंसठ कलायें मुख्य हैं।" यहाँ महत्व संख्या का नहीं बल्कि कला के विस्तृत क्षेत्र और उसके सृजनात्मक स्वरूप का है। इनमें सभी कुछ तो समाविष्ट था। यथा—

हावभाव के साथ गति अर्थात नृत्य, अनेक प्रकार के वाद्यों का निर्माण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और बजाने का ज्ञान, स्त्रियों और पुरुषों द्वारा सुचारू रूप से वस्त्र पहनना, समय और स्थिति के अनुसार वेश, शय्या व बिछौना सुन्दर रीति से बिछाना, पुष्पों को अनेक प्रकार से गूंथना, द्यूत आदि क्रीड़ाओं द्वारा मनोरंजन, विविध आसनों का ज्ञान, विविध प्रकार के आसव, मद्य निकालना, शल्यक्रिया द्वारा उपचार, अनेक प्रकार से अन्नों को पकाना, वृक्ष, लता आदि उगाना, धातुओं की भस्म तैयार करना, ईख से गुड़, खाँड, चीनी आदि बनाना, विभिन्न धातुओं के सम्मिश्रण का ज्ञान, लवण बनाने का ज्ञान, शस्त्र-संचालन में निपुणता, मल्लयुद्ध में प्रवीण होना, सारथ्य अर्थात रथ हाँकने का ज्ञान, विविध प्रकार से चित्रों का आलेखन, व्यूहरचना, तालाब-कूप-बावड़ी आदि बनाना, विभिन्न रंगों के वस्त्र रंगना, नौका, रथ आदि का निर्माण, रस्सी बनाने की जानकारी, रत्नों की पहचान, सुवर्ण, रजत आदि की शुद्धता की परख, चमड़े को मुलायम कर उपयोगी सामान तैयार करना, गाय-भैंस दुहने से लेकर दही जमाना, मथना, मक्खन निकालना तथा घी बनाने तक की सभी क्रियाओं का ज्ञान, कपड़ा सीना, तैरना, तिल-सरसों आदि से तेल निकालना, घर के बर्तन उचित रीति से मांजना, वस्त्रों की उचित धुलाई, पेड़ पर चढ़ना जानना, दूसरे की इच्छा के अनुसार सेवा करने का ज्ञान, खेती से सम्बन्धित कार्यों का ज्ञान, शिशुओं का संरक्षण व पोषण, बच्चों के खिलौने बनाने का ज्ञान, तत्परता से कार्य करने का ज्ञान, इत्यादि।

इस प्रकार चौंसठ कलाओं का क्षेत्र इतना व्यापक था कि जीवन का शायद ही कोई पक्ष उससे अछूता हो। स्वाभिमान और आत्मनिर्भरता इनके प्रमुख आधार थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द की दार्शनिक उद्भावना

—मनुदेव बन्धु, एम०ए० (संस्कृत, हिन्दी, वेद), व्याकरणाचार्य
प्राध्यापक, वेद-विभाग,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने जहाँ वेदों पर अपनी लेखनी उठाकर समाज को एक नई देन दी है, वहीं दूसरी ओर अपनी दार्शनिक मान्यताओं में नवीन उद्भावनाओं को जन्म देकर अपने आपको दार्शनिकों की पंक्ति में प्रथम स्थान पर पहुँचाया है। यहाँ उनकी नवीन उद्भावनाएँ प्रस्तुत हैं।

प्रत्यक्ष का लक्षण—

न्यायदर्शन में प्रत्यक्ष ज्ञान का लक्षण इस प्रकार किया है—"इन्द्रियार्थ-सन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारिव्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्"। अर्थात् इन्द्रिय और अर्थ के सन्निकर्ष से उत्पन्न ऐसा ज्ञान जो व्यपदेश्य न हो, व्यभिचारी न हो और निश्चयात्मक हो; प्रत्यक्ष कहलाता है।

परन्तु हम देखते हैं कि इन्द्रियों का अपने अर्थों से सन्निकर्ष रहने पर भी कभी ज्ञान होता है, कभी नहीं। कभी-कभी आँखें खुली होने पर भी निकटस्थ पदार्थ को देख नहीं पातीं, कान सुन नहीं पाते, त्वचा में सम्वेदन नहीं होता। वस्तुतः इन्द्रियविशेष का विषय होने से उसके द्वारा ग्राह्य होने और अर्थ के साथ उसका सन्निकर्ष होने पर भी उसका ज्ञान तभी होता है जब इन्द्रिय को मन का सहयोग प्राप्त होता है। जब आत्मा को किसी बाह्य विषय को जानने की इच्छा होती है तो वह अपनी इच्छा-शक्ति के बल पर मन के भीतर आलोच्य विषय की ओर प्रवहमान विचारतरंग को उत्पन्न करता है। यह विचारतरंग ज्ञान-तन्तुओं में से होती हुई उस इन्द्रिय से जा टकराती है जिसका वह विषय होता है। इस प्रकार बाह्य विषयों का इन्द्रियों से सम्बन्ध होने पर आत्मा को अभिलषित ज्ञान होता है। चेतनआत्मा ज्ञाता है। परन्तु शरीर के भीतर अवस्थित होने से उसकी गति बाहर नहीं। इसलिए उसे बाह्यजगत् से सम्बन्ध रखने के लिए सम्पर्क-अधिकारी की आवश्यकता पड़ती है। अभौतिक आत्मा को भौतिक शरीर से काम लेने के लिए किसी ऐसे सहायक तत्त्व की अपेक्षा है जिसमें दोनों के गुण हों। अर्थात् आत्मा की भान्ति अभौतिक और शरीर की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भान्ति भौतिक हो। तभी वह सफलतापूर्वक मध्यस्थ अथवा सम्पर्क-अधिकारी का काम कर सकता है। स्थूल भूतों का विकार न होने से मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार, इन चारों का संश्लिष्ट रूप इतना सूक्ष्म है कि वह देखा नहीं जा सकता। इसलिए वह सर्वथा अभौतिक है। परन्तु क्योंकि वह सूक्ष्म प्रकृति के अंशों से बना है, इसलिए वह भौतिक (प्रकृति का विकार) है। इस कारण वह आत्मा और शरीर के बीच माध्यम का काम कर सकता है। इसी मध्यस्थ अथवा सम्पर्क-अधिकारी को 'मन' कहते हैं। परन्तु मन भी शरीर से बाहर नहीं जा सकता। कार्यालय के भीतर बैठे-बैठे कार्य सम्पादन के लिए उसे भी ऐसे सहायकों की अपेक्षा है जो बहिर्मुखी होने के कारण बाह्य जगत् से सीधा सम्पर्क करने में समर्थ हों। इन्हीं को 'इन्द्रिय' कहते हैं। आत्मा से आदेश पाकर मन बाह्य कारणों, इन्द्रियों को अपने-अपने कार्य में प्रवृत्त करता है। इस प्रकार आत्मा का मन से, मन का इन्द्रिय से और इन्द्रिय का बाह्यविषय से सन्निकर्ष होने पर ही आत्मा को बाह्य जगत् का प्रत्यक्ष होता है। बाह्य जगत् के ज्ञान की इस प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए स्वामी दयानन्द ने 'सत्यार्थ प्रकाश' के तीसरे समुल्लास में प्रत्यक्ष लक्षण इस प्रकार किया है— "इन्द्रियों के साथ मन का और मन के साथ आत्मा के संयोग से जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे प्रत्यक्ष कहते हैं।"

स्वामी दयानन्द की इस उद्भावना के आधार पर हमारी दृष्टि में प्रत्यक्ष ज्ञान का लक्षण इस प्रकार है—"आत्मेन्द्रियमनोसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यम-व्यभिचारिव्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्।"

ईश्वर का लौकिक प्रत्यक्ष—

क्या ईश्वर का प्रत्यक्ष सम्भव है? अनुमानादि प्रमाणों तथा तर्क के आधार पर तो ईश्वर की सिद्धि सदा से होती आई है। किन्हीं-किन्हीं आचार्यों ने योगजप्रत्यक्ष द्वारा भी ईश्वर का प्रत्यक्ष स्वीकार किया है। इस विषय में महर्षि दयानन्द का कथन है— "जब जीवात्मा शुद्ध हो के परमात्मा का विचार करने में तत्पर होता है, उसको उसी समय दोनों प्रत्यक्ष होते हैं।" परमातमा के योगजप्रत्यक्ष का उल्लेख करते हुए महर्षि ने स्पष्ट कहा है— "शुद्धान्तःकरण विद्या और योगाभ्यास से पवित्र आत्मा परमात्मा को प्रत्यक्ष देखता है। जैसे बिना पढ़े विद्या के प्रयोजनों को प्राप्ति नहीं होती वैसे ही योगाभ्यास और विज्ञान के बिना परमात्मा भी नहीं दीख पड़ता।"

प्रत्यक्ष ज्ञान इन्द्रियार्थ-सन्निकर्ष से उत्पन्न होता है। परन्तु परमेश्वर तो इन्द्रियों का विषय नहीं है। पुनरपि महर्षि दयानन्द ने अपनी अद्भुत प्रतिभा द्वारा एक नवीन उद्भावना करके ईश्वर का लौकिक प्रत्यक्ष स्वीकार किया है। यह उनकी नवीन तथा विशिष्ट उद्भावना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुणों का प्रत्यक्ष—

महर्षि दयानन्द की एक विलक्षण तथा सर्वथा मौलिक उद्भावना यह है कि इन्द्रियों तथा मन से गुणों का प्रत्यक्ष होता है, गुणी का नहीं। न्यायदर्शन में कथित प्रत्यक्ष के लक्षण का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है—"अब विचारना चाहिए कि इन्द्रियों और मन से गुणों का प्रत्यक्ष होता है, गुणी का नहीं। जैसे त्वचा आदि इन्द्रियों से स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का ज्ञान होने से गुणी जो पृथिवी उसका आत्मायुक्त मन से प्रत्यक्ष किया जाता है वैसे इस प्रत्यक्ष सृष्टि में रचनाविशेष आदि कर्म और ज्ञानादि गुणों के प्रत्यक्ष होने से परमेश्वर का भी प्रत्यक्ष है।"

इन्द्रियों का विषय से सम्पर्क होने पर उसके सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न गुणों की अनुभूतियाँ होती हैं। प्रत्येक इन्द्रिय अपने नियत विषय का ग्रहण करती है। जल के प्रत्यक्ष में स्पर्श से शीतलता, जिह्वा से रस, चक्षुओं से रूप व तरलता आदि की पृथक्-पृथक् अनुभूतियाँ प्राप्त होती हैं। ये अनुभूतियाँ शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध आदि की सूचनामात्र हैं। मन में एकत्र इन सूचनाओं के आधार पर उनके संयोग–वियोग से बुद्धि उन अनुभूतियों के समुच्चय को एक नाम दे डालती है। इसी को विषय का प्रत्यक्ष कहते हैं। एक विशेष प्रकार के रूप, रंग, गन्ध, स्वादादि से युक्त पदार्थ को सन्तरा कहते हैं। कुछ भिन्न रूप, गन्ध, स्वाद वाले को मौसमी कहते हैं। हम कहते हैं—'मैंने सेब देखा'। एक अंग्रेज कहता है कि उसने 'एपल' देखा। वास्तव में न किसी ने सेब देखा, न एपल। उस पदार्थ-विशेष के मात्रगुणों का प्रत्यक्ष किया। इस पृष्ठभूमि में महर्षि के कथनानुसार ईश्वर का प्रत्यक्ष होने की वात सहज ही समझ में आ जाती है।

गुण अनिवार्यतः गुणी में रहते हैं। गुण-गुणी का समवाय सम्बन्ध होने से गुणों के साथ गुणी का प्रत्यक्ष मान लिया जाता है। मन के आशुगति होने से यह प्रक्रिया इतने वेग से होती है कि हम गुणी का ही प्रत्यक्ष होना अनुभव करते हैं। वास्तव में गुण निर्विकल्प प्रत्यक्ष द्वारा जाने जाते हैं और उसके पश्चात् सविकल्प प्रत्यक्ष द्वारा गुणी का बोध होता है। इस प्रकार लिङ्गों के द्वारा लिङ्गी परमेश्वर का प्रत्यक्ष होता है। यह बाह्येन्द्रियों के माध्यम से आत्मायुक्त आन्तरेन्द्रिय से ईश्वर का प्रत्यक्ष है।

ईश्वर के प्रत्यक्ष में एक अन्य तर्क दयानन्द प्रस्तुत करते हैं। जैनमत की आलोचना के सन्दर्भ में स्वामी जी लिखते हैं—"जो पापाचरणेच्छा के समय में भय, शंका और लज्जा उत्पन्न होती है, वह अन्तर्यामी परमात्मा की ओर से है। इससे भी परमात्मा का प्रत्यक्ष होता है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार की अनुभूति में परमात्मा का ही प्रत्यक्ष होता है। इस मान्यता का विशदीकरण स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश के सातवें समुल्लास में इस प्रकार किया है—

"जब आत्मा मन को और मन इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता या चोरी आदि बुरी या परोपकार आदि अच्छी बात करने का जिस क्षण में प्रारम्भ करता है, उसी क्षण में बुरे काम करने में भय, शंका और लज्जा तथा अच्छे कामों के करने में अभय और निःशंकता और आनन्दोत्साह उठता है, वह जीवात्मा की ओर से नहीं, किन्तु परमात्मा की ओर से है।"

परमेश्वर का यह प्रत्यक्ष बाह्येन्द्रियों के माध्यम से न होकर, सीधा आत्मा-युक्त मन से होता है। मन आन्तरेन्द्रिय है। जिसे साधारणतया अन्तश्चेतना, अन्तःप्रेरणा आदि नामों से अभिहित किया जाता है। ऋषि दयानन्द ने उसे ईश्वरीय प्रेरणा मानते हुए उसके द्वारा परमात्मा के मानसप्रत्यक्ष को स्वीकार किया है।

ईश्वरीय शिक्षा—

अपने से ज्येष्ठ और श्रेष्ठ प्रभु से जीव इतनी अपेक्षा तो कर ही सकता है कि वह उसे (जीव को) समय-समय पर कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्देश करता रहे। यह कार्य परमेश्वर निश्चितरूप से करता रहता है। हृदयस्थित भगवान् धर्म-अधर्म की ओर प्रवृत्ति-निवृत्ति के लिए प्रेरणा करता रहता है। जो आचरण किया जा रहा है, वह अच्छा है या बुरा; विवेचनापूर्वक इस तथ्य का स्पष्ट होना प्रेरणा का स्वरूप कहा जा सकता है। इस विषय में स्वामी दयानन्द का निश्चित मत है—

"जब इन्द्रियाँ अर्थों में, मन इन्द्रियों में और आत्मा मन के साथ संयुक्त होकर प्राणों को प्रेरणा करके अच्छे या बुरे कामों में लगाता है, तभी वह बहिर्मुख होता है। उसी समय भीतर से आनन्द, उत्साह, निर्भयता और बुरे कामों में भय, शंका, लज्जा उत्पन्न होती है। वह अन्तर्यामी परमात्मा की शिक्षा है।"

पुनः इस मान्यता को आगे बढ़ाते हुए स्वामी दयानन्द लिखते हैं—

"जिस कर्म में अपना आत्मा प्रसन्न रहे अर्थात् भय, शंका, लज्जा न हो उन कर्मों का करना उचित है। जब कोई मिथ्याभाषा, चोरी आदि की इच्छा करता है तभी उसके आत्मा में भय, शंका, लज्जा अवश्य उत्पन्न होती है। इसलिए वह कर्म करने योग्य नहीं।" अल्पज्ञ जीव का अन्तःकरण सर्वथा निर्दोष नहीं हो सकता। अतः इस प्रकार की प्रेरणा ईश्वर की ओर से ही हो सकती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इस प्रकार की शिक्षा जीवात्मा को प्रतिक्षण मिलती रहती है, चाहे वह उसे माने या न माने।

जीव कर्म करने में स्वतन्त्र होने के कारण कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुम् समर्थ है। वह परमेश्वर के हाथ की कठपुतली नहीं है। यदि जीव को परमेश्वर के इशारों पर ही नाचना पड़े तो समस्त पाप-पुण्य का फल भी उसी को भोगना पड़े। इसलिए प्रेरणामात्र करना उसका काम है। प्राणियों को शुभकर्मों में प्रवृत्त करने अथवा अशुभ कर्मों से निवृत्त करने में वह अपने बल का प्रयोग नहीं करता। इससे जीव का कर्म स्वातन्त्र्य निर्बाध बना रहता है और उसे यह शिकायत करने का अवसर भी नहीं रहता कि समय रहते मुझे किसी ने सावधान नहीं किया।

जगत् मिथ्या नहीं—

भारतीय दर्शन में अनेक सम्प्रदाय जगत् को मिथ्या मानते हैं। उन सभी मतों का निराकरण करते हुए दयानन्द ने जगत् को यथार्थ माना है। अपनी मान्यता की पुष्टि में उन्होंने मुख्यत: निम्नलिखित युक्तियाँ दी हैं—

१—वेदान्तियों के अनुसार यदि ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति मानी जाये तो भी ब्रह्म के सत्य होने से उसका कार्य–जगत् असत्य नहीं हो सकता।

२—स्वप्न के दृष्टान्त से भी जगत् को मिथ्या सिद्ध नहीं किया जा सकता, क्योंकि बिना देखे–सुने का स्वप्न नहीं आता। यही कारण है कि जन्मान्ध को स्वप्न में रूप का दर्शन नहीं होता। वस्तुत: जागृत में जो सत्य पदार्थ हैं उनके साक्षात् सम्बन्ध से प्रत्यक्षादि ज्ञान होने पर उनका संस्कार आत्मा में स्थिर रहता है। स्वप्न में उन्हीं को प्रत्यक्षरूप में देखा जाता है।

३—अवस्थान्तर को प्राप्त होने से किसी वस्तु का अभाव नहीं हो जाता। स्वप्न और सुषुप्ति में भी पदार्थों का अज्ञानमात्र होता है, अभाव नहीं।

४—यदि रज्जु-सर्पादिवत् जगत् को कल्पित माना जाय तो भी वह मिथ्या सिद्ध नहीं होता। कल्पना गुण है, गुण से द्रव्य की उत्पत्ति सम्भव नहीं।

५—यदि ब्रह्म से अतिरिक्त जीव की सत्ता नहीं तो कल्पना करने वाला भी ब्रह्म ही है। सत्यस्वरूप ब्रह्म की कल्पना असद्रूप है अथवा मिथ्या नहीं हो सकती।

जगत् दु:खात्मक नहीं—

प्राय: सभी मत-मतान्तरों के प्रवर्त्तकों ने संसार को दु:खमय माना है। इस प्रकार की धारणाओं का प्रतिवाद करते हुए स्वामी दयानन्द लिखते हैं—

"जो सब दु:ख ही हो और सुख कुछ भी न हो तो सुख की अपेक्षा के बिना दु:ख सिद्ध नहीं हो सकता। जैसे रात्रि की अपेक्षा से दिन और दिन की अपेक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से रात्रि होती है। इसलिए सब दुःख मानना ठीक नहीं। दुःख के अनुभव के बिना सुख कुछ भी नहीं हो सकता।"

वस्तुतः सुख-दुःख दोनों सापेक्ष हैं। एक के बिना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती। इस संसार में सुख भी है और दुःख भी। अर्थात् दुःखात्मक न होकर सुख-दुःखमय है। अनुभव यह भी बताता है कि दुःख की अपेक्षा संसार में सुख अधिक है। इस विषय में अपनी अनूठी सूझ-बूझ का परिचय देते हुए दयानन्द लिखते हैं—

"जीव सुख जान के प्रवृत्त और दुःख जान के निवृत्त होता है। जो सब संसार दुःखरूप होता तो उसमें किसी जीव की प्रवृत्ति न होनी चाहिए। परन्तु संसार में जीवों की प्रवृत्ति प्रत्यक्ष दीखती है। इसलिए सब संसार दुःखरूप नहीं हो सकता। इसमें सुख-दुःख दोनों हैं।"

मुक्ति से पुनरावृत्ति—

भारतीय चिन्तन के अनुसार मोक्ष प्राप्त करने के पश्चात् जीव पुनः जन्म-मरण के बन्धन में नहीं आता। सामान्यतः सभी विचारकों की यह धारणा रही है। महर्षि दयानन्द इससे सहमत नहीं हैं। उन्होंने लिखा है कि "ब्रह्मलोक में परान्तकालपर्यन्त मुक्ति के आनन्द को भोग कर जीव पुनः संसार में आते हैं।" मुक्ति से पुनरागमन नहीं होता; इस पक्ष में प्रस्तुत प्रमाणों की आलोचना करते हुए वे कहते हैं— "यह बात ठीक नहीं, क्योंकि वेद में इस बात का निषेध किया है। परमात्मा हमको मुक्ति में आनन्द भुगाकर पृथिवी में पुनः माता-पिता के सम्बन्ध में जन्म देकर माता-पिता का दर्शन कराता है।"

"इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः" इस सांख्यसूत्र को उद्धृत करके कहते हैं— "जैसे इस समय बन्धमुक्त जीव हैं वैसे ही सर्वदा रहते हैं, अत्यन्त विच्छेद बन्ध मुक्ति का कभी नहीं होता, किन्तु बन्ध और मुक्ति सदा नहीं रहती।" न्यायसूत्र के 'तदत्यन्त-विमोक्षोऽपवर्गः' इस सूत्र की व्याख्या करते हुए महर्षि दयानन्द जी कहते हैं कि 'अत्यन्त' शब्द का अर्थ केवल अत्यन्ताभाव ही नहीं होता अपितु अत्यधिक भी होता है। यहाँ 'अत्यन्त' शब्द का यही अर्थ जानना चाहिए। अपने इस मन्तव्य की पुष्टि में स्वामी दयानन्द जी का मुख्य तर्क यह है कि जिसके साधन अनित्य हैं उसका फल नित्य नहीं हो सकता। जिस मुक्ति का प्रारम्भ हुआ उसका अन्त भी अवश्य होगा। उनका यह भी कहना है कि यदि मुक्ति से लौट कर कोई जीव संसार में न आये तो एक दिन सृष्टि का उच्छेद हो जाये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन भारत में वेश-भूषा

चांडालों के विशेष संदर्भ में

डा० एस० एन० श्रीवास्तव, पी-एच०डी०, डी०लिट्०
रजिस्ट्रीकरण अधिकारी,
पुरावशेष एवं बहुमूल्य कलाकृति,
गोरखपुर मण्डल, गोरखपुर

यह कहना कठिन है कि आदिमयुग में भारतीयों की वेश-भूषा क्या थी। अभी तक की खोजों से यह पता नहीं लगा है कि वे कपड़े पहनते थे अथवा नहीं, और अगर पहनते थे तो वे चमड़े के बने होते थे या पत्तियों और छालों के। प्रागैतिहासिक गुफा-चित्रों से तो यही पता चलता है कि इस युग के लोग प्रायः नग्न रहते थे।

सबसे पहले भारतीय वस्त्रों एवम् आभूषणों का पता सिन्धु घाटी की प्रागैतिहासिक सभ्यता से मिलता है। मोहन-जोदड़ो और हड़प्पा की यह सभ्यता ३५०० ई० पू० से लेकर १५०० ई० पू० तक फली-फूली तथा इसका सम्बन्ध मध्यपूर्व की सभ्यताओं से था। उत्खनन द्वारा प्राप्त हुई मूर्तियों पर प्रायः स्त्री-पुरुष के वस्त्रहीन चित्र हैं। कभी-कभी उनका केवल आधा शरीर ही कपड़े से ढका हुआ मिलता है। नारियों की कमर में मेखला भी मिलती है। अभाग्यवश मूर्तियों तथा मुद्राओं पर अंकित चित्रों से यहाँ की वस्त्र-व्यवस्था पर प्रकाश नहीं पड़ता। सम्भवतः शरीर को ढकने के लिए दो प्रकार के वस्त्रों का प्रयोग किया जाता था। पहला निम्न भाग के लिए तथा दूसरा ऊपरी भाग के लिए। स्त्रियों के लिए विशेष प्रकार का वस्त्र होता था। यह सिर पर पीछे की ओर से बंधा रहता था। स्त्रियों तथा पुरुषों की वेश-भूषा में कोई विशेष अन्तर न था।

सिंधु घाटी के स्त्री-पुरुषों को आभूषणों से विशेष लगाव था। हार, भुजबन्ध, कंगन, अंगूठी, करधनी, बालों के पिन, कानों की बालियाँ, लौंग, नाक की बालियाँ आदि आभूषण प्रमुख थे। गहनों में प्रयुक्त सामग्री एवं धातु विविध थी। इसमें सोना, चाँदी, हाथी-दाँत के कीमती पत्थर, सीपी, मोती आदि प्रमुख थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोहन–जोदड़ों के नष्ट होने तथा आर्यों के भारत आने के अन्तर में भारतीय सभ्यता की क्या अवस्था थी, इसका पता नहीं है। जब इस अंधकार–युग का पर्दा उठता है, तब हमें वैदिक सभ्यता का दर्शन होता है। वैदिक युग की सभ्यता एक युग की न होकर करीब एक हजार वर्ष में फैली है और उसमें भिन्न २ स्तर मिलते हैं। लेकिन जहाँ तक वस्त्र का सम्बन्ध है, इसमें आठ सौ वर्षों तक कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। इस युग में विजेता आर्यों ने विजितों से बहुत-से वस्त्र ग्रहण कर लिए फिर भी अपने निजो वस्त्रों के प्रति उनका मोह रहा। आर्य प्रमुखत: तीन वस्त्र धारण करते थे– (अ) अधोवस्त्र (ब) उत्तरीय तथा (स) अधिवास। अनेक स्थानों पर उष्णीष (पगड़ी) पहनने का भी उल्लेख है। उनके वस्त्र अकसी के सूत, ऊन और मृगचर्म के बनते थे। वे सिलाई से परिचित थे तथा उनके वस्त्र विभिन्न प्रकार के होते थे। धनी और शौकीन व्यक्ति-रंग बिरंगे वस्त्र भी धारण करते थे।[1] स्त्री तथा पुरुष दोनों ही समान रूप से आभूषण प्रेमी थे। ऋग्वेद में अनेक आभूषणों के नाम–यथा गले में निष्क[2], कान में कर्ण-शोभन[3] तथा शीश पर कुम्ब[4] मिलते हैं। इसके अतिरिक्त रवादि, रुक्म, भुजबन्ध, केयूर, नुपूर, कंकण, मुद्रिका आदि आभूषण भी धारण किये जाते थे।

उत्तर वैदिककालीन युग में ऋग्वेदकाल के तीन प्रमुख वस्त्रों के अलावा अब वे चीर, चेवर तथा चेल नाम के वस्त्र भी धारण करने लगे थे। कई प्रकार की नीची धोतियों तथा कम्बलों के प्रयोग प्रचुर मात्रा में होते थे। स्त्रियाँ विविध रंगों की सुन्दर तथा कढ़ी हुई लम्बी किनारेदार साड़ियाँ पहनती थीं। पशुओं के चमड़ों से वस्त्र बनाकर ऋषि तथा विद्यार्थी पहनते थे। शंख, मोती, मणि–माणिका, निष्क आदि आभूषणों का प्रयोग स्त्रियाँ ही करती थीं।

सूत्रकाल में पहनावा बहुत सादा था तथा मुख्यत: दो वस्त्र पहने जाते थे। उपरोक्त दो वस्त्रों के साथ एक मेखला व दण्ड परिधान का अंग था। संस्कार या उत्सव के अवसर पर पगड़ी के प्रयोग का विवरण प्राप्त है। ब्राह्मण का उत्तरीय वस्त्र हिरन के, क्षत्रिय का रुरु नामक पशु के और वैश्य का बकरे के चर्म का बनता था। ऊनी–सूती तथा रेशमी वस्त्रों का उल्लेख प्राप्त है। कम्बल तथा ऊनी वस्त्र पिंडदान में दिये जाते थे।

महाकाव्य–काल में साधारणतया लोग दो वस्त्र धारण करते थे[5]–अधोवस्त्र जिसे वास अथवा शाटी[6] कहते थे तथा ऊर्ध्व वस्त्र जिसे उत्तरीय अथवा प्रावार[7] कहते थे। पुरुष अपने शीर्ष पर उष्णी बाँधते थे। स्त्रियों की रंगीन वस्त्रों में विशेष रुचि होती थी। सूती, रेशमी तथा ऊनी वस्त्रों का प्रयोग मौसम के अनुसार होता था। पुरुष तथा स्त्रियों दोनों में आभूषण धारण करने की प्रथा थी। ये आभूषण सोने, चाँदी, मोती, मूंगे, हीरा, जवाहरात आदि के होते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमुख आभूषणों में चूड़ामणि, कुंडल, हेम-माला, मुक्ताहार, कंठसूत्र, मेखला, केयूर, अंगद, वलय, अंगलीयक तथा नुपूर विशेष उल्लेखनीय हैं। लोहे के आभूषण एकमात्र चाण्डाल तथा बहिष्कृत व्यक्ति ही पहनते थे[8]।

जातक में चाण्डाल का वर्णन लाल रंग के गन्दे अधोवस्त्र पहने जिसके चारों ओर कसी हुई पेटी बंधी है तथा एक गन्दा उत्तरीय पहने और हाथ में मिट्टी का बर्तन लिए हुए मिलता है[9]। एक अन्य जातक से ज्ञात होता है कि चांडाल के पास एक जोड़ी रंगीन वस्त्र (शेष जनसमुदाय से भिन्न करने के हेतु), एक जर्जर जीर्ण वस्त्र तथा एक मिट्टी का पात्र होता था[10]। रामायण के अनुसार वे नीले वस्त्र धारण करते थे[10] (ए)।

मनु के अनुसार चांडालों का वस्त्र मृत व्यक्ति का वस्त्र होता था[11]। उनके आभूषण लोहे के बने होते थे[12]। मनु[13] के अनुसार चांडालों के आभूषण शीशे या लोहे के बने होने चाहिए, उनके गर्दन के चारों तरफ चमड़े का चर्मरज्जु या बाजू के नीचे शेष जनता से भिन्न प्रदर्शित करने वाला सूचकचिह्न होना चाहिए।

मनु का कथन है कि चाण्डालों के भिन्नतासूचक चिह्न राजा के निर्देशानुसार होने चाहिए[14]। राघवनन्द की यह व्याख्या कि चाण्डालों के मस्तक पर चिह्न बनाना चाहिए, किसी भी समकालीन स्रोत से ज्ञात नहीं होती है[15]। सम्भवतः चाण्डालों को शेष जनता से भिन्न दिखने के लिए कुछ विशेष प्रकार के वस्त्र धारण करने पड़ते थे[16]। ये परम्परागतरूप से लाल पुष्प की माला पहनते थे[17]। ऐसा प्रतीत होता है कि चाण्डालों के वस्त्र तथा आभूषण एक जैसे नहीं होते थे क्योंकि स्मृतियों के अनुसार वे उन्हीं वस्त्रों को धारण करते थे जो दाह के लिए लाये गये शवों से प्राप्त होते थे। कादम्बरी से ज्ञात होता है कि चाण्डाल स्त्रियाँ हाथी दाँत से बने आभूषण पहनती थीं[18] जिसे दन्त-पत्र कहते थे।

सन्दर्भ—

(१) ऋग्वेद २, ३, ६, ४, ३६, ७, ७, ३४, ११

(२) वही २, ३३, १०, ८, ४७

(३) वही १, १२२, १४

(४) वही ६, १३८, ३

(५) महाभारत ४, ३८, ३१

(६) रामायण २, ३२, ३७, महाभारत १२, २०, १

(७) महाभारत ३, ४६, १५, १, ४६, ६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८) रामायण १, ५८, ११, महाभारत १३, ४८, ३२–३३, मनुस्मृति X, ३९, ५२, ५६, विष्णु धर्मसूत्र १६, ११, १४ अर्थशास्त्र III, ११, महावसु II, ७३

(९) जातक भाग IV सं० ३७९, दृष्टव्य भाग III पृ० २५६
जिसमें पीला वस्त्र पहनने तथा सिर पर पीला कपड़ा बांधने का वर्णन है।

(१०) वही भाग IV, सं० ३७८

(१०)ए रामायण, I, ५८,१०

(११) मनुस्मृति X, १५२, अग्निपुराण १५१, १० एफ, महाभारत अनुशासनपव १७, ३२ (दक्षिण संकलन) ८३, ३२

(१२) मनुस्मृति X, ३९, ५२, ५६, विष्णु धर्मसूत्र १६, ११, १४, बालचरित II, ५ महाभारत XIII, ४८, ३२, अर्थशास्त्र III, ११, महावस्तु II, ७३

(१३) मनुस्मृति ९–१०

(१४) मनुस्मृति X, ५५

(१५) रामशरण शर्मा, Sudras in Ancient India, p. २०७, दिल्ली १९५८, लेकिन ए०एन० बोस, Social & Rural Economy of Northern India, Vol. II p. ४३७, कलकत्ता, १९४५ इसे सही मानते हैं।

(१६) मेघातिथि इन चिन्दोके, II, axes, edges तथा अन्य के रूप में होते हैं जिनका प्रयोग अपराधियों को मृत्युदण्ड देने तथा कंधे पर ढ़ोने के लिए होता है। गोबिन्दराज इसकी व्याख्या 'छड़ी तथा अन्य के रूप में' तथा सर्वज्ञ नारायण 'लोहे के आभूषण, मयूरपंख तथा इसी प्रकार की वस्तुएँ' के रूप में करते हैं। Sacred Books of the East, XXV, ४१५, पाद टिप्पणी ५५

(१७) जातक भाग III, ३०

(१८) कादम्बरी, पृ० १३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिखरे हुए प्राचीन सांस्कृतिक अवशेष

—विनोदचन्द्र सिन्हा एवं
सूर्यकान्त श्रीवास्तव

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के पुरातत्व संग्रहालय एवं प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के संयुक्त तत्वावधान में इस वर्ष हरिद्वार के आस-पास के क्षेत्र का पुरातात्विक सर्वेक्षण किया गया। सर्वेक्षण का कार्य दोनों लेखकों के निर्देशन में हुआ। कुछ कार्य प्रथम लेखक के निर्देशन में विजिटिंग प्रोफेसर रत्नचन्द्र अग्रवाल के सहयोग से किया गया। सर्वेक्षण-कार्य में संग्रहालय के श्री सुखवीरसिंह एवं बृजेन्द्रकुमार जैरथ ने भी भाग लिया। प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के वरिष्ठ प्राध्यापकों, व्याख्याताओं एवं स्नातकोत्तर छात्रों ने गहरी रूचि दर्शायी। वरिष्ठ प्राध्यापक श्री श्यामनारायण सिंह का सहयोग विशेषरूप से सराहनीय है।

सर्वेक्षण के फलस्वरूप ऐतिहासिक स्थान ही नहीं, बल्कि भारत के प्रागैतिहासिक काल की संस्कृतियों के अवशेष उपलब्ध हुये हैं। एक-एक करके प्रत्येक स्थान पर उपलब्ध वस्तुओं का निरीक्षण करते हैं।

कांगड़ी ग्राम—

गंगा के बायें किनारे पर हरिद्वार से लगभग १० किलोमीटर दूर कांगड़ी ग्राम जिला बिजनौर में अवस्थित है। यहाँ कोई प्राचीन टीला तो प्राप्त नहीं हुआ लेकिन पाषाण-प्रतिमायें अवश्य मिलती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कांगड़ी ग्राम के समीप गंगा में मिलने वाली प्रवाहिनी सिद्धस्रोत पर लगभग ४ किलो मीटर ऊपर पहाड़ियों पर ९-१०वीं शताब्दी में मन्दिर रहा होगा। कालान्तर में मन्दिर नष्ट हो गया और उसके अवशेष बहकर कांगड़ी ग्राम तक आ गये हों। कांगड़ी ग्राम से प्राप्त कई पाषाण-प्रतिमायें पुरातत्व संग्रहालय में संग्रहीत हैं। इस वर्ष के सर्वेक्षण से प्राप्त पाषाण-प्रतिमा अपना विशिष्ट स्थान रखती

प्रो० विनोदचन्द्र सिन्हा, अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग एवं पदेन-निदेशक, पुरातत्व संग्रहालय, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय तथा सूर्यकान्त श्रीवास्तव संग्रहालयाध्यक्ष पद पर कार्यरत हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। प्रतिमा नर-नारी की युगल कल्पना है। नर शिरविहीन है, आसनस्थ है, दायाँ पैर पीठिका के नीचे लटकाया है, बायाँ पैर मोड़कर पीठिका पर ही रखा है। पैरों में आभूषण हैं। अधोवस्त्र जंघा के ऊपर प्रदर्शित है। जनेऊ, कण्ठहार एवं बाजूबन्द पहिने हैं, उत्तरीय भी दर्शाया गया है। दायें हाथ में कड़ा पहने हैं तथा हाथ ऊपर उठा हुआ है, जिसमें सुरा–प्याला है। बायाँ हाथ बायें पार्श्व में खड़ी सुरा–दायिनी सुन्दरी के कन्धे पर रखा हुआ है। भाव से ऐसा आभास होता है कि पुरुष नारी को अपनी ओर खींच रहा है। जहाँ तक नारीअंकन का प्रश्न है, नारी पुरुष के बायें मुड़े पैर (वाम जंघा) के सहारे आभंग मुद्रा में सकीय की अवस्था में खड़ी हुयी है। दोनों हाथ सुरा–सुराही चषक पकड़े हुये हैं। सौष्ठव शरीरवाली नारी के उन्नत उरोज, पतली कमर, कुछ उभरा हुआ पेट, गहरी नाभि दर्शायी गयी है। केश-विन्यास में जूडा बनाया गया है, जो वेणी द्वारा सज्जित है। आभूषणों में कर्ण-कुण्डल, कण्ठहार, कड़े, करघनी एवं पायल पहने हुये है। उत्तरीय एवं अधोवस्त्र दर्शाये गये हैं। पुरुष के दायें ओर कलश दिखाया गया है। जिसे रत्नघट मानकर प्रो० रत्नचन्द्र अग्रवाल ने इसे कुबेर माना है, जो मद्यपान की हालत में सुरा-सुन्दरी को अपनी ओर खींच रहा है। लेकिन सूक्ष्म निरीक्षण करने पर प्रतीत होता है कि दोनों प्रतिमाओं के वायें ओर भी कलश है जो टूट गया है, अतएव स्पष्टतया दृष्टव्य नहीं है। सम्भावना इसकी अधिक है कि दोनों ओर मंगलकलश दर्शाये गये हों और प्रतिमा 'बलराम' की हो, क्योंकि बलराम को भी चषक और सुरा-सुन्दरी के साथ दर्शाया गया है।

श्यामपुर—

कांगड़ी ग्राम से लगभग दो किलोमीटर दूर स्थित है श्यामपुर। यहाँ भी कोई प्राचीन टीला नहीं है, लेकिन ९वीं, १०वीं शताब्दी के मन्दिर के अवशेष मिलते हैं। यहाँ दो प्रतिमायें मिलीं जिसमें एक निःसन्देह सिंहवाहनी दुर्गा की प्रतिमा है।

कुण्डो सोटा—

कांगड़ी ग्राम से लगभग १५ कि०मीटर दूर, जिला बिजनौर में ही स्थित है। इस स्थान का नाम शिवलिंग के ऊपर आधारित है। प्राचीन मन्दिर के टूटे हुये आमलक के मध्य–भाग में काले पत्थर का बना शिवलिंग प्रतिष्ठापित है जो कालान्तर में रखा गया है। स्थानीय भाषा में इसी आधार पर इसका नामकरण हुआ है।

अन्य उपलब्धियों में चतुर्भुजी देवी की प्रतिमा है। प्रतिमाअंकन में देवी का दाहिना पैर महिष राक्षस के सिर पर रखा हुआ दर्शाया गया है और बायें हाथ से पशु की पूंछ बलपूर्वक खींच कर ऊपर उठा रही है। दायें हाथ से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिशूल भेद रही है और दूसरे दायें हाथ में खड्ग लिये है। बायें हाथ में सम्भवत: घण्टी है। सम्भवत: यह प्रतिमा प्रतिहारकाल की है।

मण्डावर—

बिजनौर जिले में बिजनौर के उत्तर में लगभग १५ कि० मीटर दूर स्थित है। इसका उल्लेख चीनी यात्री युवान च्वांग ने भी किया है। कनिंघम ने युवान च्वांग के मा–टी–प्यु–लो को मण्डावर ही माना है। प्राचीन टीला पूर्णतया बसावक्रम में है, अतएव प्राचीनस्थल खोज पाने में कठिनाई हुयी।

यह तो गंगा के बायें किनारे था। अब देखते हैं दायें पार्श्व का सर्वेक्षण—

सतीकुण्ड (जिला सहारनपुर)

हरिद्वार से लकसर जाने वाली सड़क पर चुंगी से कुछ मीटर चलकर बायीं ओर प्राचीन टीला है। टीले से लगा है प्राचीन कुण्ड जिसे सतीकुण्ड कहा जाता है। प्राचीन टीला खेतिहर भूमि के रूप में प्राय: समतल हो गया है। बचा हुआ भाग एक इन्जोनियरिंग कारखाने ने नष्ट कर दिया है। मुश्किल से १० वां भाग सर्वेक्षण के लिये मिला। जिसमें प्राप्त सामग्री २० साल पूर्व भूतपूर्व महानिदेशक एम.एन. देशपाण्डे द्वारा सर्वेक्षण से सूचित गेरुये रंग वाली मृदभाण्ड सभ्यता को प्रमाणित करती है।

मायापुर (जिला सहारनपुर)

मायापुर हरिद्वार (२९°५८′ उत्तर एवं ७८° १०′ पूर्व) के मध्य स्थित है। हरकी पौड़ी नामक स्थान से लगभग ५०० मीटर की दूरी पर स्थित है। यह भाग गंगा नदी और अपर केनाल के मध्य का है। आज से लगभग २० वर्ष पूर्व सर्वेक्षण करके एम०एन० देशपाण्डे ने गेरुये रंग के मृदभाण्ड वाली संस्कृति को खोज निकाला था। वर्तमान में इस पर अखाड़ा निर्मित है, उन्होंने निरीक्षण के लिये सहयोग नहीं दिया।

बहादराबाद (जिला सहारनपुर)

नहर की खुदाई के समय गंगा घाटी के बहुर्चचित ताम्रशस्त्र की प्राप्ति के पश्चात तत्कालीन पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के वरिष्ठ अधिकारी वाई० डी० शर्मा द्वारा उत्खनन कर सम्बन्धित गेरुये रंग की मृदभाण्ड वाली संस्कृति के अवशेष प्राप्त किये थे। कोई प्राचीन टीला न होने के कारण समतल भूमि से कोई उल्लेखनीय प्रमाण नहीं मिले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नसीरपुर (जिला सहारनपुर)

आज से लगभग तीस वर्ष पूर्व नसीरपुर ग्राम तहसील मंगलौर से ताम्र-शस्त्र मिले। कितने मिले यह तो कहना कठिन है लेकिन ९ शस्त्र गुरुकुल के भूतपूर्व स्नातक द्वारा गुरुकुल के संग्रहालय में भिजवा दिये जो आज भी प्रदर्शित हैं। एम०एन० देशपाण्डे ने सर्वेक्षण कर यहाँ से गेरुये रंग के मृदभाण्ड वाली संस्कृति के अवशेष प्राप्त किये। वर्तमान सर्वेक्षण से इसकी पुष्टि होती है।

इमलीखेड़ा—

जिला सहारनपुर में २९⁰ ५६′ उत्तर अक्षांश, ७८⁰ ५४′ पूर्व देशान्तर पर स्थित इमलीखेड़ा के प्राचीन टीले का अधिकांश भाग ग्रामवासियों ने रहने के लिये कब्जा लिया है। लेकिन इस प्राचीन टीले से पश्चिम की ओर स्थित टीले का सर्वेक्षण किया गया जिसमें विभिन्न कालों में प्रयुक्त मृदभाण्डों के अवशेष प्राप्त हुये जिसमें विशेषरूप से उल्लेखनीय है चित्रित धूसर मृदभाण्ड (Painted Grey Ware)। यह मृदभाण्ड महाभारतकाल के अवशेष हैं।

सरसावा (जिला सहारनपुर)

सरसावा सहारनपुर से १५ कि० मीटर दक्षिण की ओर ३०⁰ १′ उत्तरी अक्षांश एवं ७७⁰ २४′ पूर्व देशान्तर पर स्थित है। इसका उल्लेख मुगलकाल से मिलता है। बाबर के काल में यहाँ लगभग ४० मीटर लम्बा-चौड़ा किला बना था जिसकी प्राचीर के अवशेष अभी भी ज्ञातव्य हैं। चारों कोनों पर बनी बुर्जी के अवशेष भी मिलते हैं। आस-पास के सर्वेक्षण से पता चलता है कि इसके चारों ओर खाई थी। कनिंघम ने इसे चीनी यात्री च्वाग द्वारा वर्णित श्रगमा माना है।

सर्वेक्षण में विभिन्नकालों के अवशेषों में गुप्तकाल के मृदभाण्ड एवं शुंगकालीन मृण-मूर्ति ईसा के प्रारम्भिक शताब्दी के अवशेष हैं। इसमें अति विशिष्ट है महाभारतकालीन चित्रित धूसर मृदभाण्डों की खोज, जो इससे पूर्व सूचित नहीं थी। प्राप्त सामग्री के आधार पर सरसावा की प्राचीनता १००० वर्ष ईसा पूर्व आंकी जाना गलत नहीं है।

सुलतानपुर—

हरिद्वार से लकसर मार्ग के लगभग मध्य में ३०⁰ ५′ उत्तरी अक्षांश एवं ७७⁰ २९′ पूर्व देशान्तर पर स्थित है—सुलतानपुर। सुलतानपुर बहलाल लोदी द्वारा बसाया गया था। सुलतानपुर के पूर्व में गंगा के किनारे प्राचीन टीलों की श्रृंखला है। जहाँ से कुषाणकालीन ईष्टिका (ईंट) एवं मृदभाण्डों के अवशेष मिले हैं। ९वीं, १० वीं शताब्दी में यहाँ कोई समृद्ध शहर रहा होगा। प्राचोन टीले के एक भाग में प्राचीन शिवालय है। लेकिन आस-पास के क्षेत्र में विभिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खण्डित पाषाण-प्रतिमायें मिलती हैं। इसमें मुख्य है समुद्र-मन्थन की दृश्यावली जो किसी मन्दिर के द्वार के ऊपरी भाग में उत्कीर्ण थी। इसके अतिरिक्त यहाँ से प्राप्त हुयी है विद्याधर या दिग्पाल को प्रतिमा जो मन्दिर के विशाल मण्डपों के स्तम्भ के ऊपरी भाग में प्रतिष्ठित की जाती थी। प्रतिमा ९वीं-१०वीं शताब्दी की है। प्रतिमा के पैर पीछे की ओर मुडे हैं अर्थात् घुटनों के बल बैठी हुयी है। पेट बाहर की ओर निकला है। नियोजित केश-सज्जा है, गले, हाथ, पैर और कमर में आभूषण हैं। चार हाथ हैं, दो हाथ जंघा पर रखे हुये और दो हाथों पर आकाशीयभार साधा हुआ है।

इसके अतिरिक्त देहरादून जिले में स्थित कालसी क्षेत्र का भी सर्वेक्षण किया गया है। कालसी मौर्यराजा अशोक के शिलालेख के सन्दर्भ में जाना जाता है। लेकिन सर्वेक्षण में प्रथम बार मौर्यकालीन मृदभाण्डों के अवशेषों को प्राप्त किया गया। यमुना के कटावों के निरीक्षण से एक पानी से घिसा हुआ हस्त-कुठार (Hand axe) भी प्राप्त हुआ है जो अपने आपमें सर्वथा नवीन खोज है।

गत पृष्ठों में हम एक-एक करके सभी स्थानों का विवरण दे चुके हैं। इस सर्वेक्षण से इतना निश्चित है कि आस-पास के क्षेत्र में हमारी प्राचीन संस्कृतियाँ दबी पड़ी हैं। जिन्हें खोज कर अपने अतीत के इतिहास का सृजन करना आवश्यक है। इस छोटे पैमाने पर किये गये सर्वेक्षण से हरिद्वार ही नहीं, आस-पास की प्राचीनता पर प्रकाश पडता है।

संक्षेप में देखा जाये तो इस क्षेत्र का इतिहास ईसा-पूर्व २००० वर्ष पूर्व से प्रारम्भ हो जाता है। इस काल में प्रचलित गेरुये रंग वाली मृदभाण्ड वाली सभ्यता के अवशेष सतीकुण्ड, मायापुर, नसीरपुर एवं बहादराबाद से मिलते हैं। इसी काल में प्रचलित ताम्रशस्त्र, जो गंगा घाटी की अपनी देन है, नसीरपुर एवं बहादराबाद से मिलते हैं।

कालक्रम में इसके पश्चात महाभारतकालीन चित्रित धूसर मृद-भाण्ड वाली संस्कृति का काल है। इमलीखेड़ा के पास मोहनपुर एवं सरसावा इसके उदाहरण हैं। भूरे रंग की चित्रित मृदभाण्ड वाली संस्कृति में वर्तमान में प्रचलित थाली, लोटा और कटोरी के खाने के बर्तन सर्वप्रथम मिलते हैं। जो आर्यों के साथ आयी संस्कृति की द्योतक हैं।

तत्पश्चात शुंग, कुषाण, गुप्तकाल की संस्कृतियों के अवशेष मृदभाण्ड, मृणमूर्तियाँ एवं पाषाण प्रतिमाओं के रूप में मिलते हैं।

सर्वेक्षण के परिणाम इतने उत्साहवर्धक हैं कि दोनों ही लेखकों ने सर्वेक्षण की विस्तृत योजना बनायी है तथा उत्खनन का भी निश्चय है, जिससे इस क्षेत्र का क्रमबद्ध इतिहास बनाने में योग दिया जा सके।

**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा-पद्धति : एक समीक्षात्मक दृष्टिकोण

डॉ० भगवन्त सिंह
प्राध्यापक, दर्शन विभाग,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

लार्ड मैकाले के नाम से जानी जाने वाली वर्तमान शिक्षा-पद्धति दशाब्दियों से परिवर्तन और परिवर्द्धन का विषय बनी हुई है। सामान्यतया प्रत्येक वस्तु के गुण और दोष, दो पहलू हुआ करते हैं; किन्तु वर्तमान शिक्षा पद्धति का, वर्तमान एवं भविष्य के परिप्रेक्ष्य में दोषों का ही पलड़ा भारी हो रहा है। आज शिक्षा के साथ माखौल इतना बढ़ता जा रहा है कि अब 'ज्ञान के लिए शिक्षा' के स्थान को 'उपाधि के लिए शिक्षा' अथवा 'नौकरी के लिए शिक्षा' की परम्परा ने ले लिया है। यही कारण है कि आज के परिप्रेक्ष्य में अपने को शिक्षित कहने वाले युवक या युवतियाँ जब जीवन के चौराहे पर आते हैं तो भ्रमित होकर सांसारिक चकाचौंध में फंसकर अपने को बेकार कहने लगते हैं। प्रश्न उठता है कि आखिर यह त्रासदी और लक्ष्यहीनता क्यों ?

उत्तम शिक्षा-पद्धति, जो देश एवं समाज के लिए स्वस्थ नागरिक पैदा कर सके, की अपनी कुछ विशिष्टतायें हैं जिनके परिप्रेक्ष्य में वर्तमान शिक्षा-पद्धति की गुणवत्ता का आंकलन किया जा सकता है।

१. विद्यालयों में समानता—

इक्कीसवीं सदी के अखण्ड भारत में एकरूपता लाने के लिए तथा उसके समरूप स्वस्थ नागरिक बनाने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा-पद्धति के साथ-साथ उससे पूर्व शिक्षा-व्यवस्था पर वास्तविक रूप से (न केवल कागज़ पर) ध्यान दिया जाये। विषमता एवं विखण्डता में पलने वाला आज का बालक युवा होने पर कल का स्वस्थ नागरिक कैसे बन पाएगा ? एक तरफ तो कुछ बच्चे गगन-चुम्बी अट्टालिकाओं में शिक्षा प्राप्त करते हैं और दूसरी ओर देश के मूल में रहने वाली ७०% राष्ट्रीय कर्णधार ग्रामीण जनता के अधिकांश या सभी बच्चों को यह भी नहीं पता रहता कि उनके विद्यालय, बगीचे के किस वृक्ष के नीचे, किस दिन, कौन-सी कक्षाएँ चलायेंगे ? इसमें एकरूपता आवश्यक है।

२. शिक्षा में समानता—

समग्र राष्ट्र में एकरूपता लाने के लिए यह भी आवश्यक है कि कान्वेन्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कूल, पब्लिक स्कूल, केन्द्रीय विद्यालय तथा जिला परिषदों के माध्यम से चलने वाले विद्यालयों में से किसी भी एक को ही विकसित कर चलाया जाये। बच्चों में राष्ट्रीयचरित्र के संस्कार को उत्पन्न करने वाली इन शिक्षण-संस्थाओं में ऐसी विषमता अपने राष्ट्रीय-लक्ष्य के लिए साधक हो रही है या बाधक, इसका निणय पाठक ही करेंगे। वैसे हमारे युवा प्रधानमन्त्री जी ने अपनी अत्यल्प शासनावधि में ही इस तरफ पर्याप्त ध्यान केन्द्रित कर लिया है।

३. शिक्षा की अनिवार्यता—

इक्कीसवीं सदो के पूर्णसाक्षर भारत की कल्पना के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा को प्रत्येक नागरिक के लिए अनिवार्य बना दिया जाये। यदि कोई संरक्षक निर्धारित आयु क बाद अपने बच्चों को विद्यालय नहीं भेजता तो उसे दण्डनीय अपराध माना जाए। किन्तु इसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा को आमतौर पर सस्ती करते हुए इसे गरीब तबकों के लिए निःशुल्क (मुफ्त) कर दिया जाये। इस प्रकार राजकीय संसाधनों से शिक्षा को प्रत्येक नागरिक प्राप्त करना चाहेगा और सुलभ करेगा भी। आज की इस आवश्यकता को स्वामी दयानन्द जी ने शताब्दीपूर्व ही महसूस कर सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में शिक्षा की अनिवार्यता पर बल प्रदान किया है।

४. भाषागत समानता—

राष्ट्रीयचरित्र पैदा करने के लिए आवश्यक है कि शिक्षा का मूलाधार राष्ट्र-भाषा हो। उच्च शिक्षा के लिए, अपेक्षित होने पर वैकल्पिक भाषाओं का ज्ञान उच्चस्तर पर दिया जा सकता है। भाषागत समस्याओं के पालने में झूलते हुए भारत के उदीयमान सितारों का अधिकांश समय भाषा सीखने में ही समाप्त हो जाता है. फलतः राष्ट्रीय-प्रतिभाओं के विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। इस सन्दर्भ में भी गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली का कार्य समय से पूर्व ही सराहनीय रहा है। आज से लगभग ८३ वर्ष पूर्व ही विज्ञान की पुस्तकों को हिन्दो भाषा में तैयार कराकर और उसकी शिक्षा हिन्दी माध्यम से प्रदान कर, गुरुकुल ने आज के शिक्षाविदों के सामने उपस्थित होने वाली भाषागत समस्याओं को चुनौती प्रदान की है। गुरुकुल के तत्कालीन मुख्याध्यापक श्री गोवर्धन शास्त्री की पुस्तकों का नाम आज भी विज्ञानविदों के मध्य आदर से लिया जाता है।

५. राष्ट्रीय-चरित्र का निर्माण—

देश की एकता एवं अखण्डता की भावना को जनमानस में जागृत करने के लिए आवश्यक है कि उपरिलिखित विद्यालयीय एवं भाषायी विषमताओं को दूर कर, राष्ट्रीयस्तर पर समरूपता लायी जाये जिससे जातिगत एवं क्षेत्रगत सीमाओं से उठकर, नागरिक राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत होकर, राष्ट्रीय विकास में निष्ठा एवं त्याग की भावना से अपने को समर्पित कर सके। इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए आवश्यकता इस बात की है कि अध्ययन-अध्यापन तथा कार्यालयीय प्रयोग में एकमात्र राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रयोग को कागज़ी आदेश से हटाकर व्यवहार में लाया जाये। एक भाषा एवं एक-से विद्यालय के छात्र-नागरिक आपस में तथा राष्ट्र के प्रति विकासशील परिवार के सदस्यों की भाँति समग्र विचारधारा से कार्य करेंगे। इस सन्दर्भ में गुरुकुलीय व्यवस्था की समरूपता एक अनुकरणीय आदर्श है।

६. मानवीय-मूल्यों का विकास—

वर्तमान भारत दिन-प्रतिदिन विकास के नाम पर भारतीय संस्कृति का परित्याग कर, पाश्चात्य भौतिकता की तरफ अग्रसर होता जा रहा है। इस क्रम में मानवीय मूल्यों का नित तीव्र गति से ह्रास हो रहा है और अनैतिकता तथा संकुचितता का विकास हो रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि पब्लिक एवं कान्वेन्ट स्कूलों की चकाचौंध प्रदान करने वाली शिक्षा से दूर हटते हुए, भारतीय संस्कृति की निधि—वेदों पर आधारित शिक्षा के साथ-साथ नीतिशास्त्र का अध्ययन अनिवार्य किया जाये।

७. तकनीकी एवं सामाजिक शिक्षा—

देश के तकनीकी विकास को दृष्टिगत रखते हुए शिक्षा को तकनीकी बनाना भी आवश्यक हो गया है। कम्प्यूटर के अत्याधुनिक युग में लार्ड मैकाले की लिपिकोत्पादक शिक्षा अनिवार्यत: परिवर्तनीय है। जिस प्रकार एम. बी. बी. एस. की डिग्री प्राप्त करने वाले प्रत्येक विद्यार्थी-डाक्टर को एक वर्ष का प्रयोगात्मक अनुभव 'हाउस जॉब' करना पड़ता है, उसी प्रकार कोई-भी परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात, उपाधि को प्राप्त करने से पहले, प्रत्येक विद्यार्थी को ग्रामीण क्षेत्रों में पहुँच कर सामाजिक उत्थान के कार्य करना अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए। इससे विद्यार्थी को कागज़ी ज्ञान के साथ-साथ समाज की व्यावहारिक बुराइयों तथा समस्याओं का भी ज्ञान हो सकेगा जिसके निवारणार्थ वह अपने जीवन में कुछ प्रयास अवश्य करेगा। साथ ही राष्ट्रीय सेवा योजना जैसे कार्य-क्रमों को अधिक व्यावहारिक बनाकर उनके अनुपालन तथा कार्यान्वयन में गति लायी जानी चाहिए।

८. नारी-शिक्षा की अनिवार्यता—

"परिवार नागरिक जीवन की प्रारम्भिक पाठशाला है" और परिवार के ढाँचे में रीढ़ का कार्य करती है-नारी। अस्तु स्वस्थ एवं राष्ट्रीय-चरित्र का नागरिक बनाने के लिए आवश्यक है कि नारी-शिक्षा को पूर्णत: नि:शुल्क और अनिवार्य कर दिया जाए ताकि शिक्षित माताएँ अपने शिशुओं को उत्तम-संस्कार प्रदान कर सकें। इस आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए हमारे युवा प्रधानमन्त्री ने इस क्रम में ठोस कदमों की घोषणा की है, जिसमें सर्वप्रथम नारी-शिक्षा को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाई स्कूल तक निःशुल्क घोषित किया जा चुका है। इस आवश्यकता को स्वामी दयानन्द ने लगभग शताब्दीपूर्व ही महसूस किया था और नारी-उद्धार के आवश्यक अंग के रूप में नारी-शिक्षा पर बल भी दिया था, जिसके अनुरूप आर्य समाज ने अनेकानेक स्थानों पर अलग-से कन्या गुरुकुलों की स्थापना की।

उपरोक्त अनेकानेक अपेक्षाओं को शिक्षा-पद्धति से जोड़ने के साथ-साथ एक मूल अपेक्षा यह भी है, जिसकी तरफ युवा-हृदय-सम्राट हमारे प्रधानमन्त्री महोदय ने ठोस कदम उठा लिया है, वह है—डिग्री या उपाधि का सेवाओं या नौकरियों से सम्बन्धविच्छेद। वास्तव में जो भी चीज किसी अन्य चीज की प्राप्ति के लिए अनिवार्य अर्हता मान ली जाती है उसकी प्राप्ति की तरफ सामान्य होड़-सी लग जाती है। येन-केन-प्रकारेण उस अर्हता को प्राप्त कर लक्ष्यप्राप्ति के लिए साधारण से लेकर भ्रष्ट तरीकों तक का इस्तेमाल करने लगते हैं। इसलिए सेवाओं से उपाधि का सम्बन्ध-विच्छेद कर उपार्जित योग्यताओं के आधार सेवा में भर्ती करके एक तरफ तो भ्रष्टाचार से मुक्ति मिल सकती हैं और दूसरी तरफ योग्य व्यक्तियों का उपयुक्त सेवाओं में चयन भी होगा तथा शिक्षित बेरोजगारी जैसी बीमारी का भी स्वतः उन्मूलन हो जायेगा।

अब प्रश्न उठता है कि क्या वर्तमान शिक्षा-पद्धति को, शिक्षा-व्यवस्था समकालीन परिस्थितियों में पूर्णरूपेण क्रियान्वित कर पा रही है या नहीं। यदि नहीं तो इसके क्रियान्वयन में कौन-सी वस्तु बाधक है? मेरे विचार से शिक्षा-व्यवस्था का मुख्य अंग परीक्षा है। वर्तमान समय में 'नकल' जैसी सामान्य बीमारी उपाधि-प्राप्ति के लिए कैंसर की तरह परीक्षा-ढांचे में लग गयी है, जिसके निवारणार्थ प्रशासन को अत्यधिक समय और धन का नुकसान सहन करना पड़ता है। इस नकल का मुख्याधार चुने हुए वर्णनात्मक प्रश्न-पत्र प्रमुख रूप से हैं। ये प्रश्न प्रायः अगले वर्ष दोहराये नहीं जाते और यदि दोहरा दिये जाते हैं तो परीक्षार्थी परीक्षा का बहिष्कार कर देते हैं। परीक्षा की इस कैंसररोग से मुक्ति का एक मार्ग मेरे भी मस्तिष्क में आता है जो हो सकता है कि नयी शिक्षा-पद्धति के लागू होने तक या उसके बाद भी उपयोगी हो। परीक्षा के प्रश्न-पत्रों को वर्णनात्मक करने के बजाय क्यों न वस्तुनिष्ठ कर दिया जाय। ये छोटे-छोटे वस्तुनिष्ठ (ऑबजेक्टिव) प्रश्न, पाठ्यक्रम के आद्योपान्त भाग से लिए जायें तथा प्रश्नपत्र उत्तर-पुस्तिकाओं के साथ ही जमा करा लिये जायें। परीक्षार्थी न तो चुने हुए प्रश्नों के न आने पर परीक्षा का बहिष्कार (वाक्-आउट) करेगा और न ही वह कुछ चयनित (सेलेक्टिड) प्रश्नों के अध्ययन तक ही अपने को सीमित रखेगा। इस स्थिति में नकल का तो प्रश्न ही नहीं उठेगा।

इस प्रकार प्राप्त शिक्षा राष्ट्र एवं समाज के लिए उपयोगी नागरिक पैदा कर सकेगी, ऐसी मेरी मान्यता है। **

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोवियत संघ की शिक्षा में हिन्दी का स्थान*

—डा० आर० एल० वार्ष्णेय
एम.ए.,पी-एच.डी.,सी.टी ई.,डिप.टी.ई.,
रीडर, अंग्रेजी विभाग,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

सोवियत संघ विश्व की महानतम शक्तियों में से एक शक्ति है। परन्तु महाशक्ति बनने में यहाँ के नागरिकों के चिरस्मरणीय त्याग और परिश्रम का अनुकरणीय योगदान है। वहाँ के नागरिक अत्यन्त सुसंस्कृत और अनुशासनप्रिय हैं। वहाँ जनशक्ति का अभाव है, इसलिए मशीनों का प्रयोग अधिक है। क्रूर-प्रकृति और कटु-धरती के बावजूद वहाँ बहुमुखी प्रगति हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि सोवियत नागरिकों ने प्रकृति पर नियंत्रण पा लिया है।

रूस में डिग्री तथा रोजगार का सम्बन्ध भारत की अपेक्षा कम है। बेरोज़गारी, कीमत बढ़ने, मुद्रा-स्फीति, कालाबाज़ारी, घाटे की अर्थ–व्यवस्था आदि समस्याओं से भी वह देश मुक्त है। सफाई का स्तर स्वर्ग जैसा है। भवन-निर्माण, आयुध, हवा और पानी के जहाज, मोटर, रेल, आणविक शक्ति और परा-अपरा विद्याओं, तथा भारी उद्योगों में रूस ने जो प्रगति की है, उसमें वहाँ की शिक्षा-व्यवस्था की महत्वपूर्ण भूमिका है।

सोवियत संघ की शिक्षा में हिन्दी का स्थान निर्दिष्ट करने से पूर्व वहाँ की शिक्षा-प्रणाली का सूक्ष्म विश्लेषण लाभकारी होगा। शिक्षा, स्वास्थ्य, भवन, रोजगार, ट्रांस्पोर्ट, भोजन आदि की व्यवस्था करना सरकार का कार्य है। ये सभी सुविधायें वहाँ के नागरिकों को या तो मुफ्त या बहुत कम पैसे देकर प्राप्त हो जाती हैं। समानता तथा वर्गहीन सामाजिक व्यवस्था सर्वोपरि है। इन्हीं सिद्धान्तों पर वहाँ की शिक्षा–व्यवस्था भी आधारित है।

रूसी शिक्षा में महिलायें अग्रणीय हैं। लगभग ९५ प्रतिशत शिक्षा वहाँ महिलायें ही प्रदान करती हैं। इसके दो स्पष्ट लाभ हैं–पुरुषों को भारी तथा अधिक जोखिमपूर्ण कार्यों, मिलिट्री तथा पुलिस सेवाओं में प्रयुक्त करके, आंतरिक हल्के कार्य महिलाओं द्वारा कराकर, जनशक्ति के अभाव की पूर्ति तथा नारी के द्वारा

*रेडियो वार्ता—आकाशवाणी नजीबाबाद से ४ अगस्त, १९८५ को प्रसारित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश की शिक्षा का कार्य कराकर, उनसे प्राप्त होने वाली भावी संतान को सुसंस्कृत तथा शिक्षित बनाने का कार्य प्राकृतिक रूप से, स्वतः तथा सुचारू ढंग से कर लेना।

शिक्षा अधिकांशरूपेण मौखिक रूप से दी जाती है। यहाँ तक कि अधिकांश परीक्षायें भी मौखिक ही होती हैं। विज्ञान और टैक्नोलॉजी का अध्ययन प्रारम्भ से ही है। आठवीं कक्षा तक शिक्षा अनिवार्य है। सभी पढ़ने वाले छात्रों में से लगभग एक-तिहाई छात्र आठवीं कक्षा के पश्चात वोकेशनल (व्यावसायिक) शिक्षा प्राप्त करने वोकेशनल स्कूल्स में चले जाते हैं। उच्च-शिक्षा के लिए विशेष योग्यता प्राप्त लोग ही भर्ती होते हैं। विश्वविद्यालयों में प्रवेश, देश की आवश्यकताओं के अनुसार ही मिलता है। व्यक्तिगत स्वतंत्रतायें कम हैं, परन्तु कलात्मक और सांस्कृतिक रुचियों के अनुरूप व्यक्तिगत विकास के हेतु दरवाजे सदैव खुले रहते हैं। रूसी लोग जो कुछ भी करते हैं, बहुत अच्छी तरह से करते हैं और हर क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीयस्तर तक उठने का प्रयत्न करते हैं। लापरवाही, उदासीनता, अनुशासनहीनता, कानून-व्यवस्था की समस्यायें, हड़तालबाजी, घेरावबाजी वहाँ नहीं है। हाँ, मदिरापान तथा धूम्रपान की बीमारी वहाँ भारत से अधिक गम्भीर है। इस क्षेत्र में महिलायें भी मर्दों की बराबरी कर रही हैं।

सोवियत संघ में भाषा की समस्या भारत जैसी ही है। वहाँ पन्द्रह रिपब्लिक (राज्य) हैं और प्रत्येक राज्य की अपनी अलग भाषा है। यहाँ तक कि रूसी भाषा, जो कि राष्ट्रभाषा है, भी अनेक रूपों तथा बोलियों में क्षेत्रीय विशेषताओं से युक्त है। वहाँ प्रारम्भिक शिक्षा मातृभाषा अथवा रूसी भाषा में दी जाती है। अधिकांश राज्यों की अपनी अलग भाषायें है। मातृभाषा के अतिरिक्त राष्ट्रभाषा का पढ़ना अनिवार्य है। पाँचवीं कक्षा के पश्चात अधिकाँश विद्यार्थियों को तीन भाषा पढ़नी पड़ती हैं-मातृभाषा, राष्ट्रभाषा, तथा कोई एक अन्य राज्य की भाषा। जिनकी मातृभाषा तथा राष्ट्रभाषा एक ही है उन्हें एक अन्य राज्य की भाषा पढ़ाई जाती है ताकि त्रिभाषा फार्मूला समान रूप से सब पर लागू हो सके।

सोवियत संघ की शिक्षा में भाषाओं का विशेष स्थान है। महाशक्ति की भूमिका अदा करने, अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के विकास तथा जासूसी कार्य-वाहियों के लिए सोवियत संघ को अनेक भाषाओं के ज्ञान की आवश्यकता है। अतः रूस में विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं के जानने वाले मिल जायेंगे। विदेशी भाषाओं में अंग्रेजी के अतिरिक्त जर्मन, फ्रेंच, चीनी, जापैनीज़ आदि अधिक प्रचलित हैं। साथ-ही रूस के मित्र देशों की भाषायें तथा एफ्रो-एशियन देशों की भाषायें भी सिखलाई तथा पढ़ाई जाती हैं। भारत के साथ रूस के राजनैतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्ध अच्छे होने के कारण, रूसी सरकार तथा नागरिक भारतीयों को बड़े आदर और सत्कार से देखते हैं और वहाँ के लोग भारतीय-संस्कृति, कला और भाषाओं को बड़ा स्नेह और सम्मान देते हैं। अस्तु, रूसी शिक्षा में हिन्दी ने अपना स्थान बना लिया है।

सम्पूर्ण सोवियत संघ में दो या तीन स्कूल ऐसे हैं जहाँ हिन्दी बचपन से ही पढ़ाई जाती है। इस तरह का एक स्कूल, बोर्डिंग स्कूल नं० ४, लेनिनग्राद में भी है। यह हिन्दी स्कूल के नाम से विख्यात है। मैं अपनी रूस यात्रा के दौरान इस स्कूल में गया और वहाँ हिन्दी के पठन-पाठन को देखा। विद्यार्थी अत्यन्त रुचि के साथ हिन्दी पढ़ रहे थे। पढ़ाने की प्रणाली आधुनिक थी और ऑडो-विज्वल तरीके पर आधारित थी। परन्तु छात्रों के पास कोई भी पाठ्य-पुस्तक नहीं थी। वहाँ के प्रधानाचार्य ने बताया कि उन्होंने अनेक भारतीयों से प्रार्थना की है कि वे इस विषय में उनकी कुछ मदद करें।

जो भी भारतीय उस स्कूल में गये हैं, यह वायदा करके आये हैं कि वे कुछ-न-कुछ करेंगे। मैंने प्रधानाचार्य से कहा कि भारत में एन०सी०आर०टी० ने जो पुस्तकें भारतीय बच्चों के लिये प्रकाशित की हैं, उन्हें वे अपना आधार मानकर आगे बढ़ सकते हैं। इस विषय में वे मास्कोस्थित भारतीय दूतवास को लिखें। रूस में हिन्दी की दयनीय दशा के लिये भारतीय अधिकारी और सरकार ही अधिक उत्तरदायी है, क्योंकि रूसी सामाजिक तथा राजनैतिक ढाँचा इस प्रकार का है कि किसी भी व्यक्तिविशेष को महत्ता नहीं देता और रूसी नागरिकों को वे व्यक्तिगत स्वतंत्रतायें प्राप्त नहीं हैं जो हम भारतीयों को प्राप्त हैं।

सोवियत संघ में हिन्दी की प्रगति में एक विशेष बाधा है—दोनों देशों की सरकारों की लालफीताशाही। तीसरी बाधा है भारत में अनेक भाषाओं का होना। इसलिए सोवियत संघ में हिन्दी के साथ भारत की क्षेत्रीय भाषाओं—बंगाली, तामिल, तेलुगू, कन्नड़, पंजाबी, मराठी, गुजराती, आदि भाषाओं के पढ़ने के साधन भी विद्यमान हैं और वहाँ की सरकार इन भाषाओं के पठन-पाठन की भी व्यवस्था करती है और अनेक रूसी नागरिक गत वर्षों में इन भाषाओं को सीखने के लिए भारत भेजे गये हैं। रूस में संस्कृत भाषा को विशेष आदर से देखा जाता है।

हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की सुविधा रूस के मास्को तथा लेनिनग्राद विश्वविद्यालयों की ओरियन्टल फैकल्टीज में होती है। मास्को में एक पूर्व की विद्याओं का पूर्ण विश्वविद्यालय भी है। मास्को की प्यूपिल्स यूनिवर्सिटी में हिन्दी की एक पीठ है और वहाँ का हिन्दी विभाग, हिन्दी के प्रचार-प्रसार का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का रूस में सबसे बड़ा केन्द्र है। हिन्दी जानने वाले जिन रूसी नागरिकों से मैं मिला, वे हिन्दी में अत्यन्त दक्ष थे।

एक सायं मास्को की बस में यात्रा करते समय, एक सज्जन मेरा भारतीय पहनावा देखकर मेरे पास आ गये और मुझसे सीधे हिन्दी में बातचीत करने लगे। उन्होंने बताया कि वे रूस के किसी उत्तरीयप्रान्त के निवासी थे और पिछले १८ वर्षों से हिन्दी का अध्ययन कर रहे थे। उन्होंने कहा कि वे पिछले १८ वर्षों से ऑल इण्डिया रेडियो से हिन्दी में प्रसारित समाचार सुनते आ रहे हैं। सामान्यत: रूसी नागरिकों को प्रत्येक भारतीय वस्तु से प्रेम है और भारतोयों को वे विशेष स्नेह और सम्मान प्रदान करते हैं। इंग्लैण्ड, कनाडा तथा अमेरिका में जो रंग-भेद है, वह रूस में नहीं। रूसी-हिन्दी भाई-भाई व्यवहार में देखा जा सकता है।

परन्तु जिन रूसी लोगों ने हिन्दी को अपनाया है उन्हें अच्छा रोज़गार प्राप्त करने में कठिनाई आई है। भाषाओं के जानने वाले अधिकांशत: वहाँ दुभाषियों तथा टूरिस्ट-गाइडों का कार्य करते हैं। उनमें से कुछ ने बताया कि हिन्दी पढ़ने से उन्हें कोई लाभ नहीं हुआ। उल्टे उन्हें रोजगार प्राप्त करने हेतु हिन्दी के अतिरिक्त एक और विदेशी भाषा पढ़नी पड़ी।

यह कहना गलत न होगा कि सोवियत संघ में हिन्दी अभी शैशव-अवस्था में ही है। इसे बढ़ाने और समृद्ध करने के लिए सरकारी-स्तर और भारत में स्थित हिन्दी-संस्थानों और डाइरेक्टरेटों को अभी बहुत कुछ करना होगा। मास्को-स्थित भारतीय दूतावास का, विशेष रूप से वहाँ के शिक्षा विभाग का बड़ा दायित्व है। वहाँ की सरकार से मिलकर वहाँ के प्रमुख नगरों में हिन्दी-संस्थान तथा हिन्दुस्तानी केन्द्र खोलने होंगे और प्रारम्भ में उनको चलाने के लिए कुछ भारतीयों की उनमें नियुक्तियाँ आवश्यक हैं। हिन्दी का अपार-सागर, जो हमारे देश में है, उनकी कुछ बूंदे वहाँ की जनता को गंगाजल की तरह बाँटनी होंगी तभी हिन्दी का प्रोत्साहन सही रूप में हो सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पवाया का दुर्लभ सिरदल

डॉ० (कु०) कृष्णा गुप्ता
नगरिया सदन, खूबी की बजरिया
ग्वालियर (म०प्र०)

भारतीय शिल्पकला में वर्णनात्मकपरम्परा काफी समृद्ध एवं सैद्धान्तिक रही है। इस परम्परा ने सांस्कृतिक एवं पौराणिक कथा-अभिप्रायों को अपना आधार बनाकर, भारतीय कला को अनुपम कृतियाँ प्रदान की हैं। कथा-वृत्तान्तों का प्रारम्भिक अंकन भरहुत, सापी, बेसनगर, मथुरा, कौशाम्बी, अमरावती, नागार्जुनकोडा, बोधगया, खण्डगिरि-उदयगिरि आदि विभिन्न स्थानों पर उपलब्ध होता है। यद्यपि इन स्थानों में अपनाई गयी शैली में कुछ भिन्नता है, परन्तु अभिव्यक्त करने की पद्धति एवं प्रकार कुछ सीमा तक समानता लिये हुये है।

मध्यक्षेत्र में राम एवं कृष्ण को लीलाओं का वृत्तान्तात्मकचित्रण गुप्तकालीनस्थल, विशेषकर नायना एवं एरण में उपलब्ध होता है। ग्वालियर क्षेत्र में पवाया (प्राचीन पद्मावती) का सिरदल (मन्दिर-तोरण) इस परम्परा में विशेष महत्त्व रखता है। केन्द्रीय पुरातत्व संग्रहालय, गूजरी महल, ग्वालियर में संग्रहीत यह तोरण अपने मूल प्राप्ति-स्थल पवाया की कला एवं स्थापत्य की विशिष्टताओं को अपने में सँजोये हुये है। ५वीं शताब्दी का यह सिरदल कलात्मक दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही, अभिप्रायों की विविधता को भी अपने में सँजोये हुये है। पौराणिक-आख्यानों के साथ-साथ लगभग २ फीट लम्बे एवं २ फीट चौड़े प्रस्तर-खण्ड पर इसमें गीत-नृत्य का अनुपम दृश्य अंकित है। गुप्तकला का यह अप्रतिम उदाहरण है।

इस तोरण के दोनों ओर पौराणिक कथानक अंकित हैं। तोरण के अग्रिम एवं पृष्ठ भाग में दो-दो दृश्य अंकित हैं। अग्रिम भाग में राजा बलि के द्वारा यज्ञ करना एवं विष्णु के द्वारा त्रिविक्रम-स्वरूप में त्रिभुवन को लांघना दर्शाया गया है। इस पौराणिक कथानक को सम्पूर्ण धार्मिक क्रियाओं के साथ सुन्दर रूप में वर्णित किया गया है। यज्ञ-स्थली, यज्ञस्तम्भ, यूप, अग्नि-ज्वालायें एवं यज्ञ-पशु (मेष) आदि सब कथानक के अवसर के अनुरूप ही दर्शाये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये हैं। यूप के समीप पुरोहित हाथ में फलिकरण–पात्र लिये हुये बैठे हैं, सामने राजा बलि सपत्नीक पीठिका पर अवस्थित है। रानी की मुखभंगिमा एवं केशसज्जा कलात्मक है। इसी के समीप कथानक का वह दृश्य है, जहाँ राजा बलि जल–पात्र लिये हुये पवित्र–जल को छिड़ककर संकल्प के द्वारा अन्तिम उत्सर्ग कर रहे हैं। बलि के पीछे गुरु शुक्राचार्य एक हाथ ऊपर उठाकर इन्कार-मुद्रा में इस कृत्य के लिये मना कर रहे हैं। बलि के समीप विष्णु वामनरूप में खड़े हैं। प्रथम चरण में राजा बलि वामन को संकल्प के द्वारा दान प्रदान करते हैं एवं द्वितीय चरण में वामन विराट रूप धारण करके त्रिभुवन को लांघते हैं। विराट–स्वरूप विष्णु बड़े-ही स्वाभाविक अंकित किये गये हैं। उनका एक पैर ऊपर प्रसारित है जो कि ब्रह्माण्ड को नाप रहा है। उनके समीप ही भूदेवी एवं श्रीदेवी खड़ी हैं। ऊपर सूर्य एवं चन्द्र को दर्शाया गया है।

इस पौराणिक कथानक के ऊपर गवाक्षों में स्त्रियाँ नृत्यमुद्रा में दृष्टि-गोचर होती हैं। ये आठ स्त्रियाँ पृथक-पृथक झरोखों में हैं। इनके हाथों की मुद्रा एवं केशसज्जा पृथक–पृथक है। परिचारिका के रूप में एक स्त्री द्वार पर अवस्थित दर्शायी गयी है। ऐसा प्रतीत होता है कि समारोह के साथ ही नैपथ्य में नृत्य-संगीत हो रहा है।

इस पौराणिक-आख्यान के समीप ही तोरण में दायें ओर गीत-नृत्य का दृश्य है, जिसके कारण यह तोरण विशेष उल्लेखनीय रहा है। पवाया के इस नृत्य-दृश्य में स्त्रियों को नर्तक एव वादकरूप में सामूहिक रूप में दर्शाया गया है। मध्य में प्रमुख नर्तकी सुन्दर भावभंगिमा में नृत्य कर रही है। उसका दायां पैर बायें पैर के दूसरी ओर है और बायां पैर पीछे की ओर कुञ्चित अवस्था में अवस्थित है। उसके हाथ कटकमुख हस्तमुद्रा में एवं लता हस्तमुद्रा में हैं। उसकी ग्रीवा दायीं ओर झुकी हुई है। नर्तकी एक निश्चित ताल एवं लय में नृत्य कर रही है। उसके स्तनों पर लम्बा उत्तरीय बंधा हुआ है एवं कटि पर झीना अधोवस्त्र धारण किये है, जिस पर किंकणियों की झालर लटक रही है। कानों में झूमरदार कर्णाभरण एवं हाथों में कुहनी तक चूड़ियाँ धारण किये है। नर्तकी की ही पंक्ति में दो वादक–स्त्रियाँ अवस्थित हैं। दायीं ओर की वादिका बायलिन के सदृश वाद्य-यंत्र बजा रही है एवं बायीं ओर की वादिका 'समुद्रगुप्त की मुद्रा' में अंकित वीणा के सदृश वाद्य–यंत्र बजा रही है। इनके कुछ ऊपर ही दो वादिकायें बैठी हैं जिसमें से एक बाँसुरी बजा रही है एवं दूसरी ढपली बजा रही है। सबसे ऊपर पार्श्व में चार स्त्रियाँ अवस्थित हैं, जिनमें से एक-दो मृदंग बजा रही हैं, उनके समीप बैठी एक अन्य स्त्री मात्र गायन कर रही है। इन सबमें प्रमुख एक स्त्री मंजीरा बजा रही है, जो कि सम्पूर्ण नृत्य-संगीत-समारोह की संचालिका प्रतीत होती है। एक अन्य स्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथ में कमल या पंखा लिये सम्पूर्ण समूह का निरीक्षण कर रही है। सम्पूर्ण समूह की रचना काफी महत्वपूर्ण है। तन्तुयुक्त वाद्य-यंत्र सबसे सामने स्थित है और ऐंठे हुए वाद्य-यंत्र बाद में हैं। सबसे अन्त में प्रमुख लय और ठोककर बजाने वाले यंत्र हैं। यहाँ पर भरत नाट्यम के सदृश ही वादक बैठे हुये हैं।[1]

वादक स्त्रियाँ पृथक-पृथक पीठिका पर भिन्न-भिन्न मुद्रा में बैठी हुई हैं। इनकी केशसज्जा भिन्न-भिन्न प्रकार की है। अधिकाँश स्त्रियों की केशसज्जा दो भागों में विभक्त है, जो कि बहुत ही आकर्षक है। उनकी मुखभंगिमा ऐसी प्रतीत होती है जैसे वे गायन एवं वादन में पूर्णतया तल्लीन हैं। बीच में दीपक जल रहा है। सम्पूर्ण दृश्य बहुत ही स्वाभाविक एवं कलात्मक है। स्त्रियों की समानुपातिक देहयष्टि और भंगिमा, सुनियोजित अलंकरण, सुन्दर केशसज्जा एवं मुख पर प्रदीप्त सहज-स्वाभाविक सौन्दर्य गुप्तकलाकार की प्रवीणता को दर्शाता है।

तोरण के पृष्ठ भाग में षडानन कार्तिकेय एवं पौराणिक कथानक—समुद्र-मंथन को अंकित किया गया है। षडानन कार्तिकेय समभंगमुद्रा में अवस्थित हैं। उनके छः मुख एवं द्वादश भुजायें हैं। कार्तिकेय की यह प्रतिमा उत्तर भारत की प्रारम्भिक कार्तिकेय की प्रतिमाओं का प्रतिनिधित्व करती है।[2] कार्तिकेय के सिर पर सर्पों का घटाटोप है, यह लक्षण उत्तर भारत में कार्तिकेय की किसी अन्य प्रतिमा में नहीं मिलता है। कार्तिकेय की प्रसारित भुजाओं में कोई-भी लाञ्छन नहीं है।

तोरण के इसी भाग में दूसरी ओर (कार्तिकेय के समीप में ही) समुद्र-मंथन का वृत्तान्त दर्शाया गया है। पुराणों के अनुसार अमृतप्राप्ति-हेतु देवों एवं दैत्यों ने समुद्रमंथन किया था, जिसमें विष्णु ने कच्छपरूप धारण करके अपने पृष्ठ पर मन्दराचल पर्वत धारण किया था। मरुपर्वत की मथानी एवं वासुकि नाग की नेती को पुरुषविग्रह में चार देव खींच रहे हैं। ऊपर ब्रह्मा, विष्णु एवं सूर्य अंकित हैं। समुद्र-मंथन के द्वारा निकाला अमृतघट लिये वैद्यराज धन्वंतरि, देवी लक्ष्मी, उच्चैश्रवा अश्व समीप ही दृष्टिगोचर हो रहे हैं। सम्पूर्ण वृत्तान्त समुद्रमंथन के पौराणिक कथानक को चरितार्थ कर रहा है।

पवाया का यह तोरण पुराणों में वर्णित वैष्णव-आख्यानों को उत्कृष्ट रूप में दर्शाता है। इसकी तुलना एरण, देवगढ़, मण्डोर आदि स्थानों के 'पैनल' से कर सकते हैं। पवाया के नागों की कला के प्रचलित अलंकरणों एवं अभिप्रायों को गुप्तकलाकार ने इसमें अपनाया है और अपने सुसंस्कृत-मस्तिष्क से इसमें अभिवृद्धि की है। कलाकार ने पौराणिक-आख्यानों के अतिरिक्त उन्नत प्रसाधन-कला एवं सुरुचिपूर्ण सामाजिक जीवन का प्रतिबिम्ब तोरण में अंकित किया है।※

1. Vatsyayan, Kapila, 'Classical Indian dance in literature and the arts,' New Delhi, 1968. P. 348.
2. Sinha, Kanchan, 'Karttikeya in Indian art and literature', P. 120.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनकवि नागार्जुन का रचना-संसार

समीरवरण नन्दी
हिन्दी–प्राध्यापक,
गुरुकुल महाविद्यालय
ज्वालापुर (हरिद्वार)

नागार्जुन आज़ाद भारत के जनकवि हैं। उन्होंने स्वयं को तरल आवेगों-वाला अति भावुक, हृदयधर्मी जनकवि कहा है। कहते हैं—

जनता मुझसे पूछ रही है,
क्या बतलाऊँ।
जनकवि हूँ, मैं साफ कहूँगा,
क्यों हकलाऊँ?
जनकवि हूँ मैं, क्यों चाटूँ मैं थूक तुम्हारी।
श्रमिकों पर क्यों चलने दूँ बन्दूक तुम्हारी?

रूसी महान् साहित्यकार गोर्की मख़ीम उनके प्रिय लेखक हैं। उन्हीं की तरह घुमक्कड हैं।

वाघ्यतामूलक घुमक्कडी ने भर दिया था रग-रग में कडवापन
तभी तो दे गये हो तिक्ततम अनुभूतियों का रसायन।
मात है करेला, मात है नीम! गोर्की मख़ीम।

और स्वयं नागार्जुन?

इसी आधार पर नागार्जुन कहते हैं—

प्रतिहिंसा हो स्थायी भाव है मेरे कवि का।
जन-जन में जो ऊर्जा भर दे, मैं उद्गाता हूँ उस रवि का।

यह वह आक्रोश है जो नागार्जुन को जनकवि बनाता है।

इसी प्रतिहिंसा में उन्होंने, हिंसा की छत्रछाया में सुरक्षित, अहिंसा को पाया। उन्होंने ये सब जनता की जमीन और जेहन पर स्थिर रहकर ही किया है। उनकी रचनायें जिस जनता को संबोधित और समर्पित हैं अथवा जिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनता की चित्रवृत्तियों की वह प्रतिमूर्ति हैं, वह मध्यमवर्ग से लेकर निचले-से-निचले तबकों तक फैली हुई है। उसमें देश का बहुसंख्यक अशिक्षित और पिछड़ा हुआ समाज भी है, और वे लोग भी, जो अपेक्षाकृत सुशिक्षित और सुसंस्कृत हैं। जो बात देखने की है वह यह कि नागार्जुन जिस जमीन पर खड़े होकर व्यापक जनसमाज को संबोधित करते हैं अथवा उसका चित्रण करते हैं, वह देश के साधारणजन की अपनी जमीन है, उसकी अपनी मानसिकता है। नागार्जुन मिसाल हैं एक ऐसे जनवादी रचनाकार की, जो अपने को पूरी तरह 'डीक्लास' कर चुके हैं, जो देश के करोड़ों-करोड़ों साधारणजनों की भाँति ही सोचते और आचरण करते हैं, साथ ही जो इतने विवेकशील भी हैं कि साधारण-जनों की सोच में परम्परा से चली आ रही जीवनप्रक्रिया के फलस्वरूप जो असंगतियाँ, संस्कारबद्धता एवं प्रतिगामिता आ गई है, उनके प्रति पूरी तरह चौकस और आलोचनात्मक हैं। नागार्जुन देश की साधारण जनता की प्रगति-कामी ऊर्जास्वित और प्राणमयी चेतना से पूरी तरह एकात्मक करने वाले उसके प्रतिनिधि रचनाकार हैं। उनकी सर्जना साधारणजनों के जीवन से रस लेती है, प्राणशक्ति अर्जित करती है, किन्तु साधारणजन को शिक्षित भी करती है, उसकी कमजोरियों पर उंगली रखती है, उसे माँजती, निखारती भी है। प्रेमचन्द की सर्जना जिस प्रकार कथा-साहित्य के क्षेत्र में जनवादी रचनाशीलता की एक मिसाल है, कविता के क्षेत्र में नागार्जुन की सर्जना को वैसी ही मिसाल माना जा सकता है। प्रेमचन्द के पाठकों का समाज जिस प्रकार, अथवा प्रेमचन्द को समझने वालों का समाज जिस प्रकार बहुत पढ़े हुओं से लेकर कम पढ़े हुए, यहाँ तक कि अशिक्षित मानी जाने वाली जनता तक फैला है, उसी प्रकार नागार्जुन के पाठक और श्रोता भी पंडितों से लेकर कुली-मजुरी करने वालों तक फैले हुए हैं और यही नहीं वे उनकी कविता से हरकत में भी आते हैं, उस पर बातचीत और बहस करते हैं, उसे अपने बीच की और अपने में से उगी हुई रचना की तरह लेते हैं। जनवादी विषयवस्तु के साथ कलात्मक परिष्कृति में जिस प्रकार प्रेमचन्द की सर्जना एक उदाहरण है, उसी प्रकार नागार्जुन की भी। नागार्जुन की व्यंजनाएँ तथाकथित शिक्षित लोग समझने में भले चूक जाएँ, साधारणजन इस कारण उन्हें समझ लेता है कि वे उसकी अपनी जिन्दगी से जुड़ी व्यंजनाएँ हैं, उसके मुहावरे उसके अपने हैं, उनकी अन्तर्वस्तु से उसका अपना नज़दीक का रिश्ता है। यह बात नागार्जुन की राजनीतिक तेवरवाली रचनाओं के लिए ही सच नहीं है, यह उनकी उन रचनाओं पर भी पूरी तरह लागू होती है जो राजनीतिक-सामाजिक मुद्दों से अलग, सीधे मनुष्य की गहन अनुभूतियों से जुड़ती हैं, जिनमें शृंगार, वात्सल्य, दाम्पत्य या कि मानवीय करुणा को उसके समूचे वृत्त में उभारा गया है। इनमें वे कविताएँ भी हैं जो धरती और धरती के कोटि-कोटि सामान्यजनों के प्रति कवि के निश्छल तथा आत्मीय लगाव को मूर्त्त करती हैं, प्रकृति की नाना भंगिमाओं से सम्बन्ध रखती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं और सामंती-पूँजीवादी व्यवस्था के नरक को समूचे यथार्थ में उद्घाटित करती हैं। नागार्जुन की इन सारी रचनाओं में हर प्रकार के पाठक तथा श्रोता-वर्ग की शिरकत है। सम्प्रेषणीयता की जो समस्या हमारे तमाम आधुनिकता-वादियों को हलकान किए हुए है, प्रेमचन्द या कि नागार्जुन के यहाँ वह कोई समस्या नहीं है। इन आधुनिकतावादियों पर उन्होंने व्यंग्य कसा है। 'वे और तुम' कविता में—

वे लोहा पीट रहे हैं, तुम मन को पीट रहे हो।
वे पत्थर जोड़ रहे हैं, तुम सपने जोड़ रहे हो।
उनकी घुटन ठहाकों में घुलती है, और तुम्हारी
घुटन उनींदी घड़ियों में चुरती है।
वे हुलसित हैं,
अपनी ही फसलों में डूब गए हैं।
तुम हुलसित हो,
चितकबरी चाँदनियों में खोए हो।
उनको दुःख है,
नए आम की मंजरियों को पाला मार गया है।
तुमको,
दुःख है काव्य-संकलन दीमक चाट गए हैं।

वे, अर्थात् इस धरती की श्रमरत जनता और तुम अर्थात् उसका एक अंग होते हुए भी अपनी निजता में बद्ध, अपनी विशिष्टता के अहं में उससे अलग-थलग पड़े रचनाकार बुद्धिजीवी ! साधारण श्रमरतजन और उससे कटे हुए लोगों की मानसिकता यहाँ एक स्तर पर समूची सफाई के साथ, किन्तु दूसरे स्तर पर व्यंग्य की पैनी धार से गुजर गई है। सारे प्रगतिशील आलोचक व्यंग्य को कविता की धार मानते हैं। भारतेन्दु और उनके काल के लेखकों के बाद एकमात्र 'निराला' में यह व्यंग्य प्रमुखरूप में चित्रित हुआ है। आज़ाद भारत के सारे साहित्य में इसकी कमी नज़र आती है। पर नागार्जुन की वर्गसंघर्ष की धारणा और उनकी प्रतिहिंसा की भावना इसी व्यंग्य के रूप में ही प्रकट हुई है। डा० नामवरसिंह नागार्जुन को कबीर के बाद सबसे बड़ा दूसरा व्यंग्यकार मानते हैं। नागार्जुन एक कविता में स्वयं स्वीकारते हैं :

'हमने कबीर का पद ही घोखा है'

शासकवर्ग का कोई भी तबका इस व्यंग्य की मार से बच नहीं पाया है। नागार्जुन के यहाँ व्यंग्य के विषय ही विविध नहीं हैं, व्यंग्य के काव्यरूप भी विविध हैं। उनके ये व्यंग्य भारतीय जनता की प्रखर राजनीतिकचेतना के साथ ही, उसके सहजबोध और ज़िन्दादिली के भी अचूक प्रमाण हैं। इसमें भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे महत्वपूर्ण हैं, लोकधुन पर रची गयी कविता— 'तीनों बन्दर बापू के'। बापू के भी ताऊ निकले तीनों बन्दर बापू के'। दूसरा है— 'भूदान' आन्दोलन के समय लिखा गया 'हर गंगे' टेक वाला गीत—

ऊसर बंजर और श्मशान।
संत विनोबा पावै दान…हर गंगे।

उसी क्रम में सन् ५४ के लिखे उस झण्डागीत का भी उल्लेख किया जा सकता है, जिसकी टेक है—

दस हज़ार, दस लाख मरे, पर झण्डा ऊँचा रहे हमारा।
कुछ हो कांग्रेसी शासन का डण्डा ऊँचा रहे हमारा।

पूंजीवादी शासनव्यवस्था के जनप्रतिनिधियों का व्यंग्यचित्र नौटंकी की परिचित धुन और शब्दावली में इस प्रकार खींचा गया है—

स्वेत स्याम रतनार अंखिया निहारके
सिण्डकेट प्रभुओं की पगधूर झारके
लौटे हैं दिल्ली से कल टिकट मारके
खिले हैं दाने ज्यों अनार के
आये दिन बहार के।

राजनीतिज्ञों के साथ-साथ नागार्जुन के व्यंग्य के लक्ष्य सामन्ती-पुरहिती अवशेषों के अलावा, नये उभरते हुए पूँजीपतिवर्ग के लोग भी हैं, जिनके चक्कर में कभी-कभी बुद्धिजीवी भी आ जाते हैं। ऐसे ही हैं एक प्राध्यापक-मित्र जो इस बात पर मगन हैं कि मुलुण्ड में एक व्यवसायी ने सौरभ-द्रव्यों का एक नया उत्पादनकेन्द्र आरम्भ किया है, जिससे इर्द-गिर्द बीसियों किलोमीटर हो उठते हैं मुअत्तर! उन्हें कवि पर झुंझलाहट है कि आपकी गन्ध-चेतना ठस तो नहीं हुई? अन्त में उन्होंने स्वयं ही 'नथुने फुला-फुला के वो मुअत्तर हवा भरली अन्दर'। इसी तरह कहीं बतर्जे 'गज़ल' पैसा चहक रहा है, कहीं शादी के नाम पर वैभव का उन्मत्त प्रदर्शन हो रहा है, जहाँ कवियों की चिकनी वाणी में दूर्वादल हिलते हैं। नागार्जुन को इस भद्रवर्ग के धन-वैभव से अधिक खीज उसके संस्कृति-प्रेम के ढोंग पर है, जिसका चुभता चित्र है— "प्लीज एक्सक्यूज मी…" कविता में।

नागार्जुन के शब्दों में दरअसल वे 'पढ़ुआ खाऊ और तिकड़म के ताऊ' हैं। इस पंक्ति में वे आधुनिकतावादी कवि भी हैं 'जो पढ़ते हैं एजरा-पाउण्ड-इलियट। बाकी सबको समझते हैं इडियट।' इनमें कुछ निम्न मध्यवर्ग के हैं जिनके बारे में नागार्जुन थोड़ी सहानुभूति के साथ पंक्ति जोड़ते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम है भारी आमदनी हलकी ।
चिन्ता है कलकी ।

इसी व्यंग्य के चलते आधुनिकतावाद से साफ़-साफ अछूते रहकर भी वे आधुनिक हो सके ।

यहाँ मैं नागार्जुन को उन कविताओं का जिक्र नहीं कर रहा हूँ जो ठेठ आज के सन्दर्भों में, आज की राजनीति और आज की सत्ता के प्रभुओं की खाल उतारती है । इनमें आपात्काल से सम्बंधित तमाम रचनाएँ तथा 'इन्दु जी' को सम्बोधित कविताओं के अलावा वे सारी रचनाएँ शामिल हैं जो नागार्जुन अपने रचनाशक्तिजीवन के प्रारम्भ से ही लिखते आ रहे हैं और जिन्हें वे ठेठ जनता के बीच खड़े होकर उनके साथ मिल-जुल कर पढ़ते और सुनाते हैं । मैं यहाँ उनकी उन रचनाओं को रेखांकित करना चाहता हूँ जो समसामयिक सन्दर्भों से अलग कविता को उन शर्तों के साथ ग्रहण करती हैं जिनके अभाव में आज की प्रगतिशील रचना-कर्म पर आरोप लगाया जाता है तथा मनुष्य की संवेदना को भीतर तक छूने और उभारने वाली कविताएँ हैं और इन कविताओं में भी नागार्जुन की रचनाशीलता का जनवादी चरित्र वैसे ही निखरा हुआ है, जैसे कि उनकी दीगर कविताओं में, जो ठेठ आज के जनसंघर्षों और आन्दोलनों से सम्बन्धित हैं । उनकी एक प्रकृति-कविता है—

"अबकी इस मौसम में कोयल आज बोली है पहली बार"

तथा उनकी प्रणय-कविता है—

"कर गई चाक तिमिर का सीना जोत की फांक, यह तुम थी"

इस प्रकार की पचासों कविताएँ हैं जो अपनी कलात्मक परिष्कृति तथा अपनी संवेदनात्मक बनावट में आज के किसी भी कवि की रचनाशीलता से बेजोड़ हैं । फिर भी इनके बिम्ब, भाषा, इनका एक–एक रंगरेशा आम जनता के जीवन से इतना नज़दीक से जुड़ा है कि ये जनता के किसी भी तबके के समक्ष अपनी समग्र संवेदना तथा प्रभाव के साथ ग्राह्य हैं । 'अकाल और उसके बाद' विश्व-विख्यात कविता में उसकी बुनावट में कुछ भी ऐसा नहीं जो अलग से विशिष्ट दिखाई दे । यही नागार्जुन का जनवादी चरित्र है जिसे बहुत साधना से प्राप्त किया गया है । इसके लिए कवि को जनता के जीवन में गहरे धंसना पड़ा है । अपने मन पर चढ़े संस्कारों को निर्मम होकर उधेड़ना पड़ा है । अपने को मनप्राणों से व्यापक जनता के साथ घुला देना पड़ा है । जनता के जीवन के साथ नागार्जुन के रचनाकार का यह जो एकात्म है, उनकी रचना-ताजगी का यह सबसे प्रधान कारण भी है । नागार्जुन के रचनाकार तथा उनकी रचना में जो अद्भुत ताजगी है, उसका एक महत्त्वपूर्ण कारण युवाओं से युवा उनका रचनाकार-मानस है । वे समय की गतिविधि के सजग सृष्टा हैं, तथा समय की यह प्रगतिशील उठान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अगवानी करने में अगुआ हैं। जन–उभार को देखकर वे बच्चों की तरह उत्साहित हो उठते हैं। गो कि नागार्जुन भावुक नहीं हैं, उनके पास परिपक्व राजनीतिक विवेक है, फिर भी जनता उनकी सबसे बड़ी कमजोरी है। इसी कमजोरी को कई बार अवसरवादी राजनीति ने उनसे भुनाया है, उनकी राजनीतिक समझदारी पर उंगली उठाई गई है। नागार्जुन का बड़प्पन है कि दूसरों से अधिक उन्होंने स्वत: अपनी आलोचना की है और ठोकर खाकर वे पुन: बेहतर भविष्य के लिए संघर्षरतजन के साथ दुगुने संकल्प से खड़े हो गये हैं।

बहुत कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह उत्सवधर्मिता जनकवि नागार्जुन की वर्ग–चेतना का ही एक अंग है। यदि इस सौन्दर्यबोध में किसी प्रकार की कुण्ठा नहीं है तो इसलिए कि नागार्जुन का वर्ग-चेतना का आधार कोई अमूर्त्त विचारप्रणाली या राजनीति का फौरी कार्यक्रम नहीं, बल्कि ठेठ जन-जीवन है। लेनिन की तरह नागार्जुन के लिए भी 'सत्य ठोस है' जीवन की छोटी-छोटी घटना में व्यक्त, आसपास हर चीज में मूर्त्त और इन सबके बीच स्वयं जनगण के क्रिया-कलाप में उत्साहित और जीवन्त। जैसा कि वे स्वयं कहते हैं—

कवि हूँ, सच है,
किन्तु क्षणिक तथ्यों को यों अवहेलित करके,
शाश्वत का सीमान्त कभी क्या छू पाऊँगा ?

इसलिए अपने ठोस यथार्थबोध के कारण नागार्जुन, विचार-प्रणाली के फीते से हर कविता को नापने वाले आलोचकों को फेर में डाल देते हैं और उन्हें नागार्जुन अनेक असंगतियों के पुञ्ज लगते हैं। इतना ही नहीं—

मन करता है,
नंगा होकर मैं खड़ा रहूँ, सागर के तट पर।
यों भी क्या कपड़ा मिलता है ?

जैसी कविता से उन्हें अराजकतावादी मानने लगते हैं। इसमें अराजकता-वादी विद्रोह का आभास तो मिलता है, पर गौर से देखें तो इस पागलपन में एक पद्धति है। इसी आत्मविश्वास के साथ वे एक ही सांस में कहते हैं—

प्रतिबद्ध हूँ, सम्बद्ध हूँ, आबद्ध हूँ।

प्रतिबद्ध—अपने आपको भी व्यामोह से बारम्बार उबारने की खातिर।
सम्बद्ध—सबसे और किसी से नहीं। और जाने किस-किस से।
आबद्ध—रूप, रस, गन्ध और स्पर्श से, शब्द से, नाद से, ध्वनि से, स्वर से,
इंगित आकृति से...... सच से, झूठ से, दोनों की मिलावट से..........
विधि से, निषेध से..........।

इस प्रकार नागार्जुन का काव्य इस धारणा का जैसे प्रत्याख्यान है कि कविता विचारों से ही लिखी जाती है। ❋❋

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरु का स्वरूप

—आचार्य वेदप्रकाश शास्त्री
रीडर, संस्कृत विभाग,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

गुरु शब्द का श्रवण होते ही एक अद्भुत, विलक्षण, वैदुष्य से ओत-प्रोत, तपःपूत, निष्ठावान्, दिव्यगुणों से परिपूर्ण, तथा क्षणे-क्षणे अभिनव रूप में दर्शनीय व्यक्तित्व चक्षुगोचर होने लगता है, जिसका ध्यान होते ही मानव-मन में सहज श्रद्धा का भाव प्रोद्भूत होकर उसको नम्र, शिष्ट, शालीन तथा अनुशासित होने की प्रेरणा करने लगता है। गुरु शब्द आकार में जितना अल्प है उतना ही आर्थिक दृष्टि से महान है। गुरु की गम्भीरता, गहनता, तथा महनीयता का अनुभव सभी को होता है। गुरु की निःसीम शक्ति का ध्यान करते हुए ऋषियों ने परमपिता परमात्मा को गुरु शब्द से कहा है। अतएव योगदर्शन में गुरु शब्द का प्रयोग महर्षि पतञ्जलि ने परमात्मा के लिए किया- "स हि पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ।" योग द० १।६। अर्थात् वह परमात्मा कालादि से अनवच्छिन्न होने के कारण पूर्व-पूर्ववर्ती ऋषियों का गुरु है। क्योंकि सृष्टि के आदि में मानव-कल्याणार्थ चार ऋषियों को परमात्मा ने ही श्रुति शब्दवाच्य वेद का ज्ञान दिया। ऋषिमन में परमात्मा द्वारा गीर्ण वेदज्ञान ही सम्पूर्ण विद्याओं से परिपूर्ण है। मानवहित की दृष्टि से मानव-मस्तिष्क में उद्भिन्न प्रत्येक सत्यविद्या का मूलस्रोत परमात्मप्रदत्त वेदज्ञान ही है। अतः परमात्मा को ही सर्वप्रथम गुरु शब्द से व्यवहृत किया गया है। गुरु शब्द की निष्पन्नता "गृ-शब्दे" से हुई है। कुछ विद्वानों ने गृ-निगरणे से भी गुरु शब्द निष्पन्न माना है तथा दोनों धातुओं से निष्पन्न गुरु शब्द अपनी व्युत्पत्त्यात्मक एकरूपता को ही समेटे हुए है। ईश्वर के लिए प्रयुक्त गुरु शब्द की व्युत्पत्ति का प्रकार यह हो सकता है— "गिरति अज्ञानमन्तर्यामिरूपेणाविद्यां नाशयतीति गुरुः" यद्वा— "गीर्यते स्तूयते जीवनिकरैरिति गुरुः" सर्वान्तर्यामि रूप में सभी जीवों का अज्ञाननिवारक तथा ज्ञानप्रकाशकारक परमात्मा ही है। संसार के सभी जीवों का एकमात्र स्तुत्य वह देवादिदेव परमात्मा ही है। अतः प्रमुख साहित्य में जहाँ शिव, विष्णु, ब्रह्मा एवं बृहस्पति आदि के लिए गुरु शब्द का प्रयोग किया है, वहाँ वह एकमात्र सर्वशक्तिमान्, सर्वेश्वर, अजर, अमर, अभय, नित्य, सर्वान्तर्यामि परमात्मा का ही वाचक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा के वेदज्ञान को विभिन्न प्रकार से प्रचारित एवं प्रसारित करने वाला ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण तपःपूत होकर मनस्विता, वर्चस्विता तथा तेजस्विता में अग्रगण्य होकर जब समाज में अपने दिव्यगुणों के कारण प्रतिष्ठित हो गया तब उसको गुरु शब्द से सम्मानपूर्वक व्यवहृत किया जाने लगा। क्योंकि ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण का प्रमुख कार्य वेदादि का सदुपदेश कर, मानव-समाज को अविद्या से दूर कर, विद्या में प्रवृत्त करना ही माना जाता है। उक्त गुणों से युक्त विद्यावान् उपदेष्टा को गुरु कहते हुए निम्न व्युत्पत्ति की जा सकती है— "गृणाति उपदिशति वेद-शास्त्राणि यद्वा गीर्यते स्तूयते शिष्य वर्गैरिति गुरुः"।

महाराज मनु ने गुरु के स्वरूप को एक विशिष्ट शब्दावली के साथ प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार विशेषप्रक्रिया को जीवन में अपनाने वाले व्यक्ति को गुरु कहा गया है–

यथा— निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि।
सभाजयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते ।। मनु० २।१४२

अर्थात् जो निषेकादि (गर्भाधानादि) संस्कारों को यथाविधि करता है तथा अन्नादि की व्यवस्था से परिपुष्ट करता है वह विप्र गुरु कहा जाता है। आचार्य कुल्लूक भट्ट ने यहाँ पिता को गुरु रूप में स्वीकृत किया है। उन्होंने विधिपूर्वक निषेकादिसंस्कार का कर्त्ता पिता को स्वीकार किया है, जैसा कि उनकी टीका से स्पष्ट है— "निषेको गर्भाधानं तेन पितुरय गुरुत्वोपदेशः, गर्भाधानादीनि संस्कारकर्माणि पितुरुपदिष्टानि यथा— शास्त्रं यः करोति अन्नेन च संवर्धयति स विप्रो गुरुरुच्यते।"

महाराज मनु ने वेदों के अध्यापयिता आचार्य को गुरु शब्द से बोधित करके सम्मानित किया है क्योंकि "गृणाति उपदिशति वेदान्" इस व्युत्पत्ति के अनुसार वेदों का विधिवत् उपदेश का कर्त्ता गुरु होता है। आचार्य यथाविधि वेदोपवेद का सर्वाङ्ग अध्ययन करके पुनः विद्यार्थी को वेदज्ञान प्रदान करता है। अतएव मनु ने आचार्य के चरणों में उपतिष्ठ होकर वेदाध्ययनकर्त्ता के विषय में कहा है—

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम्।
तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा।। मनु० ३।१।

इस प्रकार आचार्य से वेदाध्ययन करके आचार्य (गुरु) की आज्ञा से ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश का अधिकार ब्रह्मचारी को दिया गया है। यथा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि।
उद्वहेत् द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥ मनु० ३।४।

इस प्रकार मनु जी ने सर्वाङ्ग वेदाभ्यास कराने वाले आचार्य के लिए गुरु शब्द का प्रयोग किया है। संसार में देखा जाता है कि जो समग्र वेदों का अध्यापन तो नहीं कराता किन्तु एकदेशीय वेदज्ञान को प्रदान करता हुआ, शिष्य की ज्ञान-वृद्धि करता हुआ, मार्ग-निर्देशन कराता है, वह भी गुरु पद को प्राप्त करता है। अतएव क्वचित् गुरु शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार भी द्रष्टव्य है—"गृणाति उपदिशति किञ्चिदपि यः सोऽपि गुरुरेव"। मनु जी ने इस व्युत्पत्ति के औचित्य का निर्वाह करते हुए स्वयं स्वीकार किया है कि अल्पता में भी विद्यादान का कर्त्ता गुरुपद से व्यवहर्त्तव्य है। यथा—

अल्पं वा बहु वा यस्य श्रुतस्योपकरोति यः।
तमपीह गुरुं विद्याच्छ्रुतोपक्रियया तया ॥ मनु० २।१४९।

संसार में प्रायः देखा जाता है कि समय-समय पर कुछ ऐसी दिव्य विभूतियों के दर्शन होते हैं जिनका व्यक्तित्व प्रभावशाली होता है तथा जो अपने सदाचार, तपस्या, एवं निष्ठा से परिपूर्ण जीवन को अन्तर्मुखी वृत्ति के साथ जीते हुए, निरन्तर वेद एवं शास्त्रों के अभ्यास में रत रहते हैं। इस प्रकार के श्रद्धेय व्यक्तित्व के लिए भी गुरु शब्द का प्रयोग किया जाता है। संसार के समस्त साधु, सन्त, महात्मा, तपस्वी गुरुपद वाच्य हैं, इसकी पुष्टि निम्न व्युत्पति के अनुसार हो जाती है "गीर्यते स्तूयतेऽसौ ज्ञानतपोवृद्धत्वात्" अर्थात् जो ज्ञानवृद्ध तथा तपोवृद्ध है वह गुरु स्थानीय है। अतएव कहा है कि "ज्ञानप्रभावान्वितत्वात् तपोबल प्राधान्याद्वा पूज्यतमो महात्मा गुरुरुच्यते।" अर्थात् जो व्यक्ति समाज में नैतिक-मूल्यों के प्रति जागरूक होकर मानव-समाज को शुद्ध विचार देता है, ईश्वर के प्रति विश्वास को जगाता है, आचार-विचार की पवित्रता का उपदेश करता है, उसको भी गुरु-सम्मान से सम्मानित करना कर्त्तव्य माना गया है। क्योंकि "गृणाति उपनीय संध्योपासनाचारादीनि कर्माणि उपदिशति इति गुरुः" इस व्युत्पत्ति के अनुसार धर्माचरण की ओर प्रवृत्त करने वाले उपदेष्टा को अथवा मन्त्रदाता को गुरु कहा जाता है। अतएव मनु ने भी इसी आशय को इस प्रकार व्यक्त किया है—

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः।
आचारमग्निकार्यञ्च सन्ध्योपासनमेव च ॥ मनु० २।६९।

यहाँ यह तो स्पष्ट है कि अक्षरविद्या के दाता को ही गुरु नहीं कहा जाता, अपितु शुचिता एवं आचारवादिता के प्रति निष्ठावान् व्यक्तित्व का निर्माण करने वाला गुरु कहा जाता है। लोक-परम्परा के अनुसार कुछ व्यक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य, उपाध्याय, एवं अध्यापक के अतिरिक्त एक स्थान पर आसीन, साधनालीन व्यक्ति को भी गुरु रूप में स्वीकार करते हैं तथा सुखात्मक एवं दुःखात्मक स्थिति में उससे विचार-विमर्श करके सत्त्वप्रधानवृत्ति के धनी होकर आत्मतोष प्राप्त करते हैं। इस प्रकार उपागत व्यक्ति के मनस्ताप का हरण कर आह्लादमयी स्थिति को उत्पन्न करने वाले व्यक्ति के लिए मन्त्रद गुरु का प्रयोग किया है। मन्त्रद गुरु का सत्यस्वरूप तो वास्तव में कल्याणकारी है तथा सर्वतोभद्र है किन्तु प्रायः देखा जाता है कि अधुनातनक्रम में मन्त्रद गुरु के विषय में जनसमूह भ्रांत हो जाता है तथा अनेक प्रकार से वञ्चक मन्त्रद गुरु की सन्निधि प्राप्त कर अज्ञानवश कुपथगामी हो जाता है। अतः मन्त्रद गुरु का चयन एवं वरण अत्यन्त सावधानी के साथ करना चाहिए। युक्तिकल्पतरु नामक ग्रन्थ में मन्त्रद गुरु के कुछ विशेष गुण व्याख्यात किए गए हैं जिनके आधार पर मन्त्रद गुरु की परीक्षा की जा सकती है, वे गुण निम्न हैं—

शान्तोदान्तो कुलीनश्च विनीतः शुद्ध वेशवान्।
शुद्धाचारः सुप्रतिष्ठः शुचिर्दक्षः सुबुद्धिमान् ॥
आश्रमी ध्याननिष्ठश्च मन्त्रतन्त्र विशारदः।
निग्रहानुग्रहेशक्तो गुरुरित्यभिधीयते ॥
उद्धर्त चैव संहतुं समर्थो ब्राह्मणोत्तमः।
तपस्वी सत्यवादी च गृहस्थो गुरुरुच्यते ॥ युक्तिकल्पतरु।

यह सत्य है कि गुरु ज्योतिपुञ्ज के रूप में स्वीकार्य है क्योंकि पथभ्रष्ट व्यक्ति को गुरुमुख से निःसृत शब्दज्योति ही प्रकाशदीपिका बनकर, उसके जीवनपथ को आलोकित करती है। अतः मानव-जीवन के साथ गुरु का सम्बन्ध अपरिहेय है। किन्तु इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि कोई कितव शठवृत्ति का आश्रय लेकर गुरुपद की गरिमा को नष्ट न करे, इसके लिए विशेष उत्तरदायित्व राजव्यवस्था का है। अतः राजा को चाहिए कि वह निर्दिष्टविशिष्ट गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वयं समर्चित करे तथा प्रजा को भी ऐसे ही दिव्यगुणों से युक्त व्यक्ति को गुरु रूप में मानने का आदेश दे। युक्तिकल्पतरु नामक ग्रन्थ में वरणीय गुरु के विशेष गुणों का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

सदाचारः कुशलधी सर्वशास्त्रार्थ पारंगः।
नित्यनैमित्तिकानां च कार्याणांकारकः शुचिः ॥
अपर्व मैथुनपरः पितृदेवार्चनेरतः।
गुरुमन्त्रोजितक्रोधो विप्राणां हितकृत सदा ॥
दयावान् शीलसम्पन्नः सत्कुलीनो महामतिः।
परदारेषु विमुखो दृढ़संकल्पो द्विजः ॥
अन्यैश्च वैदिक गणैर्युक्तः कार्यो गुरुर्नृपैः। युक्तिकल्पतरु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार जहाँ गुरु के स्तुत्यस्वरूप का वर्णन करके उसको वरणीय कहा है, वहीं ग्रन्थों में उन दोषों का भी वर्णन किया गया है जिनके कारण गुरु वर्जनीय हो जाता है। वे दोष ये हैं—

अभिशप्तमपुत्रञ्च सन्नध्यं कितवं तथा।
क्रियाहीनं कल्पाङ्गं वामनं गुरु निन्दकम् ॥
सदा मत्सर संयुक्तं गुरुं मन्त्रेषु वर्जयेत्।
गुरुर्मन्त्रस्य मूलं स्यात् मूल शुद्धौ सदा शुभम् ॥ कालिकापुराण।५४।

इस प्रकार भारतीय ग्रन्थों में जहाँ विद्यादाता, उपाध्याय, आचार्य, महात्मा, उपदेष्टा, साधनालीन संन्यासी को गुरु कहा गया है, वहीं पारिवारिक ज्येष्ठ-जनों के प्रति भी गुरुपद का प्रयोग किया गया है। पितृपक्ष के तथा मातृपक्ष के किस २ व्यक्ति को गुरुपद से अलंकृत किया जाए, इसका हमें स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। कूर्मपुराण में कौन-कौन व्यक्ति गुरु होते हैं, उसका वर्णन इस प्रकार है-

उपाध्याय: पिता ज्येष्ठभ्राता चैव महीपतिः।
मातुलः श्वशुरस्त्राता मातामह पितामहौ ॥
बन्धुर्ज्येष्ठः पितृव्यश्च पुंस्येते गुरवःस्मृताः ॥
मातामही मातुलानी तथा मातुश्च सोदरा ॥
श्वश्रूः पितामही ज्येष्ठाधात्री च गुरवः स्त्रिषु।
इत्युक्तो गुरुवर्गोऽयं मातृतः पितृतो द्विजाः ॥ कूर्मपुराण उपवि० अ०।१४।

महाकवि कालिदास ने उक्त मान्यता के आधार पर 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' नाटक में शकुन्तला को स्वपतिगृह प्रेषित करते समय "शुश्रूष स्व-स्वगुरून्" कह, माता-पिता तथा कुल के सभी ज्येष्ठ व्यक्तियों के लिए गुरु शब्द का प्रयोग किया है। राजा के लिए भी कालिदास ने गुरु शब्द का प्रयोग किया है, जैसे—

"तस्याः प्रसन्नेन्दुमुखः प्रसादं,
गुरु नृपाणां गुरवे निवेद्य।" रघु० २।६९।

इसी प्रकार विद्यादान करने वाले ऋषि के प्रति कालिदास ने ससम्मान गुरु शब्द का प्रयोग किया है। रघुवंश के पंचम सर्ग में जब वरतन्तु ऋषि का शिष्य कौत्स राजा रघु के समीप आता है तो सर्वप्रथम राजा उसके गुरु का कुशल जानने की इच्छा से इस प्रकार कहता है—

अप्यग्रणीर्मन्त्रकृतांमृषीणां।
कुशाग्रबुद्धे कुशली गुरुस्ते ॥
यतस्त्वया ज्ञानमशेषमाप्तं।
लोकेन चैतन्यमिवोष्णरश्मेः ॥ रघु०।५।४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास ने कुल-पुरोहित के लिए स्पष्ट गुरु शब्द का प्रयोग किया है। राजा दिलीप के द्वारा वशिष्ठ की सेवा का वर्णन इस प्रकार प्राप्त होता है—

गुरोः सदारस्य निपीड्य पादौ।
समाप्य सान्ध्यं च विधिं दिलीपः।। रघु० ।२।३।

इस प्रकार संस्कृत वाङ्मय में गुरु शब्द का बहुलता में प्रयोग देखकर यह कहा जा सकता है कि गुरु का अर्थ समाज में अत्यन्त व्यापक रहा है तथा यह भी सत्य है कि उसकी व्यापकता का आधार ज्ञानवृत्ति ही रही है। चाहे सम्बन्धों की ज्येष्ठता के आधार पर हमने किसी को गुरु कहा हो अथवा विद्या से किसी भी प्रकार सम्बन्ध रखकर, समाज का कल्याण करने वाले विद्वज्जन को गुरुपद से व्यपदिष्ट किया हो, सभी में गुरुता का कारण उपदेशवृत्ति ही रही है। अतः न केवल चेतन जगत में ही गुरु शब्द की व्यापकता है, अपितु अचेतन जगत में भी। यदि किसी ने वन, नदी, पर्वत, चन्द्रोदय या सूर्योदय को देखकर किसी प्रकार की ज्ञानात्मक प्रवृत्ति का उन्मेष होते देखा है, तो वह भी निःसन्देह गुरुपद वाच्य हो गया है, क्योंकि व्यक्ति को कहीं से भी बोध हो सकता है। अतएव किसी ने कहा है—

"कृत्स्नो हि लोको बुद्धिमतामाचार्यः शत्रुश्चाबुद्धिमताम्"।

वेद के ऋषि ने भी सम्भवतः इसी भावना के साथ—

"उपह्वरे गिरीणां सङ्गमे च नदीनाम्।
धिया विप्रो अजायत।।" यजु० ।२६।१५।

इस मन्त्र को कहकर बुद्धिमान्, मनस्वी, तेजस्वी, ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण होने का संदेश दिया है। यह समस्त संसार शब्दमय है। शब्द के प्रकाश में ही यह प्रकाशित है, शब्द ही ज्योति है, ज्योति ही जीवन है। अतः शब्द का अनाहत नाद जहाँ से उठता हो वही गुरु है, उस अनाहत नाद को नादित करने वाला प्रत्येक प्रेरक गुरु है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्ति से पुनरावर्तन

—डॉ० जयदेव वेदालंकार
रीडर एवं अध्यक्ष, दर्शन विभाग,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

गत अंक में महर्षि दयानन्द के मुक्ति से वापिस लौटने के सिद्धान्त की आलोचना पूर्वपक्ष के रूप में पढ़ें। इस अंक में पाठक महर्षि दयानन्द के उपर्युक्त सिद्धान्त का विस्तारपूर्वक अध्ययन कर सकते हैं।

—सम्पादक

मुक्ति से जीवात्मा वापिस लौट आता है, इस विषय में प्रायः कहा जाता है कि यह मान्यता केवल महर्षि दयानन्द की अपनी ही है। यह तो हो सकता है कि इस युग में उन्होंने ही यह मान्यता हमें बतलायी हो, परन्तु उनकी अपनी मान्यता है कि उनका वही मत है जो वेदादि सत्-शास्त्रों की मान्यता हैं। महर्षि अपनी मान्यता को सभी स्थलों पर सबसे पहले वेदों से सिद्ध करते हैं।

मुक्ति से जीवात्मा वापिस लौट आता है, इस सिद्धान्त को पूर्व-पक्ष और उत्तर-पक्ष द्वारा यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

पूर्व पक्ष— जिस प्रकार ईश्वर नित्य मुक्त है, उसी प्रकार जीव भो नित्य मुक्त हो जाये तो क्या हानि है ?

उत्तर पक्ष—ईश्वर की तो सदैव मुक्ति है। वह ससांर में कभी भी जन्म नहीं लेता है, न ही संसार में उसका कभी आना हो सकता है। जीवात्मा सदैव मुक्त नहीं है, वह बार-बार जन्म लेता है और मरता भी है। इसका निष्कर्ष यह है की जीवात्मा और परमात्मा का सामर्थ्य समान नहीं हो सकता है। अतः जीवात्मा मुक्त होने पर भी वह अनन्त सामर्थ्य वाला कभी नहीं हो सकता है। इस प्रसंग में आचार्य शंकर भी महर्षि दयानन्द के समान ही मानते हैं। उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मान्यता, वेदान्त दर्शन के इस सूत्र पर कि "जगद् व्यापार वर्ज प्रकरणाद-सन्निहित्वाच्च" (वेदान्त ४।४।१७)।

इस पर आचार्य शंकर भाष्य में स्पष्ट कहते हैं कि "जगदुत्पत्त्यादि व्यापारं वर्जयित्वान्यदणिमाद्यैश्वर्यं मुक्तानां भवितुमर्हति जगद् व्यापारस्तु-नित्यसिद्धस्येश्वरस्य" (शांकर भाष्य)।

अर्थात् जगत् की उत्पत्ति-आदि व्यापार को छोड़कर जीवात्मा को अन्य अणिमा आदि ऐश्वर्य तो प्राप्त हो जाते हैं परन्तु विश्व की रचनादि जीवात्मा नहीं कर सकते हैं। अतः महर्षि दयानन्द स्पष्ट लिखते हैं कि—"प्रथम तो जीव का सामर्थ्य शरीरादि पदार्थ और साधन परिमित हैं पुनः उनका फल अनन्त कैसे हो सकता है? अनन्त आनन्द को भोगने का असीम सामर्थ्य, कर्म और साधन जीवों में नहीं, इसलिये अनन्त सुख नहीं भोग सकते हैं। जिनके साधन अनित्य हैं उनका फल नित्य कभी नहीं हो सकता है"[1]।

पू० प०– मुक्ति से वापिस लौटने के सिद्धान्त का अनेक ग्रन्थ खण्डन करते प्रतीत होते हैं। क्या उनको प्रमाण न माना जाये? निम्नलिखित प्रमाणों से मुक्ति से जीवात्मा वापिस नहीं आता है, ऐसा स्पष्ट सिद्ध होता है।

(१) न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते (छा० ८।१५)
(२) स परम पदमाप्नोति यस्मात् भूयो न जायते (छा० उ०)
(३) न मुक्तस्य पुनर्बन्धयोगोप्य नावृत्ति श्रुतेः (सांख्य ६।१७)
(४) अनावृत्ति शब्दादमा वृत्तिशब्दात् (वे० ४-४-३३)
(५) यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम (गीता-१५।६)

इत्यादि प्रमाणों के होते हुए मुक्ति से पुनः लौटने के सिद्धान्त को कैसे सिद्ध किया जा सकता है?

उत्तर प०— वास्तव में इन सभी प्रमाणों के अर्थों को समझने में भ्रान्ति है। जीवात्मा अनादि काल से जन्म और मृत्यु के प्रवाह में जकड़ा हुआ है। जन्म और फिर मृत्यु यह अबाध चक्र रात और दिन की भाँति सदा से चला आ रहा है। जैसे कोई व्यक्ति प्रतिदिन हमारे पास आता है, परन्तु अचानक उसे कुछ वर्ष तक अन्यत्र जाना पड़ जाता है तो हम सामान्य व्यवहार में यही कह देते हैं कि अब वह नहीं आयेगा। क्योंकि उसके आने-जाने का बहुत दिनों का अबाध क्रम अब नहीं रहा है। वह तो दो वर्ष बाद पुनः आ जाता है। इसी प्रकार मृत्यु और जन्म के अबाध असंख्यक्रम में सृष्टि की रचना और प्रलय छत्तीस हजार बार हो, उतने लम्बे काल तक मुक्ति की अवधि में जीवात्मा

१—सत्यार्थ प्रकाश, नवम् समुल्लास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्ति में रहता है। उसका जन्म और मृत्यु का अबाध क्रम इतने लम्बे काल रुक जाता है। इसलिये कहा गया है कि वह अब पुनः नहीं लौटेगा।

मुक्ति में जीवात्मा रहता ही नहीं अपितु वह ब्रह्म है, जब वह अज्ञान के दूर हो जाने पर ब्रह्म अपने स्वरूप में ही आ जाता है अर्थात् मुक्ति में जीवात्मा रहता ही नहीं है। इस सिद्धान्त के मानने वाले आचार्य शंकर भी इन श्रुतियों का अर्थ क्या करते हैं? यह यहाँ पर उल्लेख करना सापेक्ष प्रतीत होता है। बृहदारण्यकोपनिषद् का यह वचन कि "ते तेषु ब्रह्म लोकेषु·········तेषां न पुनरावृत्ति" (छा० ६।२।१५)। इस पर आचार्य शंकर का भाष्य यह स्पष्ट करता है कि एक कालविशेष के बाद पुनः लौट कर आता है। यह उपर्युक्त वचन स्पष्ट कहता है कि वे मुक्त आत्मायें पुनः लौट कर नहीं आते हैं। परन्तु आचार्य शंकर का भाष्य यह है कि—संवत्सराननेकान् वसन्ति ब्रह्मणोऽनेकान् कल्पान् वसन्तीत्यर्थः तेषां ब्रह्मलोकं गतानां नास्ति पुनरावृत्तिः।"

अर्थात्, वह मुक्त आत्मा कल्पों तक मुक्ति में रहता है। तब तक उसका पुनरागमन नहीं होता है। आगे पुनः लिखते हैं कि यावद् ब्रह्मलोकस्थितिः तावत् तत्रैव तिष्ठति प्रकृततो नावर्तत इत्यर्थः (छा० ६।१५।१५ पर शंकर भाष्य)।

अर्थात्, ब्रह्मलोक अवस्था तक उनका पुनरागमन नहीं होता है। इतना हो इसी वचन का भाष्य करते हुये आचार्य शंकर और स्पष्ट करते हुये लिखते हैं कि "तस्मादस्मात् कल्पादूर्ध्व आवृत्ति गम्यते" अर्थात् अवधि के अनन्तर वह पुनः आता है।

यहाँ स्पष्ट करना आवश्यक है कि शंकर के अनुयायी यह कह सकते हैं कि उन्होंने यह बात प्रेयमार्ग से मुक्ति में गये जीवात्माओं के विषय में कही होगी। यहाँ यह द्रष्टव्य है कि उपनिषदों में यहाँ प्रसंग श्रेय और प्रेय का नहीं है। हमारा कहने का भाव यह है कि आचार्य शंकर भी किसी भी मुक्ति में गये जीवात्माओं की स्थिति एक निश्चित काल तक मानते हैं और पुनः आने की बात भी किसी न किसी रूप में स्वीकार कर लेते हैं।

महर्षि दयानन्द वेदों को स्वतः एवं परमप्रमाण स्वीकार करते हैं। अपने पक्ष में वे वेदों के मन्त्रों को प्रमाणरूप में प्रस्तुत करते हैं—

(१) कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारुदेवस्य नाम———पुनर्दातपितरं च दृश्ये मातरं च। (ऋ० १।१२४।१)

(२) अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां······(स०प्र०स० ९,८)

(३) पुनर्दात् पितरंच दृश्ये मातरं च (वही १।१२४।२) स नो मह्या आदितये पुनर्दात्·········(ऋ० १।१।४२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् वेद में कहा है कि किसका नाम पवित्र है। कौन अमृत अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कराता है और पुनः माता-पिता के दर्शन कौन कराता है। इसका उत्तर दिया है कि वह परमात्मा ही मुक्ति दिलाता है और मुक्ति के बाद माता-पिता के दर्शन कराता है।

उपनिषदों में भी इस प्रकार के प्रमाण उपलब्ध हैं कि जीवात्मा एक परान्तकाल तक ही मुक्ति में रहता है। "ते ह ब्रह्मलोके ह प्रान्तकाले परामृतात् (परामृताः) परिमुच्यन्ति सर्वे। (मुण्डकोपनिषद् एवं स०प्र० ६ समु०)

अर्थात्, जीवात्मायें मुक्ति में महाकल्प तक रहते हैं। इसकी गणना इस प्रकार की जाती है—४३ लाख २० हजार वर्षों की एक चतुर्युगी, दो हजार चतुर्युगियों का एक अहोरात्र। ऐसे तीस अहोरात्र का एक मास। ऐसे १२ महीनों का एक वर्ष, ऐसे शत वर्षों का एक परान्तकाल होता है। (३१ नील दस खरब चालीस अरब वर्ष होते हैं) इसका स्पष्ट अभिप्राय है कि यह बहुत लम्बा काल मुक्ति की अवधि का है। अनावृत्ति का अर्थ भी मुक्ति काल की अवधि पर्यन्त है।

कुछ विद्वान आपत्ति करते हैं कि जब जीवात्मा अज्ञान नष्ट होने से शुद्ध और पवित्र हो गया, तथा उसके सभी कर्मफल नष्ट हो गये, तभी मुक्ति होती है। पुनरागमन का हेतु क्या होगा? इसका बड़ा स्पष्ट उत्तर है कि जीवात्मा तो सदा ही शुद्ध और पवित्र रहता। केवल अन्तःकरण में अज्ञान होने के कारण वह अपने स्वरूप को नहीं समझता है। जब एक प्रकार जीवात्मा के कर्म या प्रयास का फल मुक्ति है तो किसी प्रयास या कर्म का फल असीम नहीं हो सकता है। अब पुनरागमन कैसे होता है, यह प्रश्न शेष रहता है। इसका उत्तर स्पष्ट है कि उसको उच्च योनि के माता-पिता के यहाँ पुनः जन्म लेना पड़ता है। जैसा लोहे का गोला अग्नि के सम्बन्ध से अग्नि के सदृश तेज अर्थात् अग्नि जैसा ही हो जाता है, परन्तु अग्नि सम्बन्ध हट जाने से वह सामान्य लोहे का गोला हो जाता है। ठीक इसी प्रकार जीवात्मा भी उस परमात्मा के मुक्ति-आनन्द को भोग कर अवधि समाप्त हो जाने पर, जब उससे पृथक् हो जाता है तो जीवात्मा का अपना सामान्य अवस्था हो जाती है। वह संसार में आकर पुनः मुक्ति प्राप्त करने हेतु कर्म कर सकता है।

इस विषय में यह भी कहा जा सकता है कि जीवात्मा की चार अवस्थायें—जाग्रत, सुषुप्ति, समाधि और मोक्ष हैं। इनमें प्रथम तीन अवस्थायें सीमित हैं। तब चतुर्थ मोक्ष अवस्था असीम कैसे हो सकती है? अतः महर्षि दयानन्द का मुक्ति से वापिस लौटने का सिद्धान्त व्यवहारिक, तात्विक तथा यथार्थ पर आधारित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्मभूषण श्री तकषी शिवशंकर पिल्लै ज्ञानपीठ से समादृत

डा० विष्णुदत्त राकेश
पी-एच०डी०, डी०लिट्०
आचार्य, हिन्दी विभाग,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में जहाँ मनुष्य की आत्मान्वेषीवृत्ति को प्रमुखता मिली, वहाँ सामान्यजीवन में घटित प्रतिरोध, परम्परा और आधुनिकता का द्वन्द्व तथा उसका विघटित परिवेश भी उसमें प्रतिबिम्बित है। विभिन्न आर्थिक वर्गों के लोगों के ह्रासोन्मुख जीवन के चित्रण के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि मानव का कई स्तरों पर विघटन हुआ है। मनोवैज्ञानिक यथार्थ एवं सामाजिक यथार्थ के प्रबल आग्रहों के कारण एक ओर मानसिक विकृतियों का चित्रण हुआ है, तो दूसरी ओर वर्गसंघर्ष और इतिहास की द्वन्द्वात्मकगति की अभिव्यक्ति का पक्ष प्रबल हुआ है। समाज के उखड़ते हुए ढाँचे और आर्थिक विपन्नता के कारण एक व्यापक रिक्तता का अनुभव हिन्दी ही नहीं, समस्त भारतीय भाषाओं के कथा-साहित्य में दिखाई पड़ता है।

स्वातंत्र्योत्तर मलयालमी उपन्यासों में मुस्लिम तथा ईसाइयों के जीवन-स्तर पर, दलित तथा उपेक्षित वर्गों के जीवनसंघर्ष पर अच्छे कथा-साहित्य की रचना हुई। थकाजी, बशीत, केशवदेव और एस०के० पोट्टेकाट ने लघु-उपन्यास तथा कहानियों की रचना की। प्रारम्भ में बंगला उपन्यासों के प्रभाव से रोमांटिक उपन्यासों की रचना होती रही। अंग्रेजी कथासाहित्य का प्रभाव पड़ा तथा रूसी रचनाकारों के मलयालमी अनुवादों ने भी कथाकारों की सोच में परिवर्त्तन किया। समकालीन जीवन की समस्याओं पर तकषी के थोट्टियुदे मकन (भंगी का लड़का), रंदि दुंगाजी (दो नाप) तथा पोट्टेकाट के मूडपटम् (घूंघट) उपन्यासों ने मलयालमी-साहित्य की परम्परित चेतना को ही बदल दिया। सामाजिकयथार्थ की धारा को अवतरित करने का श्रेय तकषी को ही है।

केरल में अलप्पी से १५ किलोमीटर दूर तकषी नामक गाँव में एक किसान-परिवार में अप्रैल १९१४ को श्री पिल्लै का जन्म हुआ। इनके पिता कथकली के मर्मज्ञ थे तथा चाचा कुंज कुऊ कथकली के प्रख्यात नर्तक थे। उनकी पढ़ाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अम्बाल खुआ में हुई और बाद में तिरुअनंतपुरम् से कानून की पढ़ाई की। हरिपद के करूवता हाईस्कूल के प्रधानाचार्य कनिखर कुमार पिल्लै से वे विशेष प्रभावित हुए। वह अपने समय के आलोचक और नाटककार थे। कानून की पढ़ाई के दिनों में केसरी के सम्पादक श्री बालकृष्ण पिल्लै की अध्यक्षता में गठित बुद्धि-जीवी सभा के सदस्य के रूप में साहित्यिक तथा राजनीतिक लोगों के सम्पर्क में आए। अब तक उन्होंने अंग्रेजी और योरोपीय साहित्य का गहरा अध्ययन कर लिया था। यहाँ रहकर उन्होंने अनेक छोटी कहानियाँ लिखीं। वेलापोखा-थिल (बाढ़ में) इन्हीं दिनों की लिखी गई कहानी है जो चर्चित हुई। प्रगतिशील साहित्यकार आन्दोलन के वह अगुआ थे। उनकी कहानियों का एक संकलन १९३४ में पुथुमालाव (नव-प्रस्फुटन) नाम से प्रकाशित हुआ तथा प्रतिफलम (पुरस्कार) पहला उपन्यास छपा, जिसके छपते ही वह मलयालमी क्षेत्र में चर्चा के विषय बने।

मलयालमी साहित्य में अब तक मध्यवर्गीय पात्रों का ही चित्रण होता था। थकाज़ी या तकषी पहले साहित्यकार थे जिन्होंने निम्नवर्ग को अपनी रचनाओं में प्रमुखता दी। त्रावनकोर में रहते हुए राष्ट्रीय संघर्ष में भी उन्होंने सक्रिय भाग लिया। त्रावनकोर-कोचीन में साक्षरता अधिक है और अंग्रेजी का प्रचार भी। ईसाई तथा पोप्ला मुस्लिमबहुल क्षेत्र में जातीयचेतना का जागरण तथा सामाजिकयथार्थ का प्रसार तकषी से पूर्व न था। स्वाधीनता आन्दोलन के साथ जुड़ जाने पर वह सरकार के कोपभाजन बने तथा गिरफ्तारी का वारंट जारी होने पर भूमिगत हो गए। थोट युटे माकान (भंगी का लड़का) अस्पृश्यता की समस्या पर लिखा गया उपन्यास इन्हीं दिनों की रचना है। निम्नवर्ग की विपन्नता के जीवंतचित्रण ने मलयाली समाज को झकझोर दिया। हिन्दी में मेहतरों के जीवन पर १९७७ में श्री अमृतलाल नागर ने 'नाच्यौ बहुत गोपाल' की रचना की। उन्हीं के साक्ष्य पर १९१४ की सरस्वती में श्रीयुत हीरा डोम की कविता अछूत की शिकायत छपी और यह शायद हिन्दी-क्षेत्र की पहली रचना थी। महात्मा गांधी के देशव्यापी हरिजन आन्दोलन ने भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों को नई चेतना दी।

१९४८ में श्री पिल्लै का प्रख्यात उपन्यास 'रतितान्ता जी' (दो सेर धान) प्रकाशित हुआ। भूस्वामी-जमीदार तथा खेतिहर मज़दूर के सम्बन्धों को लेकर लिखी गई यह रचना कृषकजीवन की त्रासद स्थितियों का चित्रण करती है। अपनी आत्मकथा में उन्होंने स्वयं कहा है मैंने किसान के बेटे के रूप में जो कुछ देखा और भोगा है, उसी का चित्रण किया है। प्रेमचन्द और ताराशकर वन्दोपाध्याय की परम्परा का यथार्थवादी चित्रण रतितान्ता जी में मिलता है।

१९५६ में केरल के समुद्री किनारों पर बसे मछुओं की बस्ती के क्रिया-कलापों को ध्यान में रखकर उन्होंने 'चेमीन' उपन्यास लिखा। धरती का कड़वा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथार्थ मछुओं की निर्धनता के बहाने उकेरा गया है। सामुद्रिक तूफान, प्राकृतिक प्रकोप तथा शोषण से त्रस्त मछुओं के जीवनसंघर्ष की इस कथा में लोक-मान्यताएँ पूरी ईमानदारी के साथ मुखरित हुई हैं। समुद्र की देवी कटलम्मा के संरक्षण तथा विनाश के मिथ के सहारे नियतिवाद पर चोट की गई है। एक मुस्लिम व्यापारी परिकुट्टी के साथ करुथम्मा के प्यार की कहानी यथार्थ और रोमांस के साथ इस रचना में चित्रित हुई है। आदिममूल्यों के संसार में ले जाती है यह रचना हमें। गरीबी, सरलता, आस्था और संघर्ष की एक करुण कहानी उपन्यास के ताने-बाने में बुनी गई है। रामू करियात ने इस कथा पर फिल्म बनाई और उस पर १९६५ में राष्ट्रपति पदक मिला। १९६४ में एनीपडिकल (पायदान) पर साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। उनकी दो रचनाएँ इदवित्थनम (मध्यमवर्ग), आरमायुदे थीरंगल (स्मृति के किनारे) प्रकाशनाधीन हैं। एनीपडिकल तथा कयार उनकी वृहत् रचनाएँ हैं। कयार में कोचूपिल्लै से लेकर नक्सलवादी सलिल तक की छह पीढ़ियों के लगभग हजार चरित्रों का चित्रण इस रचना में हुआ है। उनकी रचनाओं पर मोपाँसा और चेखव का प्रभाव प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। मलयालम में हार्डी, फ्लाबेयर, तालस्ताय, गोर्की तथा पर्लबक के साथ प्रेमचन्द, किशनचन्दर तथा अब्बास की रचनाओं के भी अनुवाद हो चुके हैं। श्री पिल्लै ने लगभग ३५ उपन्यास तथा ५०० कहानियाँ लिखीं हैं। इनकी रचनाओं का भारतीय तथा विदेशी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। मंगलवार ३० जुलाई, १९८४ को ज्ञानपीठ न्यास ने उनके समूचे लेखन पर डेढ़ लाख रुपये का भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार घोषित कर यह सिद्ध किया है कि दरिद्रनारायण की शब्द-उपासना करने वाला साहित्य धन्य है और यही साहित्यकार जीवन के निकट है जो देवलोक के पारिजात की अपेक्षा धरती की गंदगी और धूल में मानवमन की गहराइयों की खोज करता रहा है। 'मुरझायो कमल' लिखने वाला व्यक्ति पद्मभूषण से विभूषित हुआ। ऐसे सामान्य-जनजीवन से जुड़े मलयामल के युगचेता-साहित्यकार तकषी शिवशंकर पिल्लै को अनेक बधाइयाँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकष पर

(पुस्तक समीक्षा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक का नाम—**जायसी-काव्य : प्रतिभा और संरचना**
लेखक —**डॉ० हरिहरप्रसाद गुप्त**
प्रकाशक —**भाषा-साहित्य-संस्थान, इलाहाबाद**
पृष्ठ संख्या —३१९
मूल्य —रु० ८०-००

काव्य एक ऐसी अभिव्यक्ति है जिसमें काव्यचेतना, काव्यरस तथा काव्य-शिल्प के समन्वय का प्रतिफल रहता है। काव्यचेतना का संबंध काव्य के वर्ण्य-विषय से, काव्यरस का रागतत्त्व से तथा काव्य-शिल्प का सम्बन्ध काव्य-विधान से होता है। कवि के सूक्ष्म प्रतिरूप की अभिव्यक्ति काव्य है। व्यक्ति के हृदय में संचित अनुभव के दो पक्ष हैं—आभ्यन्तर तथा बाह्य। अनुभव में जो प्रवृत्ति परिलक्षित होती है, वह अनुभव का आत्मपक्ष है। अनुभव के अन्तर्गत जो बिम्ब, भाव अथवा विचार प्रस्तुत होते हैं, वे बाह्य पक्ष के संकलित, परिमार्जित रूप हैं।

जायसी हिन्दी-सूफी काव्य के श्रेष्ठ कवि हैं। सूफीसाधना एवं साहित्यिक-सौन्दर्य की दृष्टि से जायसी-काव्य का विशिष्ट महत्त्व है। जायसी-काव्य के सम्पादित संस्करणों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डा० माताप्रसाद गुप्त, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पं० शिवसहाय पाठक एवं श्री अमरेश के संस्करण प्रमुख हैं। आचार्य शुक्ल द्वारा सम्पादित 'जायसी-ग्रन्थावली' का विशिष्ट ऐतिहासिक महत्त्व है। जायसी को प्रतिष्ठित करने का सारा श्रेय शुक्ल जी ही को है। जायसी-ग्रन्थावली की भूमिका, तत्कालीन उपलब्ध तथ्यों की दृष्टि से आलोचना तथा अनुसंधान की दृष्टि से एक उत्कृष्ट कृति है। इसमें जायसी के विषय-पक्ष का विवेचन किया गया है। शुक्ल जी ने जायसी के जीवनवृत्त, पद्मावत की कथा एवं उसके ऐतिहासिक आधार, प्रेमपद्धति, वियोग-पक्ष, संयोग-शृंगार, ईश्वरोन्मुख प्रेम, प्रेमतत्त्व, मत तथा सिद्धान्त और रहस्यवाद का सूक्ष्म एवं सराहनीय विश्लेषण किया है। कवि की भाषा, प्रबन्ध-कल्पना, वस्तु-वर्णन, अलंकार तथा भाव-व्यंजना का संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित विवेचन प्रस्तुत है।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित जायसी-ग्रन्थावली प्रामाणिक एवं वैज्ञानिक पाठानुसंधान की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना है। इनके पद्मावत का, जायसी के अर्थ-सौन्दर्य के उद्घाटन की दृष्टि से विशिष्ट एवं ऐतिहासिक महत्त्व है। परिशिष्ट में प्रतिपादित पद्मावत की व्युत्पत्ति सहित शब्दानुक्रमणिका भाषाध्ययन की दृष्टि से अत्यधिक उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण है। भूमिका में पद्मावत के रचनाकाल, ऐतिहासिक कथा-प्रसंग, जीवन-दर्शन तथा सम्बद्ध समस्याओं का विवेचन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा सम्पादित 'पद्मावत' अर्थानुसंधान की दृष्टि से अनुपम संस्करण है। प्राक्कथन में ही सांस्कृतिक दृष्टि से कतिपय पाठान्तरों का अत्यन्त सूक्ष्मता से प्रतिपादन किया है तथा जायसी के जीवनवृत्त, गुरु-परम्परा एवं आध्यात्मभावना का अत्यधिक विद्वत्तापूर्ण विश्लेषण किया है। पं० शिवसहाय पाठक द्वारा सम्पादित चित्रलेखा का ऐतिहासिक महत्त्व है। श्री 'अमरेश' सम्पादित कहरानामा तथा मसलानामा जायसी-काव्य-सम्पादन के क्रम में एक विकास-चिन्ह हैं। जार्ज ग्रियर्सन तथा सुधाकर द्विवेदी और डा० सूर्यकान्त शास्त्री द्वारा सम्पादित संस्करणों की भूमिकाएँ भी उल्लेखनीय हैं। ग्रियर्सन ने जायसी की छन्दयोजना तथा भाषा के व्याकरण का संक्षेप में निरूपण किया है। डॉ० सूर्यकान्त शास्त्रीसम्पादित संस्करण में श्री टेकचन्द जी का प्राक्कथन तथा शासनी का आमुख संकलित है जिसमें जायसी का जीवनवृत्त, धार्मिक सहिष्णुता तथा कथावस्तु पर विचार व्यक्त हैं, अन्त में निरूपित कतिपय शब्द तथा उनकी व्युत्पत्ति दी गई है। बाद में चलकर तो बहुत से स्वतन्त्र एवं शोधग्रन्थ जायसी-काव्य पर लिखे जाने का क्रम ही आरम्भ हो गया। इसी क्रम में डा० हरिहरप्रसाद गुप्त का 'जायसी काव्य : प्रतिभा और संरचना' एक उपयोगी कृति है जो उपर्युक्त संपादित संस्करणों में से डॉ० माता-प्रसाद गुप्त के संस्करण की अगली कड़ी के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न है। वस्तुतः अभी तक जो भी सामग्री जायसी अथवा जायसीकाव्य सम्बन्धी आई है, वह सभी इन संस्करणों पर ही आधारित है।

अपनी कृति में डॉ० गुप्त ने पाठक को पाठ्य, उसकी संरचना-प्रक्रिया, शैली-कल्पना आदि से जोड़ने का प्रयत्न किया है। इसलिए काव्य के एक संदर्भ-प्रसंग अथवा किसी अर्द्धाली को आधार बनाकर उसके तत्त्व, संरचना आदि अंगों पर विचार व्यक्त किया है। जायसी की प्रतिभा-संरचना का समन्वित रूप प्रस्तुत करना लेखक का लक्ष्य है। अनेक स्थलों पर भाव-निरूपण एवं शब्दार्थ विवेचन किया गया है। लेखक, डॉ० माताप्रसाद गुप्त के अनुज हैं, अतः उनकी छाप उचित ही है और उनके कार्यों को आगे बढ़ाने का प्रयास भी।

जायसी की कविता की इकाई या संश्लिष्टता का बोध कृतिकार ने कवि की भाषा एवं दर्शन के विश्लेषण, विवेचन के साथ प्रस्तुत किया है। पद्मावत में इतिहास, वास्तविकता, प्रेम, स्वप्नचित्र का सम्मिश्रण है और कवि भी सभी पक्षों के संश्लिष्ट अंकन में सफल है। अतः काव्य में सौन्दर्य का प्रस्तुतीकरण आवश्यक है। पद्मावत विरह से शुरू होकर मिलन में समाप्त होता है और बाद में मृत्यु, जिसे कवि प्रेम के अनश्वर रूप को दिखाते हुए दूसरे लोक में पति-पत्नी के मिलन की आशा व्यक्त करता है, जिसकी व्याख्या डॉ० गुप्त ने बड़े ही सुन्दर एवं समन्वित रूप में व्यक्त की है।

काव्यशास्त्रीय दृष्टि से पद्मावत में गौड़ी, पांचाली और वैदर्भी अर्थात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओज, माधुर्य और समता-ऋजुता-सरसता आदि तीनों गुणों से समन्वित है। कवि ने शब्द-चयन, वास्तविक अर्थ, शब्द-समूह की विविधता, अनुभूति की तीव्रता, वस्तु-पक्ष की विशदता तथा सुश्रृंखलता, श्लेष, समाधि-वक्रता-ध्वनि सभी पक्षों पर डॉ० गुप्त ने अपनी समीक्षा में विचार व्यक्त किया है। साथ ही भाषा के संरचनात्मक अध्ययन एवं साहित्य की संश्लिष्टता को प्रमुखता के साथ प्रस्तुत किया है।

स्वानुभूत जीवन की रचना, कल्पना द्वारा पुनर्कृति है। यथार्थवादी शिल्प के अन्तर्गत रचना, यथार्थ के नियमानुसार यथार्थ के प्रतीकों की क्रमिक रचना प्रस्तुत करती है। डॉ० गुप्त ने कवि एवं कृति को समष्टि रूप में देखा, समझा है। शैली का, कवि और पाठक दोनों से सम्बन्ध मानकर लेखक ने भाषा-भाव के अन्योन्याश्रय संतुलन को प्रकट किया है। जगह-जगह पर भावार्थ भी दिए गए हैं, साथ ही कथ्य एवं रूप की यथार्थता एवं चारुत्व को भी उद्घाटित किया गया है। डॉ० गुप्त ने संवेदना की बोधात्मक प्रतीति को भाषिक-विश्लेषण या शैली-विज्ञान के आधार पर प्रस्तुत किया है। शब्द, शब्द-संरचना, उसमें अन्तर्निहित भाव एवं शब्द-प्रयोग का संदर्भ-साहचर्य से सम्बन्ध आदि को भी डॉ० गुप्त ने संस्कृति एवं परम्परा की धारा से जोड़ने का प्रयत्न किया है। और कला तथा जीवन का संतुलित-संश्लिष्ट-समन्वित स्वरूप के आधार पर समीक्षा प्रस्तुत की है।

अन्त में यही कहा जा सकता है कि यह अपने ढंग का मौलिक ग्रन्थ है जिसमें जायसीकाव्य का व्यवस्थित रूप विवेचित हुआ है। इसमें जायसी-काव्य के सभी पक्षों का उद्घाटन होता है जिससे डॉ० गुप्त ने अनुसंधान की दिशा को गति एवं दृष्टि दी है।

—भगवानदेव पाण्डेय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक का नाम—प्रतिमा विज्ञान
लेखिका —डा० इन्दुमति मिश्र
प्रकाशक —मध्य-प्रदेश ग्रन्थ अकादमी, भोपाल
पृष्ठ संख्या —३८८
मूल्य —१५ रुपये

प्रतिमा-विज्ञान पर भारतीय एवं विदेशीय साहित्य में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। प्रतिमा-विज्ञान भारतीय धार्मिक-भावनाओं से जुड़ा हुआ है, जिसका प्रभाव भारतीय जीवन एवं सांस्कृतिक कार्य-कलापों पर स्पष्टतः दृष्टि-गोचर होता है। अतएव मनीषी लेखिका ने विभिन्न धर्मों को आत्मसात किये धार्मिक साहित्य में से वैष्णव-संप्रदाय से सम्बन्धित पुराणों को इस ग्रन्थ की विषय-वस्तु के रूप में अपनाया। पुराणों का अध्ययन भारतीय एवं विदेशी विद्वानों ने विभिन्न विषय-वस्तु को लेकर किया है, लेकिन प्रतिमा-विज्ञान सम्बन्धी अध्ययन एक तरह से अछूता ही रहा। अतएव डॉ० इन्दुमति मिश्र का विषय-चयन निस्सन्देह सर्वथा नवीन एवं प्रशंसात्मक है।

पुराणों में अनेक देवी-देवताओं का उल्लेख किया गया है, जिसमें विष्णु एवं उनके दश अवतारों का विशेष वर्णन किया गया है। शिव, सप्त-मातृकायें, नवग्रह एवं दिक्पाल आदि सभी का समावेश इस कोटि में किया गया है। फलस्वरूप सम्बन्धित साहित्य की एक लम्बी तालिका उपलब्ध है। लेकिन वैष्णव सम्प्रदाय की प्रचलित मान्यताओं के अन्तर्गत वैष्णव सम्प्रदाय सम्बन्धी पुराणों का निर्धारण लेखिका का सराहनीय योगदान है।

सात परिच्छेदों में विभाजित ग्रन्थ के प्रथम परिच्छेद में पौराणिक साहित्य का विशद सर्वेक्षण एवं वैष्णव साहित्य का निरूपण किया गया है। द्वितीय एवं तृतीय परिच्छेदों में प्रतिमा के लक्षण, द्रव्य, भेद एवं उत्तरोत्तर विकास का गहन वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ परिच्छेद में त्रिमूर्ति की परिकल्पना, समन्वय का वर्णन, विशेष रूप से विष्णु एवं विष्णु की चौबीस प्रकार की प्रतिमायें, अवतार एवं कुछ विशिष्ट मुद्रा-प्रतिमाओं का गहन विवेचन किया गया है। शिव प्रतिमायें—लिंग-प्रतिमायें एवं मानवीय प्रतिमायें—का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत है। त्रिमूर्ति की तीसरी संज्ञा ब्रह्मा के सन्दर्भ में लेखिका का मौन असंगत प्रतीत होता है।

पंचम अध्याय में सूर्यमण्डलीय ग्रहों की विवेचना की गयी है। षष्ट अध्याय में दिक्पाल का अध्ययन भी अपना विशिष्ट स्थान रखता है। सप्तम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिच्छेद में कनिष्ट कोटि के देवताओं, यथा गन्धर्व, किन्नर, विद्याधर, नाग आदि का वर्णन व्यन्तर देवताओं के अन्तर्गत किया गया है।

देवताओं के अंगप्रत्यंग, वस्त्राभूषण, आयुध एवं वाहन का परिचयात्मक वर्णन परिशिष्ट के अन्तर्गत किया गया है।

पुराणों में उपलब्ध प्रतिमा-विज्ञान की सामग्री के वैज्ञानिक विवेचन को आवश्यक उदाहरणों से पुष्टित किया गया है। समुचित साहित्यिक आधार-भूत-ग्रन्थ में अपूर्णता का आभास भी परिलक्षित होता है, यथा-पौराणिक-प्रतिमा-विज्ञान तत्कालीन एवं उत्तरोत्तर काल में भारतीय कलाकार द्वारा कितना अपनाया गया इसका कोई उल्लेख नहीं किया गया है। अच्छा होता अगर लेखिका कुछ प्रतिमाओं का अध्ययन एवं समन्वय करके तुलनात्मक चित्रण प्रस्तुत करतीं तो ग्रन्थ की महत्ता ही कुछ और होती।

वस्तुस्थिति पर दृष्टिपात करके यह स्पष्ट है कि पुस्तक विद्यार्थियों एवं शोधार्थियों के लिये सहायक-ग्रन्थ के रूप में उपयोगी सिद्ध होगी। इस दृष्टि से पुस्तकालय में भी संग्रहणीय है।

—सूर्यकान्त श्रीवास्तव
क्यूरेटर
गु० कां० पु० संग्रहालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar